शरतचंद्र
एक अध्ययन
मन्मथनाथ गुप्त

८६२
आलोचना

शरत्चन्द्र : एक अध्ययन

मन्मथनाथ गुप्त

किताब महल
इलाहाबाद
२३५, हॉर्नबी रोड, फोर्ट, बम्बई.

परिचय

इस पुस्तक की विशेषता यह है कि लेखक ने यह दिखलाया है कि शरत् बाबू के जीवन से शरत् बाबू की रचनाओं का कहाँ, कितना और कैसा सम्बन्ध है, और क्यों? और लेखकों की तरह कल्पना ही शरत् बाबू का उपजीव्य नहीं थी, बल्कि जिन घटनाओं को उन्होंने जीवन में प्रत्यक्ष किया था, जिस समाज को उन्होंने देखा, उन्होंने उन्हीं घटनाओं को तथा उसी समाज को अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। यह सब होते हुए भी शरत् बाबू पूरे वस्तुवादी (realist) नहीं हैं। ऐसा क्यों—यह समझाने के लिये लेखक को तूल-तबील के साथ तुमुल तर्क की अवतारणा करनी पड़ी है। साहित्य-सृष्टि के रहस्यों का सविवरण मार्मिक उद्घाटन करना पड़ा है। साथ ही पूर्व लेखकों, विशेषकर रवीन्द्र साहित्य के साथ, उनका सम्बन्ध स्पष्ट किया गया है। इस पुस्तक में पहले लेखक के ज़रिये रचनाओं को, फिर रचनाओं के ज़रिये लेखक को पकड़ने की चेष्टा की गई है। शरत् बाबू ने मूक उत्पीड़ित भारतीय नारी के मुँह में भाषा दी, सच कहा जाय तो वे नारी जाति के दुख-दर्दों को जिस मार्मिकता से चित्रण करते हैं, उसकी तुलना विश्व-साहित्य में कहीं नहीं है। समालोचना में इस विशेषता पर विशेष ध्यान रक्खा गया है। लेखक ने एक नये ढंग से समालोचना की है जिससे शरत्-साहित्य को बिना पढ़े ही मज़ा उठाया जा सके। किसी उपन्यास की समालोचना के पहले उसका संक्षिप्त सार दे दिया गया है, फिर समालोचना की गई है। इस प्रकार Lamb's Tales of Shakespeare की तरह इसमें शरत् बाबू के सब उपन्यासों का संक्षिप्त सार भी है।

विषय-सूची

—:०:—

——

उपक्रमणिका

कहानी सुनने की इच्छा मनुष्य में उतनी ही प्राचीन है जितनी शायद उसमें बोलकर अपने भावों को दूसरों पर ज़ाहिर करने की शक्ति या कदाचित् यह उससे भी पुरानी हो। इसी इच्छा की पूर्ति के लिये अत्यन्त प्राचीन युग से ही पुराण, गाथा, इतिहास, उपन्यास आदि रचे गये हैं। युग की रुचि के अनुसार जो भाव जिस युग में प्रधान थे, उन्हीं को लेकर उस युग में कहानी का तानाबाना बुना जाता रहा। जिस युग में प्रकृति की अव्यक्त तथा अपराजेय शक्ति को देखकर मनुष्य भय, आश्चर्य तथा अपनी क्षुद्रता के ज्ञान से विह्वल हो जाता था, उस युग की कहानियों में भूत, प्रेत, पिशाचों का प्रादुर्भाव था, जब धर्म का बोलबाला हुआ तो पुराण आदि के ढङ्ग पर कहानियाँ कहीं गईं, इनमें से कुछ तो बिल्कुल नये सिरे से गढ़ी गईं, किन्तु कुछ में केवल पुरानी कहानियों का युगानुसार नया संस्करण किया गया। ठीक उसी प्रकार जैसे यहूदियों की कहानियों को ईसाइयों ने तथा ईसाइयों की कहानियों को मुसलमानों ने नया रूप दे दिया। चाहे ग्रीस की पौराणिक कहानियों को पढ़िये चाहे भारत की (और इन्हीं दो स्थानों के पुराण सबसे अधिक दिलचस्प तथा विचित्र हैं; यहूदी, ईसाई तथा मुस्लिम पुराणों में तो कोई दिलचस्प या रोमांचकारी बात है ही नहीं)। आप देखेंगे कि ये देवता तथा देवियाँ, अतिमानव (supermen) तथा अतिमानवियाँ उसी प्रकार से प्रेम करती हैं, विरह में उसासें भरती हैं, प्रतिद्वन्दी को देखकर जलती हैं, उसके विरुद्ध षड्यन्त्र करती हैं, झूठ बोलती हैं जिस प्रकार मर्त्यलोक के रहनेवाले मनुष्य। देवता या वीर भी अपनी प्रियतमा की मृत्यु पर बाल नोंचकर रोते हैं, फिर कुछ दिनों बाद सब भूल जाते हैं, और दूसरी सुन्दरी

से अपना दिल लगाते हैं, इत्यादि हूबहू वैसा ही जैसा हम आस-पास के लोगों को करते देखते हैं, जैसा हम स्वयं करते हैं । तभी तो वे देवता तथा देवियाँ हमारे अन्दर दीर्घजीवी हो सकी हैं, और तब तक जीती रहेंगी, जब तक उनका मनुष्योचित आवेदन (human appeal) मौजूद रहेगा, चाहे धर्म रहे या न रहे । रोम तथा ग्रीस में इस समय रोमन या ग्रीक पुराण को धर्म के अंग के रूप में माननेवाले कोई भी नहीं हैं, किन्तु फिर भी जुपिटर, मिनर्वा, पांडोरा की कहानियाँ सभी पढ़ते हैं । इसका कारण वही मनुष्योचित आवेदन है । अस्तु ।

किन्तु फिर भी देवता देवता ही थे, उनकी कहानियों को एक हद तक ही ले जाया जा सकता था । नये-नये लेखक एक दायरे के अंदर ही इन कहानियों को तोड़-मरोड़कर अपनी कल्पना के घोड़े को दौड़ा सकते थे, देशी भाषाओं की बातें जाने दी जायँ, तो इसी नये-नये ढङ्ग से कहानी को कहने की प्रवृत्ति के कारण संस्कृत में ही रामायण आदि धर्मग्रन्थ के कई-कई संस्करण हुए । इन संस्करणों में केवल वर्णन शैली ही विभिन्न नहीं थी, बल्कि छोटी-मोटी घटनाओं में भी यथेष्ट प्रभेद थे । मुख्य घटनाओं में प्रभेद हो ही कैसे सकता था ? उस ज़माने का समाज धार्मिक रंग में रँगा था, इसलिये वह कहानी के लोभ में भी एक सीमा तक ही बहकाया जा सकता था । वह अपने वीरों को इस प्रकार बदलते देखना न तो पसन्द ही करता था, न बर्दाश्त ही कर सकता था । अतएव कहानी लेखकों को अब दूसरा रास्ता देखना पड़ा ।

इस प्रकार कहानी अब भूत, प्रेत, पिशाच, देवताओं के स्वर्ग-नरक से उतरकर मर्त्यलोक के साधारण मनुष्यों में उतर आई, किन्तु फिर भी वह मर्त्यलोक की न हो सकी । लेखकों की आदत कैसे जाती ? इसका नमूना हमें अलिफ़लैला, बोक्काशियों की कहानियों तथा

उपन्यासों में मिलता है। ये रचनाएँ मनुष्यों को लेकर ही लिखी गई थी, किन्तु ये मनुष्य वे मनुष्य नहीं थे, जो उनके पाठक देखते थे। अलिफ़लैला में तो अलौकिक बातों की ही भरमार थी। संस्कृत साहित्य में हम देखते हैं कि पौराणिक कथा-साहित्य के बाद ऐसे काव्य, महाकाव्य तथा नाटकों को उत्पत्ति हुई, जिनमें मनुष्य मुख्य थे और अन्य योनि के लोग गौण थे, किन्तु फिर भी ये मनुष्य साधारण मनुष्य न होकर कवियों की कल्पना-जगत् के मनुष्य थे।

हिन्दी, बँगला आदि भाषाओं की उत्पत्ति उस युग में हुई जब संस्कृत साहित्य में इसी प्रवृत्ति का प्रसार था। अतः उत्तराधिकार-सूत्र से इन साहित्यों में भी इसी प्रवृत्ति का संचार हुआ। साथ ही साथ संस्कृत साहित्य में जो प्रवृत्ति अब अप्रचलित-सी हो चली थी, याने पौराणिक गाथा कहानी-लेखन को प्रवृत्ति, उनका भी इन भाषाओं में प्रचलन हुआ। धड़ाधड़ पुराणों की कहानियों को लेकर प्राकृत भाषाओं में ग्रन्थ, काव्य तथा महाकाव्य लिखे जाने लगे। बँगला आदि के लेखक अक्सर संस्कृत से अनभिज्ञ थे, इसलिये उन्होंने जनश्रुति पर निर्भर रहकर या दूसरों से सुनकर जो कुछ लिखा उसमें और संस्कृत के मौलिक कथा-भाग में बहुत अन्तर पड़ गया। इन लेखकों को जहाँ मालूम नहीं था, वहाँ उन्होंने कल्पना से काम लिया, कुछ लोगों ने संस्कृत जानते हुए भी अपने पाठकों को बदली हुई रुचि के अनुसार कथाभाग में परिवर्तन कर दिया, जैसे तुलसीदास ने वाल्मीकि के आमषाशी श्रीरामचन्द्र को पक्का निरामिषभोजी बना दिया, प्राचीन देव-देवियों तथा वीरों के साथ स्थानीय देव-देवियाँ भी आ गईं, उनका एक होना बतलाया गया, किन्तु इन सबका नतीज़ा और जो कुछ भी हो साहित्य के लिये अच्छा ही हुआ। ऐसे साहित्य के मुकुर में हम देश, काल को अधिक अच्छी तरह प्रतिफलित पाते हैं। कृत्तिवास की रामायण को ही लिया जाय या तुलसीदास की रामायण को तो हम इनमें प्रागैतिहासिक युग की अयोध्यापुरी का चित्र न पाकर साम-

यिक बंगाल या अयोध्या-काशी का चित्र पाते हैं। हमारे वर्त्तमान विषय से बाहर होने के कारण हम केवल सूत्ररूप से इसे छूकर के और यह याद दिलाकर कि लेखक कल्पना-जगत् में भी अपने समय से बाहर नहीं जा सकता आगे बढ़ जाता है।

जब अंग्रेज भारतवर्ष में आये उस समय मोटे तौर पर हमारे साहित्य में यही सब बातें हो रही थीं तथा इन्हीं का युग था। मज़े की बात है बँगला तथा हिन्दी साहित्य का यह काल कई सदियों तक स्थायी रहा। पहले-पहल जब इस युग का प्रादुर्भाव हुआ उस समय इन भाषाओं में कुछ अच्छे मौलिक साहित्य का सृजन हुआ, किन्तु बाद को लकीर की फ़क़ीरी तथा स्वास्थ्यकर कल्पनारूपी रक्त के अभाव के कारण साहित्य में आवद्धता आ गई। मुस्लिम शासकों के साथ-साथ फ़ारसी तथा अरबी साहित्य के साथ संस्पर्श क़ायम होने के कारण भारतीय साहित्यों में एक स्फूर्ति-सी आ गई थी। किन्तु इन साहित्यों में स्वयं रक्ताल्पता आ जाने के कारण यह आदान-प्रदान का प्रवाह क़ायम न रह सका। साहित्य विस्तार में कुछ अवश्य बढ़ा, किन्तु उसमें न तो कोई नया कल्ला ही फूटा न कोई मौलिक परिवर्त्तन ही हुआ। गतानुगतिकता का ही दौरदौरा रहा। कुछ हलचल पैदा हुई किन्तु रक्त का स्पंदन नहीं। हमारे इस युग का साहित्य इस युग की राजनीति की तरह एक आवद्ध (stagnant) वस्तु थी। राष्ट्र की या जनता की आत्मा के साथ इस साहित्य की नाड़ी का सम्बन्ध नहीं था। वह तो राजसभा तथा उसके आस-पास के कुछ बड़े लोगों के विलास की वस्तु थी।

हमारे इस समय के साहित्यों की दरिद्रता इसीसे स्पष्ट हो जायगी कि जिस समय भारतवर्ष में अंग्रेज़ आये उस समय हमारे साहित्यों में कोई कहने लायक गद्य ही नहीं था! कहना न होगा कि ऐसी अवस्था में जो कहानियाँ या उपख्यान मौजूद थे, वे पद्य के रूप में

ही थे। स्वाभाविक रूप से वह एक stereotyed पुराने ढङ्ग की प्रस्तरीभूत चीज़ के रूप में थी, जिसे हम आधुनिक अर्थं में कहानी या उपन्यास ही नहीं कह सकते। समस्त यूरोपखंड में troubadour तथा trouvere (चारण) के युग का अवसान होकर सुन्दर गद्य-लेखकों का बोलबाला हो रहा था, किन्तु बंगाल में अभी भारतचंद्र, दाशु राय का ही युग था। दाशु राय एक ऊँचे दर्जे का या सिर पर चढ़ाया हुआ glorified अल्हैत-मात्र था, किन्तु भारतचंद्र की भाषा नये युग की भाषा की अग्रदूती थी। उसको पढ़कर यह कहना कठिन न होता कि उसमें आगे चलकर रवीन्द्रनाथ या शरत्चन्द्र के भावों के वाहन के रूप में परिणत होने की संभावना निहित थी।

राजा राममोहन राय को ही हम आधुनिक बँगला गद्य के जनक मान सकते हैं। यद्यपि यह बात याद रहे कि बँगला की जो प्रथम गद्य पुस्तक मानी जाती है वह राममोहन की लिखी हुई नहीं, बल्कि राम वसु का लिखा हुआ 'प्रतापादित्य-चरित्र' था। राजा राममोहन का जन्म कुछ लोगों के मत से १७७४ में हुआ, कुछ लोगों के मत से १७८० में। प्रतापादित्य-चरित्र १८०१ में प्रकाशित हुआ था, इस पुस्तक की पांडुलिपि को राममोहन राय ने शुद्ध तो किया था, किन्तु उनकी निजी कोई पुस्तक १८१५ के पहले प्रकाशित नहीं हो पाई। राजा राममोहन ने अपने गद्य का प्रयोग उपन्यास लिखने में नहीं किया, बल्कि उसे अपने मतों के प्रचार का वाहन बनाया। उन्होंने ऐसी पुस्तकें लिखीं जैसे कठोपनिषद्, पथ्यप्रदान, वेदान्त। पुस्तकों के नामों से ही उनके विषय स्पष्ट हैं। राममोहन राय बँगला गद्य के जनक होते हुए भी श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को ही यह श्रेय प्राप्त हुआ कि उन्होंने उसे पढ़ने योग्य बनाया। बँगला साहित्य में उनका दान बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत के अगड़धत्त विद्वान् होते हुए भी विद्यासागर ने बँगला को सरल तथा सुललित बनाया। पाठ्य पुस्तकों में ही अक्सर लोगों का विद्यासागर से परिचय होता है, और वह परिचय

वहीं समाप्त होता है। इसलिये आमतौर से लोगों की यह धारणा है कि उनका गद्य अबोध्य तथा संस्कृतबहुल है, किन्तु यह बात ग़लत है। अक्सर बंकिम का गद्य उनसे कहीं दुरूह होता है।

विद्यासागर ने कोई भी महत्त्वपूर्ण मौलिक पुस्तक नहीं लिखी। उन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी आदि भाषा की पुस्तकों का बँगला में अनुवाद भर किया, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने बँगला गद्य को विस्तृत-तर भावों का वाहन बनाया। जो कुछ भी हो, इधर तो हमारे यहाँ गद्य का केवल जन्म ही हो रहा था, उधर यूरोप में विक्टर ह्यूगो ऐसे शक्तिशाली उपन्यासकार की कला का चमत्कार जगजाहिर हो चुका था। उपन्यास एक सामाजिक आवश्यकता के रूप में यूरोप में अनिवार्य हो चुका था। फिलीबेर ओदे ब्राँ ने अपनी Romanciers et viveurs नामक ग्रन्थ में लिखा है कि समय ज्यों-ज्यों उन्नीसवीं सदी के मध्यभाग की ओर बढ़ रहा था, त्यों-त्यों फ्रांस में उपन्यासों की तरक्क़ी दिन दूनी रात चौगुनी हो रही थी। "स्त्रियों, दुःख से जर्जरितों, बीमारों तथा मुसाफ़िरों के निकट उपन्यास एक आवश्यक वस्तु हो चुकी थी।" डाक्टर लोग बीमारी के बाद पथ्य-रूप में लोगों को उपन्यास सेवन का नुस्ख़ा देने लगे थे।

फिर भी यहाँ पर यह याद दिला देने की आवश्यकता है कि यूरोप के जिन उपन्यासकारों के संस्पर्श में बँगला साहित्य आया वे उसी श्रेणी के थे जिनको यूरोपीय भाषाओं में रोमैंटिक कहते हैं। हिन्दी में इसका कोई प्रतिशब्द न होने के कारण हम इसे रोमांचिक कहेंगे। वाल्टर स्काट, विक्टर ह्यूगो, पाल द्य काक, अल्फ्रेड द विन्यि, अलेक्जेंडर ड्यूमा आदि लेखक सब इसी रोमांचिक श्रेणी के उपन्यास-कार थे। इन उपन्यासों में साधारण को त्यजकर असाधारण घटनाओं पर ही ज़ोर डाला गया है। इन लोगों ने सर्वत्र भूत, प्रेत, पिशाच आदि को अपने उपन्यासों का मुख्य या गौण पात्र बनाकर अस्वाभा-

विकता की सृष्टि की है ऐसी बात नहीं, किन्तु वे अपने चरित्रों को यदि अस्वाभाविक रूप में नहीं तो कम से कम रङ्गीन चश्मे के अन्दर से देखते हैं इसमें सन्देह नहीं। फलस्वरूप जिस रङ्ग में रँगकर वे पात्रों तथा घटनाओं को हमारे सम्मुख उपस्थित करते हैं, वह उन पर खिलता तो .खूब है, किन्तु वह उनका स्वाभाविक रङ्ग नहीं है। इस श्रेणी के लेखकों ने ऐतिहासिक घटनाओं तथा पुरुषों को लेकर ही अधिकांश रूप में अपनी प्रतिभा की आजमाइश की है। बात यह है कि ऐसी घटनाओं तथा पुरुषों के इर्द गिर्द यों ही बहुत-सा रोमैंस याने रङ्गीन ख़्याल जमा है, ऐसी अवस्था में उनको उपलक्ष्य बनाकर उपन्यास निर्माण करने में लेखक स्वल्प कोशिश से ही अपना अभीष्ट रङ्गीन जगत् पाठकों की आँख के सामने लाकर उपस्थित कर सकता था, किन्तु रोमांचिक लेखकों ने हमेशा इस सहज मार्ग को ही तरजीह दी हो ऐसा नहीं। कई बार उन्होंने ऐसा न करके अनैतिहासिक पात्रों को अपनाकर काम किया है। समुद्रयात्रा की विपत्तियों को केन्द्र बनाकर तथा जंगली मर्दुमखोर जातियों के बीच में पड़ने के विषय को लेकर बहुत से रोमांचकारी उपन्यास लिखे गये। इन उपन्यासों का समाज से कोई सम्बन्ध ही नहीं था ऐसा नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार के उपन्यास यूरोप के उदीयमान पूँजीवादी वर्ग की बाज़ार के लिये दुनिया की ख़ाक छानने की बात को प्रतिफलित करता है। आज भी केवल भारत में ही नहीं यूरोप में भी ऐसे उपन्यासकार हैं जो वस्तुवादी होने का दावा करते हैं, किंतु हैं वे रोमांचिक। स्मरण रहे हम इनमें उन उपन्यासकारों को नहीं गिन रहे हैं, जो उस श्रेणी के उपन्यासों को लिखते हैं जो जासूसी कहलाते हैं। इसमें तो सन्देह नहीं कि जासूसी उपन्यासकार ज़मीन फोड़कर उद्भूत नहीं हुए हैं। सीधी गिनती में वे ड्यूमा (Dumas) पाल द्य काक, तथा स्काट के ही उत्तराधिकारी हैं। किंतु मेरा मतलब यहाँ तो उन उपन्यासकारों से है जो अपराधों के पास भी अपने कथानक को फटकने नहीं देते, फिर भी वे

रोमांचिक ही हैं, वस्तुवादी तो उन्हें कदापि कहा ही नहीं जा सकता, जैसे मेरी कारैली। जो कुछ भी हो यूरोप में क्लासिक युग का बहुत पहले ही अवसान होकर रोमांचिक युग का सूत्रपात हो चुका था, किन्तु भारतवर्ष में अभी कोई आश्चर्य की बात नहीं। ऊपर जिन पुस्तकों के नाम गिनाये गये हैं उनके लेखकों का असली उद्देश्य तो ज्ञात होता है पाश्चात्य सभ्यता से अभिभूत शिक्षित बङ्गाल की ज़्यादतियों तथा उथल-पुथल मचानेवाले नयेपन का परिहास करना था। "उनमें समसामयिक जीवन के कुछ अत्यन्त सजीव चित्र मौजूद हैं, जिनको यदि बटोरा जाय तो सामाजिक इतिहास के लिखने के लिये कुछ बहुत ही उत्कृष्ट मसाला मिल सकता है। सत्य के प्रति अनिवार्य श्रद्धा के साथ-साथ उनमें अतिशयोक्ति की ओर रुचि स्पष्ट है, किंतु उनमें इसी व्यंग के साथ समानान्तर रेखा में नई संस्कृति को समझ-कर पुराने और नये की समन्वय चेष्टा भी स्पष्ट है। इस गंभीरता के वातावरण के कारण इन उपन्यासों में यत्रतत्र हितोपदेश की भरमार है, इसलिये इनमें दिलचस्पी कहीं-कहीं बहुत ही कम रह जाती है, बल्कि इनको पढ़ने में कष्ट-सा मालूम होता है। हाँ, इसी कारण उनका ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्य बढ़ गया है।"*

प्यारीचाँद मित्र उर्फ़ टेकचाँद ठाकुर 'आलालेर' घरेर दुलाल के लेखक तथा कालीप्रसन्न सिंह 'हुतोम प्याँचार नक़शा' के लेखक थे। शेषोक्त पुस्तक की भाषा लोगों को नहीं जँची तथा उसका व्यंग भी भद्दा था, किन्तु 'आलालेर घरेर दुलाल' की भाषा बहुत से लोगों को विद्यासागर के सुललित गद्य से अधिक पसन्द आई, क्योंकि इसमें बोलचाल की भाषा अपनायी गई थी। इसी कारण कुछ लोगों ने उसकी बहुत तीव्र समालोचना भी की कि यह भाषा को बिगाड़ना

*देखिये श्रीकुमार बनर्जी का लेख History of Bengali Novel, अक्टूबर १९४०, कलकत्ता रिव्यु।

है। लेखक के अनुसार इस पुस्तक में लड़कों को उचित तरीके से पालन न करने के दुष्परिणाम को दिखाने के साथ ही साथ वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली के गुणदोष तथा हिन्दू-समाज के रीतिरिवाजों पर दृष्टि डाली गई थी। स्वयं बंकिमचन्द्र ने बङ्गला साहित्य में टेकचाँद के स्थान को माना है। इसी युग में दो और अच्छे गद्य-लेखक पनपे, एक भूदेव मुखोपाध्याय, दूसरे मदनमोहन तर्कालङ्कार। केशवचन्द्र सेन ने भी इसी युग में बङ्गला साहित्य में हाथ डाला, वे भो बङ्गला के प्रमुख स्रष्टाओं में हैं। उन्होंने 'जीवन वेद' तथा 'प्रार्थना' लिखी, किंतु वे कोई उपन्यासकार नहीं थे, बल्कि धर्मप्रचारक थे। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि बँगला गद्य को उन्होंने सजीवता, ओज तथा काट प्रदान की। इन गद्यकारों की संस्कृत के क्लासिकों के अनुकरण तथा अनुवाद के युग के बाद किसी नये युग का प्रारम्भ नहीं हुआ था। इस साहित्य की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन पहले ही हो चुका है।

बकिमचंद्र के पहले भी बँगला में उपन्यास लिखे गये थे, किन्तु उन उपन्यासों को शायद किसी भी श्रेणी-विभाग में डालना मुश्किल है। न तो उनमें कोई चरित्रचित्रण था, न मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, न स्वाभाविकता। 'नव-बाबू-विलास' (१८२३) 'आलालेर घरेर दुलाल' (१८५७) 'हुतोम प्यौंचार नकशा' (१८६२) आदि पुस्तकों को आज कोई भी बङ्गाल में नहीं पढ़ता, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि चाहे वे कितनी भी अधम रचनायें हों, वे बंकिम-रमेश की रचनाओं की अग्रगामिनी थीं। एक भाषा जिसका गद्य परिपक्वता प्राप्त कर चुका है, तथा जिसमें एक स्टैंडर्ड या मानदंड कायम हो चुका है, उसमें रचना करना तुलनात्मक रूप से आसान है, किन्तु उस समय बँगला में कोई गद्य नहीं था। साथ ही साथ उसमें गद्य भी बनाते जाना और लिखना यह वैसा ही कठिन प्रयास था जैसे किसी लेखक को काग़ज़ बनाकर तब उस पर लिखना पड़े, बल्कि यह काम उससे भी कठिन

था। इस भगीरथ प्रयास में बंकिम पूर्व युग के लेखकों की प्रतिभा का अधिकांश भाग यदि नष्ट हो गया तो संयुक्त साधना विफल हो गई ऐसी बात नहीं बंकिम में जाकर उन्हीं की रुकी हुई साधना सफलता के स्वर्ण-मुकुट से मण्डित हुई। केवल गद्य निर्माण की दृष्टि से नहीं बँगला साहित्य को क्लासिक से रोमांचिक युग में ले जाने की दृष्टि से भी ये बंकिम के अग्रदूत थे। भाषा तथा भाव के क्षेत्र में दीन होते हुए ये उपन्यास किसी साहित्य के प्रथम उपन्यासों से निकृष्ट नहीं थे।

बँगला के प्रथम सफल उपन्यासकार बंकिमचंद्र थे, इसी हैसियत से उन्होंने अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त की। वे मुख्यतः ऐतिहासिक उपन्यासकार ही समझे जाते हैं, क्योंकि उनके अधिकांश उपन्यासों में कुछ न कुछ ऐतिहासिक व्यक्ति पात्र-पात्री रूप में हैं, किंतु स्मरण रहे केवल दो-चार ऐतिहासिक व्यक्ति को पात्र बनाकर खड़ा कर देने से ही कोई ऐतिहासिक उपन्यासकार नहीं हो सकता। इसके लिये सबसे आवश्यक बात है कि उस समय की आबोहवा की सृष्टि की जाय, चाहे पात्र एक भी इतिहासप्रसिद्ध व्यक्ति न हो। इस दृष्टि से जाँच की जाय तो मृणालिनी, दुर्गेशनन्दिनी, चन्द्रशेखर तथा कपालकुण्डला को ऐतिहासिक उपन्यास नहीं कहा जा सकता। राजसिंह क़रीब-क़रीब ऐतिहासिक उपन्यास हो गया है यद्यपि उसमें इतिहास के साथ क़ाफ़ी मनमाना है। सर वाल्टर स्काट ने अपने उपन्यासों में घटनाओं के क्रम में बहुत ग़लती की है, फिर भी वे ऐतिहासिक आबोहवा पैदा करने की सामर्थ्य के कारण ऐतिहासिक उपन्यासकार माने गये हैं।

उपन्यासकार बंकिम से धर्मतात्त्विक बंकिम इतने दब गये कि बहुत से लोग तो जानते ही नहीं कि बंकिम ने धर्मतत्त्व पर भी अपनी लेखनी को चलाया है, किंतु उनकी अपनी दृष्टि में उन्होंने धर्मतत्त्व पर एक नवीन विश्लेणात्मक पद्धति से जो कुछ

लिखा है वह अधिक महत्त्वपूर्ण था । संदेह नहीं कि उनके युग को देखते हुए उनके धर्मतात्त्विक मत भी क्रान्तिकारी नहीं तो प्रगतिशील थे । उन्होंने समाज के रथ को गतानुगतिकता के कीचड़ से निकालकर बुद्धिवाद के ग्रैंडट्रंक रोड पर चढ़ाने की चेष्टा की, यद्यपि वे स्वयं सोलहों आने बुद्धिवादी थे ऐसा आज कहना कठिन है । फिर भी वे प्रगतिशील थे इसमें सन्देह का अवकाश नहीं । उन्होंने लिखा था "तीन चार हजार वर्ष पहले भारतवर्ष के लिये जो क़ायदे क़ानून बने थे, आज दिन उनको हरफ़ बहरफ़ मानकर चलना संभव नहीं । वे ऋषि स्वयं यदि आज मौजूद रहते तो कहते "नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, यदि तुम हमारी विविध-व्यवस्थाओं को पूर्ण रूप से क़ायम रखकर चलो तो उससे हमारे धर्म के मर्म का विरुद्धाचरण ही होगा । हिन्दू-धर्म का वह मर्मभाग अमर है, हमेशा रहेगा और मनुष्यों का उससे कल्याण ही होगा, क्योंकि मनुष्य-प्रकृति में ही उनकी नींव है । सभी धर्म में विशेष विधियाँ सामयिक ही होती हैं । वे समय-भेद के अनुसार परिहार्य तथा परिवर्तनीय हैं।" इत्यादि ।

बंकिमचंद्र के धर्मतत्त्व की मैंने अवतारणा इसलिये की कि उनकी साहित्य-साधना धर्मानुशीलन से बिल्कुल भिन्न पर्याय की वस्तु नहीं थी, यदि वे प्रत्यक्ष रूप से स्वजाति, स्वदेश तथा स्वसमाज से अपने साहित्य की प्रेरणा प्राप्त करते थे, तो परोक्ष रूप से मनुष्य का अदृष्ट तथा मनुष्यता के आदर्श की खोज से ही उन्हें प्रेरणा मिलती थी ।* बंकिमचंद्र साहित्य में आदर्शवादी थे, उन्होंने लिखा है, "काव्य का मुख्य उद्देश्य नीतिज्ञान नहीं है, किंतु नीतिज्ञान का जो उद्देश्य है काव्य का भी वही उद्देश्य है, याने चित्तशुद्धि ।" उन्होंने उत्तरचरित की समालोचना करते हुए और भी लिखा है, "जो लोग कुकाव्य निर्माणकर दूसरों के चित्त को कलुषित करने की चेष्टा करते हैं, वे

*देखिये—आधुनिक बंगला-साहित्य—श्री मोहितलाल मजुमदार ।

चोरों की तरह मनुष्यजाति के शत्रु हैं, और उनको चोरों की तरह शारीरिक दंड दिया जाना चाहिये।"

ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है कि बँगला के प्रथम दिग्विजयी उपन्यासकार साहित्य में किस मत को लेकर चलने के पक्षपाती थे, किन्तु सौभाग्य से वे उपन्यास लिखते समय हमेशा अपने इस मत को स्मरण में न रख सके, जिसे वे कला समझते थे, उन्हीं सामाजिक शक्तियों ने उन्हें डिगा दिया, और उन्हें बहुत कुछ वास्तवता से बाँध रक्खा। अवश्य यह भी है कि अन्त तक चलकर उन्होंने खींचखाँच-कर अपने आदर्श को निभा ही दिया। उपन्यासों की भलाई के हक़ में एक और भी अच्छी बात हुई, वह यह कि बंकिमचंद्र के सामने उपन्यास के आदर्श के रूप में अंग्रेजी के रोमांचिक लेखकों की रचनायें थीं। बँगला के सुप्रसिद्ध आदर्शवादी कवि-समालोचक श्री मोहितलाल ने बंकिमचंद्र के उपन्यासों की इस प्रकार संक्षिप्त आलोचना की है।

"उनके पहले उपन्यास 'दुर्गेशनन्दिनी' में साहित्यिक प्रेरणा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। 'दुर्गेशनन्दिनी' बँगला का पहला रोमैन्स है जो अंग्रेजी रोमैंसों के सुपरिचित आदर्श पर लिखा हुआ है। 'मृणालिनी', 'युगलाङ्गुरीय', 'राधाराणी' भी इसी एक ही आदर्श पर रचित हैं। हाँ, 'मृणालिनी' की कल्पना में देश-प्रेम ने पहिले-पहल प्रवेश किया है। उनके द्वितीय उपन्यास 'कपालकुण्डला' को एक उत्कृष्ट काव्य कहा जा सकता है। चौथा उपन्यास 'विषवृक्ष', 'चन्द्रशेखर' और 'कृष्णकान्तेर विल' समाज-समस्या और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से लिखे गये थे। 'आनन्दमठ' और 'राजसिंह' में देश-प्रेम की प्रधानता है, 'देवी चौधुरानी' तथा 'सीताराम' में धर्मसमस्या प्रबल है, 'रजनी' में निरा मनोविज्ञान तथा 'इंदिरा' में गल्परचना का ही आनंद है। देखा गया कि विशुद्ध उपन्यास अर्थात् जिनमें समाज-नैतिक तथा धर्मनैतिक कोई उद्देश्य नहीं है उनकी संख्या बहुत कम है,

ऐसी रचनाओं में 'कपालकुण्डला' सबसे सुन्दर कृति है। जिनमें स्वदेश, समाज, धर्म या नीति से प्रेरणा ली गई है उनमें जगह-जगह पर कल्पना की चरम स्फूर्ति हुई है, चरित्र की महिमा तथा घटना-विन्यास की चतुरता के कारण वे नाटकीय सौन्दर्य से मंडित हो गये हैं। समस्या की खींचातानी में बहुत-सी भयंकर त्रुटियाँ रहने पर भी बंकिम की जो कुछ सृजन शक्ति है उसने मानो इन्हीं समस्याओं के घातप्रतिघात में पड़कर पत्थर पर घिसे हुए इस्पात के फले की तरह चिनगारियों की वर्षा की है।"

बंकिमचन्द्र ने यूरोप के रोमांचिक शैली के पौधे को भारत में लाकर स्थापित ही नहीं किया, बल्कि उसको सम्पूर्ण रूप से यहाँ की आबोहवा का अभ्यस्त (acclimatise) करके यहीं की मिट्टी से रस ग्रहणकर पल्लवित पुष्पित होना सिखलाया। इसमें तो सन्देह नहीं कि बंकिम यूरोपीय साहित्य के ऋणी हैं, किन्तु इस ऋण के परिमाण के सम्बन्ध में लोगों का ज्ञान अक्सर अतिरंजित है। एक विद्वान् लेखक श्रीकुमार बनर्जी का कथन है कि इस बात का कोई प्रमाण नहीं कि बंकिम जेन अस्टेन, डिकेन्स, थैकरे तथा जार्ज इलियट से परिचित थे। हाँ स्काट के साथ उनका परिचय निःसन्देह है। उनके एक उपन्यास में लार्ड लिटन की छाया भी है, किन्तु "उनकी कला सम्पूर्ण रूप से मौलिक है और इन दिग्गजों का अनुकरण-मात्र नहीं।" मैंने जो उपमा इस पैरा के प्रारम्भ में दी है वह बिल्कुल सत्य है, उन्होंने पाश्चात्यों से यह तो सीखा कि उपन्यास का स्वरूप तथा ढाँचा कैसा होना चाहिये, किन्तु इसके अलावा उनके उपन्यासों का माल-मसाला सभी स्वदेशी है। बंकिम से पौराणिक-क्लासिक साहित्य युग का अवसान होकर बँगला साहित्य का सूत्रपात होता है। पहले ही बताया जा चुका कि यूरोप में बहुत पहले साहित्य की यह रोमांचिक धारा पूर्ण परिपक्वता को पहुँच चुकी थी।

रोमांचिक साहित्यकारगण साहित्य को art d' amuser les oisifs याने अवसरवालों के मनोरंजन की सामग्री समझते थे, इसलिये वास्तविक जगत से उनका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं था याने उतना ही उनका वास्तविक जगत से सम्बन्ध था जिसके बगैर उनके रस का परिपाक ही असंभव होता। रोमैंस और वस्तुवादी साहित्य के प्रभेद का स्पष्टीकरण करते हुए डाक्टर सुबोध सेन ने कवित्वपूर्ण शब्दों में कहा है—"रोमैंस सत्य को सुन्दर की सहायता से प्राप्त करता है, और वस्तुवादी साहित्य सत्य के ज़रिये से सुन्दर का अनुसन्धान करता है।" रोमांचिक श्रेणी के उपन्यास-रूपी पौधे के लिये जो मिट्टी उपयोग में आती थी वह मूलतः देश की मिट्टी ही थी, किन्तु ऐसी मिट्टी जो गमले के अंदर बन्द होने के कारण देश की मिट्टी से अब कोई सम्बन्ध नहीं रखती थी, और वह गमले भी कैसे कि जो रंगीन तथा उद्दाम कल्पना के तारों के सहारे शून्य में लटक रहे हों। बंकिम साहित्य को हम इसी प्रकार एक शून्य में लटकते हुए टब में लगे हुए विचित्र छटासमन्वित सुन्दर पौधा करके कल्पना कर सकते हैं, इस टब में जो मिट्टी है, वह भारतीय साहित्यिक परम्परा (literary-tradition) सूर्य से प्राप्त नाईट्रोजन के अतिरिक्त अंग्रेज़ी साहित्य से लाये हुए अन्य बहुत तरह के खाद तथा उर्वराशक्ति-वृद्धिकारक उपकरणों से युक्त है। बँगला के एक समालोचक रवीन्द्रनाथ और बंकिमचन्द्र की तुलना करते हुए कहते-कहते कह गये हैं "रवीन्द्रनाथ की तरह विशुद्ध भारतीय मन बंकिमचन्द्र को भी नहीं मिला था, इस दृष्टि से बल्कि बंकिम यूरोप के ही मानसपुत्र हैं।"*

इस प्रकार अब तक बँगला उपन्यास के विकास में निम्नलिखित बातें हुईं—

---

*देखिये रवीन्द्रनाथ निबन्ध—मोहितलाल मजुमदार।

(१) अंग्रेज़ी साहित्य के संस्पर्श में आने के बाद ही बँगला में गद्य का निर्माण हुआ, इसलिये गद्य उपन्यास याने वास्तविक उपन्यास का निर्माण तभी होना शुरू हुआ।

(२) पहले-पहल जो उपन्यास लेखक हुए उनको कुँआ खोदना और पानी पीना दोनों करना पड़ता था, याने साथ-साथ गद्य भी गढ़ते जाना और उपन्यास भी लिखना पड़ता था, इस प्रकार उनकी प्रतिभा का अधिकांश भाग प्रथमोक्त प्रयास में क्षय हो जाता था।

(३) बंकिमचंद्र बँगला के प्रथम सफल उपन्यासकार हैं, उनकी 'दुर्गेशनन्दिनी' बँगला का पहला रोमैंस है। बंकिमचंद्र ने यूरोप के १९वीं सदी के उपन्यासकारों की रोमांचिक धारा को सफलता-पूर्वक अपनाकर उसमें चार चाँद लगा दिये। उन्होंने ही इतिहास के कंकाल में प्राण फूँककर एक साहित्यिक इन्द्रजाल की रचना की।

डाक्टर सुबोध सेन ने बंकिमचन्द्र के उपन्यासों को तीन वर्गों में विभक्त किया है। 'राजसिंह' एक सुबृहत् ऐतिहासिक उपन्यास है; 'कृष्णकान्त का बिल', 'विषवृक्ष' आदि उपन्यासों में सामाजिक और पारिवारिक जीवन का चित्र खींचा गया है; 'दुर्गेशनन्दिनी', 'कपाल-कुण्डला', 'मृणालिणी' आदि में इतिहास है, पारिवारिक जीवन का चि भी है, किन्तु ये फिर भी ठीक-ठीक न तो ऐतिहासिक उपन्यास ही हैं और न पारिवारिक जीवन की कहानी हैं, क्योंकि इनमें कल्पना का एक ऐसा ऐश्वर्य है जो पारिवारिक जीवन की वास्तविकता को लंघन कर गया है, साथ ही जिसने इतिहास के दावे को सम्पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया है। कल्पना की यह जो समृद्धि है, यह न केवल हमारे गिनाये हुए तीसरी क़िस्म के उपन्यासों में परिलक्षित हुआ है,

बल्कि बंकिम के सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों में भी इसी समृद्धि का बोलबाला है। बंकिम के ऐतिहासिक उपन्यास में अतीत युग के युद्धविग्रह या सामाजिक जीवन के पुङ्खानुपुङ्ख और वास्तविक चित्र नहीं दिया गया है। उनका ऐतिहासिक उपन्यास थैकारे का हेनरी ऐस्मांड श्रेणी के उपन्यास से सम्पूर्णरूप से भिन्न है। उनकी कल्पना ने इतिहास को विचित्र वर्णसंपन्न बनाया है....। बंकिम के पात्रों का प्रधान गुण यह नहीं है कि उनमें विभिन्न प्रवृत्तियों का समावेश नहीं, बल्कि एक प्रवृत्तिका ऐश्वर्य है। केवल दो-एक पात्रों में ही उन्होंने साधारण मनुष्य का चित्र खींचा है। ऐसे साधारण मनुष्यों में पहले ही नगेन्द्रनाथ या गोविन्दलाल का स्मरण हो आयेगा।...डाक्टर श्रीकुमार के अनुसार बंकिम में पाप के प्रति स्वाभाविक वितृष्णा थी, वर्त्तमान युग के वस्तुवादी उपन्यासकारों की तरह पाप का विश्लेषण करना उन्हें पसंद नहीं था।...बंकिमचन्द्र ने अपने कई उपन्यासों में इतिहास का आश्रय लिया है, फिर भी उन्होंने विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास एक ही—'राजसिंह'—लिखा है।...उनके अपने मतानुसार भी 'राजसिंह' ही उनका एकमात्र ऐतिहाशिक उपन्यास है।"* जहाँ तक काल्पनिक जगत में उड़ने की बात है बंकिमचन्द्र देवकीनन्दन खत्री की ही जाति के थे, किन्तु बंकिम तथा खत्री में फ़र्क़ यह था कि एक ने परिष्कृत स्वरूप को अपनाया, दूसरा ऊलजलूल कल्पना-जगत में विचरता रहा, एक ने आधुनिक कला को अपनाकर कल्पना की उड़ान भरी, दूसरा केवल चंडूखानों में भटकता रहा। बंकिम का मनोविज्ञान से कोई सम्बन्ध नहीं था। उनके उपन्यासों में मानसिक द्वन्द और परिवर्त्तन का चित्र बहुत कम है। जहाँ मानसिक परिवर्त्तन भी है वहाँ वह आकस्मिक है, लेखक उसको वर्णित परिस्थितियों में स्वाभाविक करके दिखा नहीं पाये।

---

*शरतचन्द्र—डाक्टर सुबोध सेन

उड़ान भरी, दूसरा केवल चंडूखानों में भटकता रहा। बंकिम का मनोविज्ञान से कोई सम्बन्ध नहीं था। उनके उपन्यासों में मानसिक द्वन्द्व और परिवर्त्तन का चित्र बहुत कम है। जहाँ मानसिक परिवर्त्तन भी है वहाँ वह आकस्मिक है, लेखक उसको वर्णित परिस्थितियों में स्वाभाविक करके दिखा नहीं पाये।

हमने बंकिमचन्द्र को ज़रा विस्तारपूर्वक समझने की चेष्टा की, क्योंकि उनको समझे बिना शरत-प्रतिभा को समझना असम्भव है। बंकिम के बाद बँगला साहित्य में रोमैंस की एक बाढ़-सी आ गई, इनमें रमेशचन्द्र आदि कई लेखक अब भी पढ़े जाते हैं। "शेक्सपियर के नाटक तथा स्काट के रोमैंसों को पढ़कर बङ्गाल में" (अर्थात् बंगाली अंग्रेज़ी शिक्षित मध्यवित्त तथा उच्च श्रेणी के लोगों में) "जब रस की भूख जगी", तो उन्होंने अपने आस-पास मुँह फेरा, बंकिम आदि की उसीसे उत्पत्ति हुई। बंकिम, रमेश आदि को पढ़कर उस भूख का कुछ निरसन हुआ। इसमें तो कोई भी सन्देह नहीं कि यह पढ़ी-लिखी अलस श्रेणी का साहित्य था, फिर भी इन उपन्यासों ने भाषा के नवीन रूप प्रदान कर उसमें दाने बँधवाने में (crystallise) तथा बहुत-सी सुन्दर कल्पनाओं को जनप्रिय बनाने में सहायता दी।

बँगला के दूसरे शक्तिशाली युगप्रवर्तक उपन्यासकार रवीन्द्रनाथ ने बङ्किम युग में ही अपनी दिग्विजय की यात्रा शुरू कर दी, इसलिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि 'राजर्षि' तथा "बौठाकुराणीर हाट" में उन्होंने भी रोमांचिक साहित्यिक धारा को ही अपनाया है। रवीन्द्रनाथ केवल औपन्यासिक नहीं हैं, वे एक ही साथ कवि, नाटककार, गल्पलेखक, समालोचक, अभिनेता, चित्रकार, संगीतज्ञ आदि हैं। उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। रवीन्द्रनाथ प्राच्य और पाश्चात्य साहित्य, दर्शन, कला के मर्मज्ञ पंडित हैं, उनकी प्रतिभा ने बँगला

भाषा को जो रूप दिया, उसकी तुलना नहीं हो सकती। "उन्होंने बँगला भाषा को सङ्गीत रस में विगलित कर जो रूप दिया, उसका प्रभाव अजेय है, इस प्रकार उसने जो सौष्ठव तथा नमनीयता प्राप्त की, वह अब से सब तरह के साहित्य-निर्माण में कलाकार मात्र के लिये अपरिहार्य होनेवाली थी।"❀

रवीन्द्रनाथ के उपन्यासों में शीघ्र ही एक नवीन तान सुनाई पड़ने लगी। वस्तुवादी तो उनको कहना कठिन है, रोमैंटिक भी नहीं कह सकते, किन्तु इतना अवश्य है कि बङ्गाली मध्यवित्त श्रेणी में जिन विचारों के संघर्षों के कारण उथल-पुथल मची हुई थी, उनका परिचय उनमें है। रवीन्द्रनाथ संभ्रांत ब्राह्म परिवार में पैदा हुए थे, उनकी शिक्षा-दीक्षा राजा राममोहन, केशवचंद्र, देवेन्द्रनाथ ठाकुर आदि के उदार विचारों की छत्रछाया में हुई थी। गतानुगतिक सनातन समाज और प्रगतिशील ब्रह्म समाज में जो संघर्ष हो रहा था, उसका चित्र हम रवीन्द्रनाथ में पाते हैं, यहाँ तक तो यह वस्तुवादी है, किन्तु बाकी सब अंशों में हम कवीन्द्र के उपन्यासों में वस्तुवाद और आदर्शवाद में समन्वय की चेष्टा पाते हैं।

क्या रवीन्द्रनाथ सम्पूर्ण रूप से रोमैंस से मुक्ति प्राप्त कर सके? इस प्रश्न का उत्तर डाक्टर सुबोध सेन निम्नलिखित रूप से देते हैं—"उन्होंने भी एक नये ढङ्ग के रोमैंस की सृष्टि की है, और इस प्रकार के रोमैंस की पूर्ण अभिव्यक्ति उनके अंतिम वर्षों में लिखित उपन्यास 'चार अध्याय', 'शेषेर कविता', 'मालंच', 'चतुरंग', आदि में हुई है। इन उपन्यासों में दैनिक जीवन की कथा को काव्य के कल्प-लोक में उठाकर अपरूपता प्रदान की गई है। जिन नर-नारियों की बात इनमें लिखी गई है, वे असाधारण नहीं हैं, न उनके जीवनों में अलौकिक घटनायें ही सन्निविष्ट हुई हैं, किन्तु इनकी अनुभूति इतनी

❀ वही

सूक्ष्म और तीव्र है, कल्पना इतनी रङ्गीन है, बुद्धि इतनी कमनीय है कि उनको जीवन-यात्रा को वास्तविक जीवन की प्रतिच्छवि नहीं कहा जा सकता। इन सब उपन्यासों के कथानकों में वह परिपूर्णता नहीं है जिसे उपन्यास का अपरिहार्य अंग समझा जाता है। ये जैसे जीवन के कुछ कवित्वपूर्ण मुहूर्तों की समष्टिमात्र हैं, इनमें उपन्यासों और काव्यों के प्रभेद को दूर कर देने की चेष्टा की गई है। इनमें मन्थरगति विश्लेषण नहीं है, केवल कविकल्पना के ज़रिये से तीक्ष्ण अंतर्दृष्टि का परिचय प्राप्त होता है। इस प्रकार के उपन्यासों को विशुद्ध उपन्यास कहा जा सकता है या नहीं इस पर तरह-तरह का संदेह किया गया है।" डाक्टर श्रीकुमार का भी इन उपन्यासों के सम्बंध में यह कहना है कि 'इन उपन्यासों में विश्लेषण और सांकेतिकता दोनों के समन्वय को अच्छी तरह नहीं निबाहा गया।' किन्तु यह तो रवीन्द्रनाथ के उन उपन्यासों की बात हुई जो शरत साहित्य के बाद रचित हुए, इसलिये उनमें शरत साहित्य के बीज ढूँढ़ने चलना अनैतिहासिक तथा हास्यास्पद प्रयत्न होगा। इसलिये हम यहाँ रवीन्द्रनाथ के उन्हीं उपन्यासों का उल्लेख करेंगे जो प्राक्शरत युग में रचित हुए थे।

यहाँ पर रवीन्द्रनाथ के उपन्यास 'गोरा' को लिया जाय, उसका नायक गौरमोहन बंगाली नैष्ठिक या कट्टर परिवार में पालित अंग्रेज़ का लड़का है। उसके माँ-बाप का पता न पाकर एक ब्राह्मण-दम्पति ने परित्यक्त शिशु गौरमोहन को पाल लिया। उसका पालन-पोषण एक ब्राह्मण बालक की ही भाँति होता है, किन्तु भीतर-भीतर उसे उसके पालक पिता बचाकर चलते हैं। यह लड़का कट्टर सनातनी है, वह बड़े जोर से सनातनियों की ओर से ब्रह्म समाजियों से लोहा लेता है। एक दफे लोहा लेना हद दर्जे को पहुँच जाता है, उस समय उसका पिता एकाएक उसे बुलाकर उसका असली परिचय उसे कह देते हैं। बस अररर धम् से वह अपने को सनातन धर्म के शिखर से गिरता हुआ पाता है। अरे वह एक अंग्रेज़ का बच्चा, उसके लिये

अब ब्रह्म समाज के अतिरिक्त और कहीं कोई जगह नहीं रहती। यही संक्षेप में कथा-भाग का सार है। हाँ, इसमें प्रेम भी आता है, मित्रता भी आती है, कवि की कल्पना की छटा भी है, किन्तु मुख्य समस्या यही है। उपन्यास के दौरान में लम्बी-लम्बी बहसें हैं, जिनमें धर्म तथा समाज के अनेक पहेलुओं के बाल की खाल निकाली गई है। उपन्यास जमा भी ख़ूब है, किन्तु रोमैंस की ओर इसका झुकाव पग-पग पर स्पष्ट है। रवीन्द्रनाथ आदर्श और वस्तु के बीच में बराबर ठनकते दृष्टिगोचर होते हैं।

'चोखेर बालि' या 'आँख की किरकिरी' उपन्यास में रवीन्द्रनाथ बंकिमयुग से बिल्कुल अपना छुटकारा कर चुके हैं। कहा गया है कि 'दुर्गेशनन्दिनी' के बाद किसी उपन्यास ने यदि उपन्यास-साहित्य में नवयुग का प्रवर्तन किया है तो वह 'आँख की किरकिरी' ही है। स्वयं शरत्चन्द्र ने रवीन्द्र-जयन्ती के एक उत्सव के उपलक्ष्य में भाषण देते हुए यह कहा था कि वे साहित्य में गुरुवाद मानते हैं, इस सिलसिले में उन्होंने 'आँख की किरकिरी' का उल्लेख किया था। अवश्य इससे यह अनुमान करना ग़लत होगा कि उन्होंने 'आँख की किरकिरी' का अनुकरण मात्र किया, संभव है कि वे अनुकरण से ही चले हों, किन्तु वे उससे आगे गये। रवि बाबू जहाँ केवल बहुत-से उस समय के सामाजिक नियमों से वर्जित विषय को जैसे विधवा में प्रेमलिप्सा को स्वाभाविक बताकर रह गये, वहाँ शरत ने कहीं आगे बढ़कर समाज के सम्मुख प्रश्नों की झड़ी लगा दी। डाक्टर सेन की भाषा में शरत प्रीतिहीन धर्म तथा क्षमाहीन समाज से पूछ बैठते हैं कि उनसे कुछ मानवीय कल्याण भी हुआ है। प्रश्न ऐसे ढंग से पूछा गया है कि उसका मतलब साफ़ ही यह निकलता है कि कल्याण नहीं है। 'आँख की किरकिरी' में "विधवा की प्रणयाकांक्षा का चित्र है, किन्तु रवीन्द्रनाथ ने कहीं पर भी विनोदिनी को चाबुक नहीं लगाये हैं। उन्होंने उसकी आकांक्षा को रमणी की सहजात स्वाभाविक आकांक्षा करके

ग्रहणकर उसका विश्लेषण तथा वर्णन किया है। उन्होंने इस उद्दाम प्रवृत्ति का जयगान नहीं गाया है, बल्कि यह उच्छृङ्खलता किस प्रकार के प्रलय की सृष्टि करती है इसी का चित्र खींचा है, किंतु चूँकि विनोदिनी विधवा है इसलिए उसका किसी पुरुष पर आसक्त होना अनुचित होगा ऐसी बद्धमूल धारणा लेकर रवीन्द्रनाथ उपन्यास लिखने के लिये प्रवृत्त नहीं हुए ; बल्कि वैसी अवस्था में उसके लिये महेन्द्र या बिहारी के प्रति आसक्त होना ही उनके लिये स्वाभाविक था यही इस उपन्यास का प्रतिपाद्य है। किसी भी विषय में सम्पूर्ण तटस्थता की रक्षा करना कठिन हो जाता है, और कला के लिये तटस्थता अनुकूल भी नहीं है। इसी कारण उपन्यास के अंतिम अंश की ओर विनोदिनी का चरित्र अद्भुत हो गया है। ऐसा ज्ञात होता है जैसे लेखक ने एक ऐसे चरित्र की सृष्टि की है, जिसकी परिणति के सम्बन्ध में वे अपने मन को स्थिर नहीं कर पाये। फिर भी प्रचलित कुसंस्कार से मुक्त होकर नरनारी के चित्र खींचने को चेष्टा करते हैं। यही खास बात है। इसीसे बँगला उपन्यास में एक नवयुग की सूचना होती है।"* रवीन्द्रनाथ ने 'नौकाडूबी' में प्रचलित संस्कारों को माना है, किन्तु 'आँख की किरकिरी' में वे नई धारा को लेकर चलते हैं।

यहाँ रवीन्द्रनाथ के उपन्यासों की विस्तृत आलोचना करने की न तो आवश्यकता ही है न अवसर ही है; केवल "यदि हम उनके गल्पगुच्छ को लें, जो बँगला कथा-साहित्य में उनकी सबसे सुन्दर तथा मौलिक सृष्टि है, तो हमें ज्ञात होगा कि बंकिम की भावुकता ने जिस वास्तविकता से मुँह मोड़कर रस की खोज की थी, रवीन्द्रनाथ की आदर्शवादिता ने उसी वास्तविकता को एक अपूर्व महिमा से मंडित कर दिया है। जो कल्पना सम्पूर्ण रूप से व्यक्तिगत या subjective है उसी कल्पना के रंग में जो नितान्त साधारण तथा सुपरिचित

* शरत्चन्द्र—सुबोध सेन, पृ० ११-२

है, यहाँ तक कि तुच्छ और क्षुद्र है, वही अपूर्व सुन्दर हो गया है। वास्तविकता के बीच से ही लोकोत्तर चमत्कार का विस्मय रस संचारित हुआ है। वास्तविकता के अतिपरिचय के आवरण को मुक्त-कर वस्तु के अन्तर्निहित सौन्दर्य को आविष्कार कर देना ही उनकी कल्पना की मूल प्रवृत्ति है। वह कल्पना वस्तु को एकदम रूपान्तरित कर देती है, किन्तु प्रतिभासित होता है जैसे यही इसका वास्तविक रूप है। × × × × यही रवीन्द्रनाथ की साहित्य-सृष्टि का रहस्य है। ज़रा सोच देखा जाय तो ज्ञात हो जायगा कि यह idealism—यह आदर्शवाद कितना दुरूह, कितना महान है, जिसमें पृथिवी की धूलि-मिट्टी को सोने में परिवर्तित कर देना पड़ता है। अवश्य ही मनुष्य की साधारण सुख-दुख आशा-आकांक्षा को विश्वसृष्टि के रहस्य के अन्तर्भुक्त कर देखना कोई मामूली आदर्शवाद नहीं है।"*

रवीन्द्रनाथ के युग से कहीं पहले बंकिमचन्द्र के प्रभाव के युग में ही तारकनाथ गङ्गोपाध्याय नामक एक लेखक ने 'स्वर्णलता' नामक एक उपन्यास लिखकर साहित्य में एक दूसरी ही धारा की विराट संभावना दिखाकर लोगों को चकित कर दिया था। 'स्वर्णलता' में बङ्गाली समाज के सुख-दुःख की हूबहू तस्वीर दी गई थी, फलस्वरूप इस पुस्तक के संस्करण के बाद संस्करण निकले। बंकिम-युग में किसी भी पुस्तक को इतनी सफलता प्राप्त न हुई। स्वर्णलता की अद्भुत सफलता को देखकर बहुत से लेखकों ने इसका अनुकरण किया, किन्तु उनको कोई सफलता नहीं मिली। यहाँ तक कि स्वयं तारकनाथ ने अन्य कई पुस्तकें लिखीं, किन्तु उनमें वे इस प्रकार सफल न हो सके, उनकी प्रतिभा मानो एक बार जलकर के ही बुझ गई थी। बंकिम और रवीन्द्रनाथ की रचनाओं के बीच में स्वर्णलता की रचना एक अद्भुत

*देखिये मोहितलाल मजुमदार – शरतचन्द्र

घटना है, किन्तु तारकनाथ की प्रतिभा जलकर के ही बुझ जानेवाली प्रतिभा होने के कारण यह धारा अपनी निजी शिष्यमण्डली क़ायम न कर सकी।

रवीन्द्रनाथ किसी मानवीय घटना को पृथक करके देखने में असमर्थ थे, वे उसे हमेशा विश्वप्रकृति के साथ मिलाकर ही देखते थे, और विश्वप्रकृति के उनके देखने के ढङ्ग में चूँकि अतिप्राकृतिक उद्देश्य तथा श्रृंखला शामिल थी, इसलिये वे वास्तव को देख तो पाये, किन्तु साथ ही साथ उनकी रचना में पग-पग पर वास्तविकता के परे जो वास्तविकता है वह झलक गई। फलस्वरूप वे वस्तुवादी न हो पाये। रवीन्द्रनाथ बुराई को देख नहीं पाये ऐसा नहीं, किन्तु उन्होंने बुराई के साथ-साथ या उसके ठीक पीछे भलाई को खड़ी पाया, नतीजा यह है कि वे बुराई को उस रूप में देख दिखा नहीं पाये जिस रूप में उसे भुक्तभोगी देखते हैं। इसलिये स्वभावतः उनकी अनुभूति और आमलोगों की अनुभूति में आकाश-पाताल का भेद पड़ गया। उनकी कल्पना की जादूगरी के कारण यह एक निराली चीज़ हुई किन्तु यह वस्तुवाद नहीं हुआ।

रवीन्द्रनाथ के ही मंडल में एक शक्तिशाली गल्पलेखक का आविर्भाव हुआ, जो उनसे बिल्कुल विभिन्न रास्ते पर गये, ये थे प्रभातकुमार, इनके गल्पों में वास्तविकता की जो कल्पना है, उसके साथ विश्वप्रकृति का कोई सम्बन्ध ढूँढ़ा नहीं गया था। उनकी शैली सहज, सरल है, उसमें किसी की राह ढूँढ़ने या बताने की चेष्टा नहीं है। रवीन्द्रनाथ पराजित, उत्पीड़ित, ऐहिक रूप से वंचित एक देश के दार्शनिक, कवि तथा लेखक हैं। रवीन्द्रनाथ उस तबक़ा के कवि हैं जिसमें वास्तविकता को वास्तविकता के रूप में लेने का साहस नहीं रह गया; तो प्रभातकुमार उस श्रेणी के दार्शनिक तथा लेखक हैं जो अधिक सोचना नहीं गवारा कर सकती, यह श्रेणी या तो जो कुछ उसके पास है उसीके

लिये भगवान का शुक्रगुजार है या उसको परेशानी इतनी अधिक है कि गल्र में वह इससे दूर ही रहना चाहती है।

रवीन्द्रनाथ जिस समय अपनी छटा से साहित्य-गगन को दूर-दूर तक आलोकप्लावित कर चुके हैं, उसी समय उसीके एक कोने में ज़ोरों से बिजली चमकी। एक नवीन रोशनी से आकाश में हलचल पैदा हो गई, यही शरत्चंद्र थे।*

---

*आधुनिक बंगला साहित्य, पृष्ठ २६४

प्रारम्भिक जीवन

१८७६ के १५ सितम्बर को बँगाल के हुगली ज़िले के एक छोटे से गांव देवानन्दपुर में शरत्चन्द्र का जन्म हुआ। उनके पिता मोतीलाल चट्टोपाध्याय गाँव के एक मामूली गृहस्थ थे, उनकी माता श्रीमती भुवनमोहिनी एक मामूली महिला थी। देवानन्दपुर का वातावरण एक मामूली गाँव का वातावरण था। इस गाँव में यदि कोई विशेषता थी तो यह कि बंगाल के सुप्रसिद्ध कवि भारतचंद्र ने यहाँ अपना कैशोर बिताया था। कहना न होगा कि यह कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि भारतचन्द्र ने यदि इस गाँव में अपनी वह उम्र व्यतीत की जब वे कवि नहीं थे, तो इससे वहाँ के वातावरण में कुछ साहित्यिकता नहीं आ गई। हमें आश्चर्य है कि शरतचद्र के भक्त लेखकों ने इस बात को इतना महत्त्व क्यों दिया। शरत्चन्द्र की प्रतिभा उत्सस्थल के लिये हमें दूसरी ही ओर ढूँढ़ना पड़ेगा।

शरत्चंद्र के पिता मोतीलाल साहित्यानुरागी थे, जितने शायद वे साहित्यानुशीलन करते थे उससे कहीं बढ़कर वे कल्पना का घोड़ा दौड़ाने के शौकीन थे। उन्होंने चित्रकारी भी की, उपन्यास भी लिखा, किंतु कभी भी किसी रचना को सम्पूर्ण नहीं किया। कुछ दूर तक ले जाकर वे अपनी रचना को वहीं छोड़कर आगे बढ़ जाते थे, और दूसरे काम में मनोनिवेश करते थे। वे जन्म भर साधना ही करते रहे, सिद्धि का मुँह उन्होंने कभी नहीं देखा। सांसारिक रूप से वे नितांत असफल व्यक्ति थे, उनकी माँ परिवार के कामकाज को आमदनी कम होते हुए भी ज्यों-त्यों चलाती रही। उनके मरने के बाद कल्पना-विलासी मोती बाबू को आटे-दाल का भाव मालूम हुआ, फिर तो सारा परिवार ही तितरबितर हो गया।

मोती बाबू की नौ संतानें हुई थीं। पहली संतान एक कन्या थी, अनिला देवी; इसके बाद ही शरत् बाबू पैदा हुए। इसके बाद एक के बाद एक चार लड़के पैदा हुए, किंतु वे बचपन में ही मर गये। इनके बाद दो पुत्र तथा एक कन्या और हुई। मोती बाबू अपने बच्चों के प्रति या तो विशेष स्नेहशील थे, या तो काल्पनिक होने के कारण उनका कोई शासन नहीं करते थे। फलस्वरूप बालक शरत् के जो जी में आता था वे सो ही करते थे, शरत् बाबू ने स्वयं ही अपने बचपन के विषय में लिखा है—

"बचपन की बात याद है। गाँव में मछली का शिकारकर, डोंगियों को ढकेलकर तथा नाव खेकर दिन कटते थे। कभी-कभी नौटङ्की (यात्रा) के दल में जाकर शागिर्दी करते थे, फिर उससे भी जब जी ऊब जाता था तो अँगोछा कंधे पर रखकर निकल पड़ते थे। यह निकल पड़ना विश्वकवि के काव्य की निरुद्देश्य यात्रा नहीं थी, हमारी यात्रा ज़रा दूसरे ढङ्ग की थी। वह भी जब ख़तम हो जाती तो एक दिन फिर चोट खाये हुए अपने चरणों को तथा निर्जीव देह को लेकर घर वापस होते थे। वहाँ आवभगत की बारी जब समाप्त हो जाती, तो फिर पाठशाला में चालान किया जाता, वहाँ फिर एक बार आवभगत होने के बाद 'बोधोदय' तथा 'पद्यपाठ' से दिल लगाता। फिर एक दिन सब की कराई प्रतिज्ञा भूल जाते थे, दुष्ट सरस्वती कन्धे पर सवार हो जाती थी। फलस्वरूप फिर शागिर्दी शुरू होती, फिर घर से नो दो ग्यारह हो जाता, फिर एक बार आवभगत की झड़ी लग जाती। इस प्रकार 'बोधोदय' तथा 'पद्यपाठ' पढ़ते-पढ़ते बचपन का एक अध्याय समाप्त हो गया।"

इस वर्णन में साहित्य-प्रेम का तो कहीं पता नहीं है, बल्कि उससे विमुखता ही सूचित होती है। यदि कोई लड़का ऐसा आचरण करे जैसा शरत् बाबू ने लड़कपन में किया, तो उसके साहित्यिक भविष्य के

सम्बन्ध में आशान्वित न होकर हम तो उसके विषय में सब तरह से निराश ही होंगे। किंतु नहीं, शरतचंद्र में एक बात थी जो उनकी प्रतिभा के विकास के लिये बहुत ही सहायक थी, वह थी उनकी पर्यवेक्षणशीलता। शरत्चंद्र बाद को चलकर उस ढंग के औपन्यासिक नहीं होनेवाले थे, जो मेज़ के सामने कुर्सी लगाकर उस पर बैठकर समस्याओं तथा उलझनों की कल्पना करते हैं, वे उन परिस्थितियों, समस्याओं, उलझनों के बीच में से स्वयं गुज़रनेवाले थे। शरत्चंद्र ने अपने या अपने अत्यन्त निकट के लोगों की जीवनी ही अपने उपन्यासों में लिखी है।

'देवदास' उपन्यास के पूर्वार्द्ध में शरत्चन्द्र ने अपनी ही जीवनी लिखी है। मुझे तो ज्ञात होता है देवदास नाम भी देवानन्दपुर गाँव से ही सम्बन्ध रखता है। जो कुछ भी हो, शरत्चन्द्र की लिखी हुई उपरोक्त आत्मकथा से उन्हीं का लिखा हुआ देवदास के बचपन का वर्णन कितना मिलता है इसको पाठक देखें। 'देवदास' उपन्यास यों प्रारम्भ होता है—

"एक दिन वैशाख के दुपहर में न तो धूप का ही ओरछोर था, न गर्मी की ही कोई सीमा थी। ऐसे समय मुखर्जी घराने का देवदास पाठशाला की कोठरी के एक कोने में फटी चटाई पर बैठकर, स्लेट हाथ में लेकर, आँख खोलकर, फिर बन्दकर, पैर फैलाकर, जमुहाई लेकर, अंत तक एकदम अत्यन्त चिंताग्रस्त हो गया; और एक ही मुहूर्त में वह इस नतीजे पर पहुँचा कि ऐसे परम रमणीय समय में खेतों में पतंग उड़ाने के बदले इस प्रकार पाठशाले में बन्द रहना कुछ नहीं है। उसके उपजाऊ दिमाग़ में एक तरक़ीब भी सूझ गई। स्लेट हाथ में लेकर वह उठ खड़ा हुआ।"

"पाठशाले में इस समय टिफिन की छुट्टी थी। लड़के तरह-तरह की आवाज़ करते हुए पास ही एक वटवृक्ष के नीचे गुल्लीडंडा खेल रहे थे। देवदास ने एक बार उनकी ओर देखा। टिफिन की

छुट्टी देवदास को नहीं मिलती थी, क्योंकि गोविन्द पंडित ने बहुत दफे देखा था कि एक बार पाठशाला के बाहर हो जाने के बाद वहाँ वापस आना देवदास नापसन्द करता है। उसके पिता की भी मनाही थी। विविध कारणों से यह तय हुआ था कि टिफिन के समय वह मुख्य छात्र भुलो के जिम्मे रहेगा।" इत्यादि

यह गोविन्द पंडित शायद शरत् बाबू के शिक्षक पियारी पंडित थे, बाद को यह पाठशाला वर्नाक्युलर स्कूल में परिवर्तित हो गई थी। इसी स्कूल में एक अद्भुत लड़की उनकी सहपाठिनी थी। यह लड़की उनके हर तरीके के काम में सहायिका थी। स्कूल में किसी लड़के से उनका विशेष पटता नहीं था, किन्तु यह लड़की उनके सम्भव-असंभव हर तरीके के काम में साथ देती थी। इस लड़की को वे बहुत ही प्यार करते थे, किंतु साथ ही साथ जब क्रोध आता था तो उसे बेदर्दी के साथ मारते थे, किंतु वह लड़की ऐसी सुशीला थी कि कभी कहीं मार खाई बताकर अपने मित्र को पिटवाती नहीं थी। दोनों में झगड़ा भी आसानी से होता था, और फिर मेल उससे भी आसानी से होता था। शरत्चंद्र के उपन्यासों में यह लड़की बारबार आती है। 'देवदास' की पार्वती या 'श्रीकांत' को राजलक्ष्मी ज्ञात होता है यही लड़की थी। पता नहीं देवानन्दपुर के बाद भी इस लड़की से शरत्चंद्र से कभी साबका पड़ा कि नहीं, शरत्चंद्र ने इस लड़की का असली नाम कभी किसी से बताया नहीं, किंतु पार्वती तथा राजलक्ष्मी चरित्र की सजीवता ही इस बात का प्रमाण है कि 'देवदास' उपन्यास की पार्वती तथा 'श्रीकांत' की राजलक्ष्मी कोई कपोल-कल्पित चरित्र नहीं है। शरत् साहित्य के यह दो नारीचरित्र बँगला साहित्य की अमर सृष्टि है।

मोती बाबू काल्पनिक तो थे ही, साथ ही साथ नौकरी करने के मामले में ज़रा कच्चे पड़ते थे, यद्यपि अंग्रेज़ी शासन में उत्पन्न मध्यवित्त श्रेणी का स्वर्ण-युग अभी तक समाप्त नहीं हुआ था। नौकरियों के

बाजार में अभी तक अंग्रेजी-शिक्षितों की माँग काफ़ी थी। मोती बाबू अंग्रेज़ी, बँगला दोनों जानते थे, कई बार उन्होंने अनिच्छापूर्वक नौकरी कर भी ली, कुछ दिनों तक अच्छी तरह उसे करते रहे। फिर एक दिन एकाएक सब छोड़छाड़कर आकर घर बैठ जाते थे। कहना न होगा मध्यवित्त श्रेणी की लक्ष्मी (नौकरी) के प्रति उनकी इस प्रकार अल्प श्रद्धा के कारण लोग उन्हें अवारागर्द की तरह समझते थे, और उनसे ऐसा ही व्यवहार करते थे। मोती बाबू इन सब बातों की परवाह न कर कविता, नाटक, गल्प, उपन्यास लिखते थे, चित्र खींचते थे या अध्ययन में मग्न हो जाते थे। लोग जिसे काम-काज या धंधा कहते है उसके प्रति यह उदासीनता मोती बाबू से उनके पुत्रों में आई। शरत् बाबू की जीवनी तो एक अव्वल नम्बर अवारागर्द की जीवनी है ही उसकी तो हम विशद आलोचना करने ही जा रहे हैं, किंतु शरत् बाबू के एक भाई प्रभासचन्द्र संन्यासी होकर जब तक जीते रहे मारे-मारे फिरते रहे, दूसरे एक भाई प्रकाशचन्द्र ने बड़ी कठिनता से शरत् बाबू के कहने पर शादी आदि कर घर रहना स्वीकार किया। शुरू के जीवन में वे भी अवारागर्द थे।

शरत्चन्द्र पढ़ने-लिखने से भागते थे, किन्तु मछली पकड़ने के लिये उनके दिल में अदम्य लालसा थी, इस काम के लिये वे किसी भी जोखिम को तुच्छ समझते थे। उन्होंने सुन रक्खा था कि वसंतपुर में मछली पकड़ने का अच्छा सरंजाम मिलता है। बहुत दिनों से वे इसकी टोह में थे कि किसी तरह इस गाँव में पहुँचे किंतु मौक़ा नहीं लग रहा था। एक दिन उन्होंने सुना कि उनके पड़ोसी नयन सर्दार वहाँ गाय ख़रीदने जा रहा है। बस चुपके से वे उसे भी न बताकर उसके पीछे हो लिये। नयन सर्दार प्रसिद्ध लठैत था, वह अकेले ही चला। जब वह काफ़ी दूर पहुँच गया तो उसे मालूम हुआ कि बालक शरत् उसके साथ है, किंतु अब वह इतना दूर आ चुका था कि पीछे हटने का अवसर न था। मजबूरी से अब उसे आठ नौ

वर्ष के इस लड़के को अपना साथी बनाना पड़ा। गाय खरीदते देर हो गई, रास्ते में डकैतों ने रात को इनको घेर लिया, किंतु नयन सर्दार ने लाठी के ज़ोर से अपनी तथा भविष्य औपन्यासिक की रक्षा की।

जीवित तितलियों को पकड़ने का भी उन्हें बड़ा शौक़ था। इसके साथ ही बागवानी का भी वे शौक रखते थे। उनके पिता मोतीलाल बाबू को लड़के की इन बातों पर कुछ विशेष आपत्ति न थी, शायद लड़के के सब जौहरों का उनको पता भी नहीं लगता था, किन्तु शरत्चंद्र को बिल्कुल ही जब विद्याविमुख पाया, तो वे लड़कों को लेकर भागलपुर पहुँचे। इसके बाद शरत्चंद्र अपने मुँह से ही उनकी जीवनी सुनी जाय—

"अब शहर में आया। केवल 'बोधोदय' की विद्या पर ही गुरुजनों ने छात्रवृत्ति श्रेणी में भर्ती कर दिया। उसमें 'सीतार वनवास', 'चारुपाठ', 'सद्भाव सद्गुरु' और प्रकांड व्याकरण पढ़ना पड़ता था। यह कोई पढ़ जाना नहीं था, मासिक या साप्ताहिक में समालोचना लिखना नहीं था, बल्कि स्वयं पडितजी के सामने खड़े होकर प्रतिदिन परीक्षा देना था। इसलिये यह बात निःसंकोच ही कही जा सकती है कि साहित्य के साथ मेरा प्रथम परिचय आँसुओं के साथ हुआ। फिर किसी तरह दुःख में ये भी दिन कट गये। उस समय मुझे मालूम ही नहीं था कि मनुष्य को दुःख पहुँचाने के अलावा भी साहित्य का कोई उद्देश्य हो सकता है।"

भागलपुर में आकर शरत्चंद्र जिस श्रेणी में भर्ती हुए, उसके भी उपयुक्त विद्या उनमें नहीं थी। बुद्धिमान शरत्चन्द्र ने इस बात का जल्दी ही पता पा लिया। उनकी तरह अभिमानी बालक भला इस बात को कब बर्दाश्त करनेवाला था, इसलिये उन्होंने पढ़ना शुरू कर दिया और जल्दी हो 'अच्छे लड़के' गिने जाने लगे। इन दिनों उनका ख़्याल शारीरिक उन्नति, अखाड़ा आदि की ओर गया। इस युग में

चाहे जो कुछ भी हो, किन्तु उस ज़माने में मध्य वित्त श्रेणी के भद्रजनों में यह भी गुंडई में शामिल था, इसलिये शरत्चन्द्र ने छिपकर ही इस ओर ध्यान दिया था। पड़ोस में एक भुतहा मकान था, उसीके आँगन में शरत्चन्द्र ने अपनी शिष्य मंडली के साथ एक अखाड़ा रातोरात पैदा कर दिया। एक पैरालेल बार की कमी पड़ती थी, सो लड़के कहाँ से इसे ख़रीदते, इसलिए शरत्चन्द्र ने तय किया कि बाँस का पैरालेल बार बनाया जाय। तदनुसार बाँस का पैरालेल बार बनाकर छिपकर कसरत की जाने लगी।

भागलपुर में मामा के मकान पर एक पुस्तक थी 'संसार-कोष'। पुस्तक क्या थी भानुमती का पिटारा था। लेखक ने शायद ही कोई विषय ऐसा हो जिसपर अपनी मूल्यवान राय ज़ाहिर न की हो, जहाँ लेखक को कुछ मालूम न था वहाँ उन्होंने कल्पना से काम लिया था। बालक शरत्चन्द्र को इतना क्या मालूम था, वे तो संसार-कोष की हरेक बात को वेदवाक्य ही समझते थे। आखिर जब छापे के हरफ में है तो क्या झूठ होगा। शरत्चन्द्र तब इस बात की कल्पना ही नहीं कर सकते थे। किसी विपत्ति से बचने के लिये उसमें एक मंत्र दिया हुआ था, शरत्चंद्र ने स्वयं इस मत्र को सीखकर अपने साथियों को सिखलाया। वह मंत्र यों था—

ओ३म् ह्रीं घु घुं रक्ष रक्ष स्वाहा—

शरतचंद्र के 'श्रीकांत' नामक उपन्यास में मन्त्र सीखने के पागलपन का बारबार वर्णन आता है। उस वर्णन की सजीवता तथा मर्मग्राहिता का कारण इस घटना को जानने के बाद भलीभाँति समझ में आता है।

'श्रीकांत' में है कि साँपों की जड़ीबूटी जानने के लिये ही श्रीकांत तथा इन्द्रनाथ शाहजी के यहाँ बड़ी विपत्तियों का सामना करके भी जाया करते थे, तथा उससे साँपों को वश में करने का मंत्र तथा पत्थर लेने

के लोभ में भेंट पर भेंट चढ़ाते थे। शरत्चंद्र स्वयं इसके पीछे बहुत दिनों तक दीवाने रहे। उसी संसारकोष में लिखा था कि यह तो एक आँखों की देखी हुई बात है कि यदि बेल की जड़ हाथ में रखकर किसी भी साँप को पकड़ा जाय तो वह चाहे जितना ही विषैला हो, फ़ौरन ही फन उतारकर चुप हो जायगा। फिर क्या है शरत्चन्द्र ने बेल की जड़ निकाली, किन्तु संसारकोष की बात की सत्यता की जाँच के लिये साँप कहाँ से मिलता। अब शरत्चद्र और उनके साथी अन्न जल त्यागकर साँप की तलाश में पड़ गये, किंतु साँप जो अनायास मिल जाते थे उस दिन काफ़ूर हो गये थे। अन्त में एक साँप के बच्चे का पता लगा। शरत्चन्द्र मारे खुशी के फूले न समाए, वे अपनी बेल की जड़ लेकर पहुँचे। लड़कों के अत्याचार से तथा भागने का रास्ता न पाकर वह साँप जो कि असली काला नाग था खड़ा हो गया। यही तो मौक़ा था शरत्चन्द्र ने आगे बढ़कर बेल की जड़ उसके सामने कर दी, किन्तु अरे यह क्या साँप ने निस्तेज होकर गिर पड़ने के बजाय संसार-कोष की असत्यता का प्रमाण देते हुए उसी जड़ को कई बार डस दिया। शरत्चन्द्र को इस प्रकार सर्पजगत् पर आधिपत्य प्राप्त करने की अभिलाषा को त्याग देना पड़ा। इस बीच में छोकरों में से एक ने लाठी लाकर साँप का सनातन रीति से संहार किया।

शरत्चन्द्र गोल बाँधकर शरारत करने के अभ्यस्त होने पर भी कभी-कभी इस प्रकार गायब हो जाते थे कि उनके नन्दी भृंगी सहचर उनका कोई पता ही नहीं पाते थे। यदि कोई पूछता कि तुम कहाँ गये थे तो इसके उत्तर में वे कहते थे तपोवन में, किन्तु यह तपोवन कहाँ था इसका पता वे किसी को नहीं देते थे। एक बार उनके एक खेल के साथी जो उनके दूर के मामा भी लगते थे, किन्तु उम्र में कम थे, श्री सुरेन्द्रनाथ गङ्गोपाध्याय ने बड़ी मुश्किलों से उनके इस तपोवन में साथ जाने की अनुमति प्राप्त की। वे लिखते हैं—

"घोष घराने के टूटे मकान के उत्तर में एक तरफ गङ्गा के ऐन ... ही एक कमरे के नीचे कुछ नीम और करौंदे के पेड़ों ने थोड़ी सी जगह को बिलकुल अँधेरा कर रक्खा था। लताओं ने इस जगह को ऐसा घेरघार रक्खा था कि किसी आदमी के लिये उसमें घुसना कठिन था। शरत्चन्द्र बड़ी सावधानी से एक जगह की लताओं को हटाकर उसके भीतर गये। भीतर जो थोड़ी सी जगह थी, वह साफ-सुथरी थी। हरी-हरी लताओं के अन्दर से सूर्यकिरण छनकर उसके अन्दर जाती थी, वह रोशनी ऐसी मीठी थी कि देखकर तबियत प्रसन्न हो जाती थी, और चित्त शान्त हो जाता था। पास ही एक बड़ा सा पत्थर था। उस पर अच्छी तरह पलथी मारकर बैठकर शरत्चन्द्र ने साथी को सप्रेम बुलाया— आ...

साथी जाकर डरते-डरते सम्भ्रम के साथ पास जाकर बैठा। नीचे खरस्रोता गङ्गा बह रही थी। दूर में गङ्गा के उस पार का दृश्य साफ साफ दिखाई पड़ता था। मन्द मन्द वायु शरीर में एक कोमल स्पर्श देकर बह जाती थी। साथी ने मुग्ध होकर कहा–यह जगह तो बड़ी सुन्दर है!

शरत्चन्द्र ने कहा—इस जगह पर बैठे रहना मुझे बहुत भला लगता है, यहाँ बैठकर न मालूम मैं क्या-क्या सोचा करता हूँ।

साथी ने कहा — वाकई यह जगह बिलकुल तपोवन की-सी है।

शरत्चन्द्र ने लौटते समय साथी से कहा—यहाँ अकेला कभी न आना। यहाँ साँप रहते हैं, समझा!"

इस तपोवन के साथ 'देवदास' के इस दृश्य की तुलना की जाय। देवदास स्कूल से मुख्य छात्र भुलो को चूने में ढकेल कर भाग गया था। किसी को पता नहीं था वह कहाँ है, केवल पार्वती जानती थी कि वह कहाँ छिपा है। "पार्वती ने अपने आँचल में लाई बाँधकर

ज़मींदारों के एक आम के बाग में प्रवेश किया। बाग़ उसी के मकान के पास था। और उसके एक किनारे पर एक बाँस का जंगल था। वह जानती थी छिपकर तम्बाकू पीने के लिये देवदास ने इसी बाँसों के जंगल में थोड़ी सी जगह साफ कर रक्खी थी। भागकर छिप रहने की यही उसकी जगह थी। भीतर घुसकर पार्वती ने देखा देवदास हाथ में एक छोटा हुक्का लेकर बड़ी गम्भीरता के साथ तम्बाकू पी रहा था। चेहरे पर भी गांभीर्य था, मानो कोई बड़ी दुश्चिन्ता उस पर सवार हो" इत्यादि।

भागलपुर में रहते समय शरत्चन्द्र का राजेन्द्र नाम के एक नौजवान का साथ हुआ, इस व्यक्ति को अपने 'श्रीकान्त' उपन्यास में इन्द्रनाथ नाम से उन्होंने चित्रित किया। राजू या राजेन्द्र ही उनके भले-बुरे सब कामों का गुरु था। राजू एक तरफ तो संगीत में विशेष-कर वंशी बजाने में उस्ताद थे, दूसरी ओर नाव खेना, मछली पकड़ना, पेड़ पर चढ़ना इत्यादि कामों में भी सुदक्ष थे। शरत्चन्द्र ने अपने समवयस्क इसी गुरु से संगीत सीखा, किन्तु गुरु के द्वारा पीटे पाटे जाने पर भी बाँसुरी बजाने में वे उतनी पटुता प्राप्त न कर सके जितना तबला, हार्मोनियम, बेहला तथा इसराज में प्राप्त कर लिया। वे अभिनय-कला में भी कुछ दिन दिलचस्पी लेते रहे, कहते हैं बंकिमचद्र की 'मृणालिनी' के नाटकीय संस्करण के अभिनय में उन्होंने एक स्त्री का पाट अच्छी तरह किया था। शरत्चन्द्र अब इन सब बातों के साथ-साथ अच्छे छात्र भी हो गये थे। अंग्रेजी स्कूल में भर्ती होते ही पहले ही साल शायद उनको डबल प्रोमोशन मिला था।

भागलपुर में रहते समय यह जो लड़का 'राजू' मिला था, इसका शरतचन्द्र पर अमिट प्रभाव पड़ा। शरत्चन्द्र लड़कपन से ही मध्य-वित्त श्रेणी के उन शरीफ लड़कों से भिन्न थे जो कोर्स की पुस्तक पढ़ते हैं और जीवन के संघर्ष से दूर रहते हैं, जिनमें न तो भला होने का ही साहस होता है न बुरा होने का बल। शरत्चन्द्र घर

से बारबार भाग चूके थे, एक दफे तो कौड़ी न लेकर जगन्नाथपुरी तक हो आये थे। इस प्रकार शरत्चन्द्र बारबार उन बातों की चाक्षुष अभिज्ञता हासिल करते जा रहे थे, जिनके बूते पर वे शरत्चन्द्र होनेवाले थे। राजू के साथ भेंट होने के कारण इस अभिज्ञता का दायरा और बड़ा तथा गहरा हो गया।

हम यथासमय 'श्रीकान्त' उपन्यास की आलोचना करेंगे, किन्तु इस राजू ने शरतचन्द पर कितना प्रभाव डाला था यह इसी उपन्यास को पढ़ने पर हमें ज्ञात होता है श्रीकांत (शरत्चन्द्र ?) लिखते हैं "वह वही इन्द्रनाथ है। उस दिन जब उसने फुटबाल के मैच में अकेले बहुत से मुसलमान शरारती लड़कों से मुहड़ा लिया था—तब मैंने सोचा था हाय यदि मैं इसी ताक़त के साथ इस प्रकार मारपीट कर सकता, और आज रात को (जब मैंने बाँसुरी सुनी) तो जब तक मैं सो न गया सिर्फ यही कामना करता रहा, हाय यदि मैं इस प्रकार बाँसुरी बजा पाता।" इस वर्णन के शब्द-शब्द से स्पष्ट है कि यह काल्पनिक वर्णन नहीं है, बल्कि इसके प्रत्येक हरफ में एक व्याकुल हृदय की धड़कन सुनाई पड़ती है। इस राजू का अधिक परिचय नहीं मिल सका। कहा जाता है वह एक दिन जो कुछ उसके पास था सब बेच-बाच कर निकल पड़ा, फिर तब से उसका कोई पता न लगा।

भागलपुर में मोती बाबू न टिक सके, क्योंकि वहाँ घरेलू मामलों को लेकर आये दिन टंटे-बखेड़े खड़े ही होते रहे। मोती बाबू इसलिये फिर सपरिवार देवानन्दपुर पहुँचे। वहाँ शरतचंद्र हुगली ब्रांच स्कूल में भर्ती हुए, और राजू की दी हुई शिक्षा के कारण शीघ्र ही लड़कों के सरदार हो गये। शरत्चन्द्र यों ही बड़े शरारती थे, तिसपर भागलपुर की ट्रेनिंग। अब शरतचन्द्र अपने आगे किसी को कुछ समझते ही नहीं थे, और अब दोनों तरफ धारवाला छुरा लेकर फिरते थे। इस छुरे के कारण तथा अन्य कारणों से गाँव के सब शरारती लड़के शरत्चन्द्र के अनुगामी हो गये। शरतचन्द्र के इस गिरोह के लिये दूसरे

के पोखरे से मछली तथा बाग़ से फल चुराना बायें हाथ का खेल था। यह लोग अपने खाने भर का चुराकर ही सन्तुष्ट नहीं होते थे, बल्कि जिनको वे ग़रीब तथा ज़रूरतमन्द समझते थे उन्हें घर में पहुँचा आते थे। 'श्रीकान्त' उपन्यास में शरत्चंद्र ने इन्द्रनाथ तथा श्रीकान्त का एक साथ बड़ी विपत्तियों का सामना करते हुए मछली चुराने के सजीव वर्णन से जो पन्ने के बाद पन्ने रंग डाले हैं वह किसी अलस काल्पनिक का कल्पना-विलास नहीं है। आसपास के गाँववाले शरत्चंद्र तथा उनके गिरोह से इतना परेशान हो गये थे कि वे उन्हें रँगे हाथों पकड़-कर रगड़ डालना चाहते थे, किंतु गाँववाले यदि डार-डार थे तो वे पात-पात थे, इसलिये वे बच गये, नहीं तो नमालूम किसी बोरस्टल जेल में उनकी प्रतिभा को ज़िन्दा दफना दिया जाता।

बहुत से गरीब जिनको ज़रूरत थी शरत्चंद्र के पास आते थे, और उनकी लूट के माल से किसी तरह तन धारण कर रहते थे। शरत्चंद्र की दस्युता यद्यपि फल और मछलियों तक सीमिति थी, किंतु इसका पैमाना छोटा न था। इन सब कामों में सदानन्द नाम का एक लड़का उनका लेफ़्टिनेन्ट बना। शरद् बाबू ने 'शुभदा' नामक उपन्यास में इसको चित्रित किया है। जब सदानन्द के घरवालों को ज्ञात हुआ कि वह शरतचंद्र के साथ उठता-बैठता है तो उस पर कड़ी निगरानी रक्खी जाने लगी और उस पर घरवालों की यह आज्ञा जारी हुई कि वह शरत्चद्र के साथ कभी न मिले। एक समय निगरानी से बचकर दोनों मित्र मिले, तो उन्होंने जल्दी से तय कर लिया कि भविष्य में कैसे मुलाक़ात की जायगी। यह तय हुआ कि सदानन्द के मकान से लगा हुआ जो आम का पेड़ है उससे सीढ़ी लगाकर सदानन्द के मकान के छत पर रोज़ शरत्चंद्र रात के समय पहुँचेंगे। वहाँ शतरंज लगा-लगाया रक्खा रहेगा, फिर दोनों मित्र चुपचाप खेलेंगे। इसके बाद दोनों अपनी नैश यात्राओं में निकलेंगे, फिर दोनों अपने अपने घर

लौटेंगे। ऐसा ही वे करते थे, और घर लौटकर अच्छे लड़के की भाँति सोते थे।

देवानन्दपुर में लौटकर अबकी बार जिन लोगों के संस्पर्श में वे आये, उनमें से केवल सदानन्द को ही उन्होंने अपनी रचनाओं में स्थान दिया हो ऐसा नहीं, 'विलासी' गल्प का मृत्युञ्जय इसी गाँव का रहनेवाला एक समाज से निकाला हुआ अभागा था। मृत्युञ्जय का अपराध इतना भर था कि एक कथित नीच जाति की लड़की के साथ प्रेम में पड़ने के बाद उसने उसको उपपत्नी के रूप में न रखकर साथ में रहने लगा, और उसने उसको पत्नी की मर्यादा देने की चेष्टा की। इसी पर समाज के स्तम्भों ने उसे समाज से निकाल दिया, जब उसने इस पर भी प्रायश्चित्त कर उस लड़की को त्यागने के बजाय समाज को ही त्याग दिया, तब समाज ने ज़बर्दस्ती उसकी स्त्री को अपमानित कर उसे अपमानित किया, किंतु फिर भी अपमानित होते हुए उसने समाज के निकट घुटना न टेका। अन्त में उस बेचारे की बड़ी करुण परिस्थितियों में मृत्यु हुई। लड़की ने आत्महत्या कर ली।

मृत्युञ्जय की मृत्यु से शरत्चंद्र समाज की निष्ठुरता पर इतने क्रुद्ध हो गये हैं कि गल्प के अन्तिम पैराग्राफों में वे इस बात के लिये प्रतीक्षा नहीं करते कि पाठक गल्प से अपना उपसंहार आप निकाल ले, वे स्वयं ही आवेश में आकर लिखते हैं—

"मुझे मालूम होता है कि जिस देश की नरनारियों में परस्पर हृदय जय कर विवाह करने की प्रथा नहीं है, बल्कि ऐसा करना निन्दा की सामग्री है; जिस देश की नरनारियाँ आशा करने का सौभाग्य तथा आकांक्षा करने के भयंकर आनन्द से हमेशा के लिये वंचित हैं, जिनको जीवन में न तो कभी जय का गर्व और न पराजय की व्यथा भोगनी पड़ती है, जो न तो भूल करने के दुःख तथा भूल न करने के आत्मप्रसाद दोनों में से किसी बला को भी नहीं पालते, जिनके प्राचीन तथा अभिज्ञ समाज ने देशवासियों को सब तरह के हंगामों से बड़ी

सावधानी से अलग रखकर उनको आजीवन निरा अच्छा ही बनाये रक्खा है, जहाँ विवाह केवल एक contract है चाहे वैदिक मंत्रों के द्वारा उसका दस्तावेज़ कितना ही पक्का किया गया हो, वहाँ के लोगों के लिए मृत्युञ्जय के अन्न-पाप को समझना टेढ़ी खीर है। विलासी को जिन लोगों ने बुरा-भला कहा था, मैं जानता हूँ वे सभी साधु गृहस्थ और साध्वी गृहणियाँ थीं, अक्षय सतीलोक उन्हें मिलेगा यह भी मैं जानता हूँ, किन्तु सेख सपेरे की लड़की।जब उस शय्यागत व्यक्ति मृत्युञ्जय को तिल तिल कर जीत रही थी, उसके उस गौरव का एक कण शायद इन लोगों ने कभी अनुभव करना तो दूर रहा आँख से देखा भी नहीं है।"

'पंडित मशाई' उपन्यास का कुञ्ज वैष्णव भी देवानन्दपुर का रहनेवाला था। 'श्रीकान्त' में जो 'गलाय दोड़े' बाग़ का ज़िकर है कहा जाता है वह अब भी देवानन्दपुर में मौजूद है। देवानन्दपुर के रघुनाथ गोस्वामी के अखाड़ा को ही श्रीकान्त में श्रीकृष्णपुर का अखाड़ा करके दिखलाया गया है।

मोतीबाबू क्रोध में तो देवानन्दपुर चले आये थे, किंतु जब वहाँ चला नहीं तो वे फिर भागलपुर पहुँचे। वे उन दिनों स्कूल की निम्न श्रेणी में पढ़ते थे। भागलपुर में आकर शरत्चंद्र फिर स्कूल में भर्ती हुए और १८९४ याने १८ साल की उम्र में एन्ट्रेंस परीक्षा पास हुए।

इसी एन्ट्रेंस पास करने के ज़माने में उन्होंने साहित्य चर्चा शुरू की और 'वासा' (घर) नाम से एक उपन्यास लिख डाला, किन्तु यह रचना उनके पसन्द के मुताबिक़ न होने के कारण उन्होंने उसको फाड़ कर फेंक दिया। उनके पिता मोतीबाबू तो किसी रचना को लिखते ही लिखते बीच में निराश होकर छोड़ देते थे, किन्तु पुत्र ने रचना समाप्त तो कर ली। यही खैरियत थी। इस प्रकार उन्होंने अपनी कई रचनाओं को फाड़ डाला था, बहुत से लोग जो समझते हैं कि शरत्-चंद्र ने एकाएक परिपूर्ण परिपक्व प्रतिभा का अधिकारी होकर साहित्य

क्षेत्र में पदार्पण किया वे कितनी ग़लती पर हैं यह इसी बात से प्रमाणित है। लेखों के सम्बंध में उनका आदर्श उच्च था, तभी वे अपनी अपुष्ट रचनाओं को जनता के समक्ष लाना नहीं चाहते थे। यह नीरव साधना वर्षों तक चलती रही।

एन्ट्रेन्स पास करने के बाद शरत्‌चंद्र भागलपुर के तेजनारायण जुबिली कालेज में भर्ती हुए। वे रवीन्द्र साहित्य के साथ वे थैकारे, डिकेन्स, मिसेस हेनरी उड के उपन्यास पढ़ने लगे। उन्होंने हेनरी उड के प्रसिद्ध उपन्यास ईस्टलीन के आधार पर 'अभिमान' नाम से एक उपन्यास लिखा था, साथ ही उन्होंने मेरी कारैली के 'माईटी ऐटम' पुस्तक का बँगला अनुवाद किया था, किन्तु इनको उन्होंने छपने कभी न दिया। अब तो इन सब पुस्तकों का कोई अस्तित्व भी नहीं रहा। शरत्‌चंद्र ने अब लिखने-पढ़ने की ओर ध्यान दिया था, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उन्होंने अपना शरारती जीवन छोड़ दिया था। राजू अब भी मौजूद था, अब तो इन मित्रयुगलों का रात-रातभर पता नहीं लगता था, न मालूम कहाँ ये रात्रि व्यतीत करते थे। घरवालों ने समझाया यह बुरी बात है, किन्तु वे माने नहीं, घरवालों ने इससे अधिक समझा कर ज़ोर डालना उचित नहीं समझा क्योंकि ऐसा करने पर शायद वे घर छोड़कर भाग निकलते। फिर पढ़ने-लिखने में वे अच्छे ही हो गये थे इसलिये वे अधिक छेड़छाड़ करना ठीक नहीं समझते थे।

उनके लड़कपन के साथी श्री सुरेन्द्रनाथ गङ्गोपाध्याय ने लिखा है—कालेज के प्रथम वर्ष में विज्ञान की परीक्षा के पहले की रात को शरत्‌चन्द्र ने हम लोगों से कहा, आज रात को कोई मेरे पास पढ़ने न आना, जिसको जो पूछना हो वे कल आकर पूछें। हम लोग तो चले गये, वे पढ़ने लगे। दूसरे दिन सबेरे हम गये तो वे नाराज़ होकर कहने लगे—हमने तो तुम लोगों से अभी कहा था कि कोई न आना, मैं आज न पढ़ाऊँगा, फिर तुम लोग क्यों आये। हम लोगों ने तब बताया कि सबेरा कब का हो चुका है, तब उन्होंने जँगले खोले तो

उन्हें पता लगा कि रात बीत चुकी है। शरत्चंद्र इस प्रकार धुन के पूरे पक्के थे, और धुन के सामने दिन-रात एक कर देते थे।

शरत्चंद्र ने स्वयं ही अपने विषय में लिखा है, "जिस परिवार में मैं पनपा वहाँ काव्य-उपन्यास पढ़ना असच्चरित्रता तथा संगीत अस्पृश्य समझा जाता था। वहाँ सभी लोग परीक्षा पास कर वकील बनने में ही अपनी इतिकर्तव्यता समझते थे, किन्तु अकस्मात् यहाँ भी एक क्रान्ति-सी हो गई। हमारे एक रिश्तेदार विदेश में रहकर कालेज में पढ़ते थे, वे घर में आये तो देखा गया कि संगीत में वे अनुराग रखते हैं, और काव्य में उन्हें दिलचस्पी है। एक दिन उन्होंने घर भर की औरतों को इकट्ठी कर रवीन्द्रनाथ लिखित 'प्रकृतिर प्रतिशोध' सुनाया। किसने कितना समझा पता नहीं, किन्तु जो पढ़ रहे थे उनके साथ मेरी आँखों में भी आँसू गये, फिर भी दुर्बलता न ज़ाहिर हो जाय इसलिये मैं उठकर जल्दी से बाहर चला गया। फिर रवीन्द्र काव्य के साथ दुबारा परिचय हुआ तो उसका पहला यथार्थ परिचय मिला। अब ऐसा हुआ कि इस परिवार के वकील बनने के वातावरण में जी घबड़ा गया, और मैं लौटा पुराने गाँव के मकान में। किन्तु अब की बार 'बोधोदय' नहीं, पिताजी की टूटी हुई अलमारी खोलकर मैंने 'हरिदास की गुप्त बातें' तथा 'भवानी पाठक' निकाला। गुरुजनों को दोष नहीं दे सकता, ये पुस्तकें स्कूल की पाठ्य पुस्तकें तो थीं नहीं, इसलिये बुरे लड़कों की योग्य अपाठ्य पुस्तकें वे थीं। इसलिये उनको पढ़ने के लिये मुझे चोरी का आश्रय लेना पड़ा। वहाँ मैं पढ़ता, साथी सुनते। अब पढ़ता नहीं हूँ, लिखता हूँ, उन्हें कौन पढ़ता है पता नहीं।"

मास्टर साहब ने स्नेहवश एक दिन मुझसे इतना इशारा किया कि एक स्कूल में अधिक दिन पढ़ने से विद्या नहीं आती। अतएव फिर शहर में लौटा। कह देना अच्छा है कि इसके बाद फिर स्कूल बदलने की ज़रूरत न हुई। अब मुझे बंकिम ग्रंथावली का पता

लगा। उपन्यास-साहित्य में इनके बाद भी कुछ हो सकता है यह उस ज़माने में सोच ही नहीं सकता था। इनको मैंने इतनी बार पढ़ा कि पुस्तकें जैसे कंठस्थ हो गईं। शायद यह मेरा एक दोष है। मैंने उनके अन्ध अनुकरण की भी चेष्टा की। रचना की दृष्टि से देखा जाय तो वे एकदम व्यर्थ हुए थे, किन्तु यदि साधना की दृष्टि से देखा जाय तो उनका संचय मन में अब भी अनुभव करता हूँ।"

"इसके बाद 'बंगदर्शन' पत्रिका के नव पर्याय का युग आया, रवीन्द्रनाथ की 'आँख की किरकिरी' (चोखेर बालि) उस समय उसमें धारावाहिक रूप से प्रकाशित हो रही थी। भाषा तथा अभिव्यक्ति की नवीन रोशनी आँख में आकर जैसे चुभ गई। उस दिन की वह गम्भीर तथा सुतीक्ष्ण अनुभूति की स्मृति मैं कभी नहीं भूलूँगा। किसी बात को ऐसे कहा जा सकता है, दूसरे की कल्पना की तसवीर में पाठक अपने मन को ऐसे देख पाता है इसके पहले मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था। इतने दिनों के बाद मुझे केवल साहित्य का ही नहीं अपने मन का भी एक परिचय मिला। बहुत पढ़ने पर ही बहुत हासिल होता है यह बात नहीं। इन कुछ पन्नों के ज़रिये से जिन्होंने इतना बड़ा सम्पद मेरे हाथ में पहुँचा दिया उनको कृतज्ञता प्रकट करूँ तो कैसे करूँ?"

"इसके बाद साहित्य के साथ मेरा बिछोह हुआ, मैं भूल ही गया कि कभी मैंने एक पंक्ति भी लिखी है। बहुत दिनों तक प्रवास में ही कटता रहा, इस बीच में कवि को केन्द्र बनाकर किस भाँति बँगला साहित्य द्रुतता के साथ उन्नति करने लगा मैंने उसका कुछ पता भी नहीं पाया। कवि के साथ न तो मुझे कभी घनिष्टता का ही सौभाग्य हुआ, न उनके पास बैठकर मैंने कभी साहित्य की शिक्षा ही पाई, मैं एकदम विच्छिन्न था। किन्तु यह हुआ बाहरी सत्य,। भीतरी सत्य इसके बिलकुल ही विपरीत था। उस विदेश में मेरे साथ कवि की कुछ पुस्तकें, काव्य तथा कथा-साहित्य था। मन में उनके प्रति थी परम

श्रद्धा तथा विश्वास। उस दौरान में मैंने घूम फिरकर उन्हीं कुछ पुस्तकों को बारबार पढ़ा उन में छन्द कौन सा है, अक्षर कितने हैं, आर्ट क्या है, उसकी परिभाषा क्या है, वज़न में कोई त्रुटि है कि नहीं, इन सब बड़ी-बड़ी बातों को कभी मैंने सोची भी नहीं, यह सब मेरे निकट बाहुल्यमात्र था। केवल सुदृढ़ प्रत्यय के तौर पर मेरे मन में यह था कि इससे पूर्णतर सृष्टि कोई नहीं हो सकती। क्या काव्य, क्या कथा साहित्य में यही मेरी पूँजी थी।"

"एक दिन जब एकाएक साहित्य सेवा की पुकार आई, तब मैं यौवन पार कर प्रौढ़ता के इलाके में क़दम रख चुका था। देह थकी हुई तथा उद्यम सीमित था, सीखने की उम्र बीत चुकी थी। मैं प्रवास में रहता था सब से विच्छिन्न तथा सब के लिये अपरिचित, फिर भी भय मेरे मन में नहीं आया।"

"मेरा बचपन तथा यौवन कठोर ग़रीबी में बीते थे। पैसों की कमी के कारण ही मुझे शिक्षालाभ का सौभाग्य न हुआ। मैंने अपने पिता के निकट अस्थिर स्वभाव तथा गम्भीर साहित्यानुराग के अतिरिक्त उत्तराधिकार सूत्र में कुछ नहीं पाया। पिता से पाये हुए प्रथम गुण के कारण मैं थोड़ी ही उम्र में सारे भारत की परिक्रमा कर आया था, और पिता से पाये हुए द्वितीय गुण के कारण मैंने जीवन भर स्वप्न ही देखा। मेरे पिता का पांडित्य अगाध था। कहानी, उपन्यास नाटक, कविता-साहित्य के हरेक विभाग में उन्होंने हाथ डाला था, किन्तु इनमें से किसी को उन्होंने समाप्त नहीं किया। उनकी रचनायें अब मेरे पास नहीं हैं, कब कहाँ कैसे खो गईं यह याद भी नहीं, किंतु यह याद है कि उनकी असमाप्त रचनाओं को पढ़ते-पढ़ते मेरे घंटों कट जाते थे। क्यों वे इन्हें समाप्त नहीं कर गये इस बात पर मुझे बड़ा अफसोस रहता था। असमाप्त अंश क्या हो सकते हैं। यह सोचकर मैं रातें बिना सोए काट देता था। कदाचित् इसी कारण से मैंने सत्रह साल की उम्र में गल्प लिखना शुरू किया। किन्तु कुछ दिनों

बाद गल्प लिखना यह कह कर छोड़ दिया था कि यह आलसियों का काम है। उसके बाद बहुत से साल चले गए, मैंने कभी एक भी पंक्ति लिखी थी यह भूल गया।"

"अठारह साल की उम्र के बाद एक दिन मैंने लिखना शुरू किया। इसका कारण दैव-दुर्घटना की ही तरह आकस्मिक था। मेरे कुछ पुराने मित्र एक छोटा सा मासिक पत्र निकालना चाहते थे, किन्तु प्रतिष्ठित लेखकों में से किसी ने इस सामान्य पत्रिका में लिखना स्वीकार नहीं किया। मजबूरी से उनमें से कुछ ने मुझे स्मरण किया। बड़ी कोशिशों के बाद उन्होंने मुझसे लेख भेजने का वादा करा पाया। यह १६१३ की बात है मैं नीमराज़ी था। किसी प्रकार उनके हाथों से छुटकारा पाने के लिए मैंने लेख देना स्वीकार किया था। मेरा उद्देश्य यह था कि एक दफे रंगून पहुँच जाऊँ तो फिर समझ लूँगा, किन्तु चिट्ठी के बाद चिट्ठी तथा तार के बाद तार पाकर मुझे फिर सचमुच ही कलम पकड़नी पड़ी। मैंने उनकी नव प्रकाशित यमुना के लिये एक छोटी कहानी भेजी। यह गल्प प्रकाशित होते ही बँगला के पाठक समाज में इसकी क़दर हुई। मैं भी एक ही दिन में प्रसिद्ध हो गया। फिर तो मैं फँस गया, और तब से बराबर लिख रहा हूँ।"

शरत्चन्द्र की शिक्षा तो यों खतम हुई कि जब एफ० ए० की परीक्षा का समय आया तो फीस के २०) रुपये न जुटने के कारण उन्हें पढ़ना-लिखना छोड़ देना पड़ा। इसका फल यह हुआ कि वे बड़े जोरों से फिर कुसंगति में गिर पड़े, किन्तु उनमें जो साहित्यचर्चा की प्यास उत्पन्न हो चुकी थी, वह भला कैसे निवृत्त होती। वे भीतर ही भीतर साहित्यानुशीलन करने लगे। वे कविता के बहुत प्रेमी थे, किन्तु उनकी प्रतिभा कविता के अनुकूल न होकर फ्रेंचों की तरह गद्यानुकूल होने के कारण वे गद्य ही लिखा करते थे, किन्तु एक एक पंक्ति तथा शब्द की उस भाँति साधना करते थे जैसे कवि करते हैं। जब तक एक भी शब्द उनकी रुचि के अनुसार होने से रह जाता था, और

जब तक वे उसे हटा कर दूसरा मौजूँ शब्द नहीं बैठा लेते थे, तब तक वे चैन नहीं लेते थे। यह बात नहीं कि कविता लिखने की उन्होंने कभी चेष्टा नहीं की, उन्होंने चेष्टा की, "फुलवने लेगेछे आगुन" नाम से उन्होंने एक अतुकांत कविता शुरू भी की थी, किंतु बीच में ही हमसे यह नहीं होने का कहकर छोड़ दिया। किसी भी कविता को शायद वे कभी सम्पूर्ण नहीं कर पाये, किन्तु बार-बार असफल होने पर भी उन्होंने कई बार कवि बनने की चेष्टा की। रवीन्द्रनाथ के युग में पैदा होकर तथा उन्हीं की भाषा में लेखनी धारणकर कवि बनने की यह चेष्टा खूब समझ में आती है। आज भी बँगला के अधिकांश गल्प-लेखक तथा औपन्यासिक कुछ न कुछ कविता लिखने की चेष्टा करते हैं, यद्यपि उनमें से अधिकांश की प्रतिभा सम्पूर्ण रूप से गद्य की ही प्रतिभा है।

आनातोल फ्रांस ने भी पहले-पहल कविता लिखना शुरू किया था, किन्तु शरत् बाबू की तरह उनकी सब कविता असम्पूर्ण ही नहीं रह गई, बल्कि उन्होंने तो एक कविता-संग्रह भी प्रकाशित किया था, किंतु इसके बाद वे गद्य की ओर ही ढले और आमरण काल तक गद्य ही लिखते रहे। शरतचन्द्र की कभी कोई कविता या कविता-खण्ड प्रकाशित नहीं हुआ; किन्तु कविता लिखने के लिये जो साधना उन्होंने की थी वह उनके उपन्यासों की भाषा में स्पष्ट है। कहीं-कहीं तो उनकी भाषा उद्दीप्त होकर कवितामयी हो गई है।

शरत्चन्द्र के नेतृत्व में भागलपुर में एक साहित्यिक गोष्ठी कायम हो गई थी। इनमें सर्वश्री सुरेन्द्र गङ्गोपाध्याय, गिरीन्द्रनाथ गङ्गोपाध्याय, निरुपमा देवी, विभूतिभूषण भट्ट, योगेशचन्द्र मजूमदार आदि थे। इनमें से सभी ने बाद में बँगला साहित्य में ख्याति प्राप्त की। इस गोष्ठी के सभापति शरत् बाबू थे। कविता तथा गल्प लिखना ही इस गोष्ठी का एकमात्र कार्यक्रम था। हाँ कवीन्द्र रवीन्द्र के काव्य की आलोचना करना भी इस गोष्ठी के सभ्यों का प्रिय कार्य था। सभापति

विषय दे देते थे, सभ्यों को सात दिन के अन्दर अपनी रचनायें सभापति के सामने पेश करना पड़ता था। सभापति सबको नम्बर देते थे। जब इतनी उम्र में ही वे इस प्रकार नम्बर देते थे, और यह सब होनहार नौजवान उनकी पेशवाई को मान लेते थे, इससे यह बात स्पष्ट है कि उसी उम्र में वे इतने साहित्यिक उत्कर्ष को पहुँचे थे कि ये लोग बिना चींचपड़ के उनका नम्बर देना स्वीकार कर लेते थे।

इसी ज़माने में शरत्चन्द्र का कुछ कट्टरपंथियों से संघर्ष हुआ। शरत्चन्द्र को इस उम्र में ही जीवन की बहुत तरह के ऊँच नीच का अनुभव हो चुका था, साहित्य से उनका परिचय भी गम्भीर तथा विस्तृत हो चुका था, किंतु अभी शरत्चन्द्र बनने में एक ही बात की कसर थी, वह यह थी कि वे अभी समाज के निष्ठुर, मूढ़, बुद्धि-विरुद्ध आचरण तथा गति से परिचित नहीं थे। वह परिचय इन्हें अब मिलने वाला था। भागलपुर के बंगालियों में उन दिनों दो दल थे। एक तो बिलकुल कट्टर तथा पोंगापन्थी था, इसके नेता शरत्चन्द्र के नाना श्री केदारनाथ गङ्गोपाध्याय थे, दूसरा सुधारक दल था। इसके, नेता श्री शिवचन्द्र वन्दोपाध्याय थे। शिवचन्द्र विलायत हो आये थे; वहाँ से लौटने पर वकालत में उन्हें बड़ी सफलता मिली थी। सरकार ने उन्हें राजा की उपाधि भी दी थी। विलायत जाने के कारण शिवचन्द्र समाज से निकाल भी दिये गये थे। कई बार उन्होंने प्रायश्चित आदि करके समाज में शामिल होना चाहा, किन्तु इसपर भी जब कट्टरपंथियों ने न माना तो उन्होंने कट्टरपंथियों को बिलकुल अँगूठा दिखा दिया और सुधारकों को अपने नेतृत्व में सङ्गठित किया।

गङ्गोपाध्याय लोगों के मकान के पास ही शिवचन्द्र का मकान था। शिवचन्द्र की एक तो आर्थिक हालत अच्छी थी, दूसरा उनके यहाँ कोई छुआ-छूत का विचार न होने के कारण नौजवान लोग वहीं जमते थे। फिर वहाँ कसरत करने के साधन थे, साथ ही एक थियेटर

पार्टी भी वहाँ मौजूद थी। शरत्चन्द्र को पारिवारिक दृष्टि से तो गङ्गोपाध्यायों का साथ देना चाहिये था, क्योंकि वे पोंगापंथियों के नेता केदार बाबू के परिवार के ही अन्तर्भुक्त थे, किन्तु शरत्चन्द्र को अधिक दिन यह बात शिवचन्द्र के यहाँ इकट्ठे नौजवानों से दूर न रख सकी। वह पहले-पहल छिपकर जाने लगे, किंतु जब बात फैल गई तो खुलेआम जाने लगे।

शरत्चन्द्र अपने गुणों के कारण जल्दी ही इस दल के एक मुख्य व्यक्ति हो गए। उनके मित्र राजू भी इस दल में खूब चमके। इन लोगों के अभिनय की इतनी प्रशंशा हुई कि भागलपुर के बंगालियों के बाहर भी इनकी धूम हो गई, इस बात से विरुद्ध दलवाले बहुत घबड़ा गये। ये हाथ धोकर इस अभिनेतृदल के पीछे पड़ गए, बुरे-भले सब तरीके से इसका विरुद्धाचरण किया, और तभी साँस ली जब इस दल को तोड़ दिया। जिन घरों के लड़के इन अभिनयों में भाग लेते थे वे सभी समाजच्युत किये गये। पाठक स्मरण रक्खें यह कोई गाँव गवँई की बात नहीं, बल्कि भागलपुर में रहने वाले उच्च शिक्षाभिमानी बंगालियों का यह आचरण था। उन्नीसवीं शताब्दी अब खतम हो रही थी। शरत्चन्द्र को भी समाज-निकाला दिया गया। गङ्गोपाध्यायों के यहाँ बड़े समारोह के साथ जगद्धात्री पूजा होती थी, इस अवसर पर भागलपुर के सारे प्रवासी बंगाली एकत्र होते, केवल नहीं आते थे तो शिवचंद्र और ऐसे ही कुछ लोग। शरत्चंद्र हर साल ऐसे अवसर पर शतहस्त होकर अतिथियों की सेवा करते थे, किंतु अब की बार शरत्चन्द्र को देखकर निमन्त्रित अभ्यागत आगबबूला हो गये, और उन लोगों ने कहा कि यदि शरत्चंद्र ने खाना परोसने में हाथ बटाया तो वे वहाँ पानी भी न पीकर उठ जायेंगे इसका नतीजा यह हुआ कि शरत्-चन्द्र अपने ही मामा के परिवार में अछूत को तरह दुत्कार कर निकाल दिये गये। रामचन्द्र ने धर्म की रक्षा के लिये सीता को बिना अपराध ही त्याग दिया था, फिर उसी रामचंद्र के धर्म के

ठेकेदार शरत्चन्द्र को अछूत क्यों न समझते। इस घटना से शरत्-चन्द्र के भावुक हृदय को बड़ी ठेस पहुँची, और वे सब छोड़छाड़कर घर से चले गये। इस समय वे एफ़० ए० के द्वितीय वर्ष के छात्र थे। छै महीने बाद वे प्राइवेट इम्तहान देने के लिये भागलपुर लौटे, किंतु जैसा कि हम पहले ही लिख चुके हैं कि २०) रु० फीस न जुटा पाने के कारण वे परीक्षा में न बैठ सके। वह २०) रु० वे इसी कारण नहीं जुटा पाये कि इनके ननिहाल के लोग इनके विरुद्ध थे। इस प्रकार छात्र जीवन की तो यहीं समाप्ति हुई।

१८९५ के नवम्बर में शरत्चन्द्र मातृहीन हो गये। पिता की गिरी आर्थिक हालत को देखकर शरत् बाबू ने बानली इस्टेट के श्री शिवशंकर शाहू के यहाँ नौकरी कर ली। यहीं इनको शिकार का चस्का लग गया, तथा वे गोली चलाने में धुरन्धर हो गये। उड़ती चिड़ियों को भी वे मार लेते थे। अपने उपन्यास 'श्रीकान्त' में इसी शिवशंकर साहू को कुमार साहब के नाम से चित्रित किया, किंतु साहूजी का नाम एक लेखक ने महादेव साहू लिखा है, साथ ही कहा है कि शरत्चन्द्र साहूजी के नियमित नौकर नहीं थे, बल्कि मुसाहिब के तौर पर थे। इस वर्णन के अनुसार एकाएक शरत्चंद्र की महादेव साहू की भेंट हुई थी, किंतु संगीत में पारदर्शिता के कारण साहूजी बारबार उन्हें बुलाते थे, इसलिये धीरे-धीरे उनके पास शरत्चन्द्र ने अपना स्थान कर लिया था।❋ इन दोनों में से कौन सा वर्णन सत्य है पता नहीं, किन्तु 'श्रीकान्त' उपन्यास की गवाही यदि ली जाय तो वह द्वितीय बात के हक में ठहरेगी।

शरत्चंद्र के पिता को तरह-तरह के पत्थरों के संग्रह करने का एक मर्ज़-सा था, उनके इस शौक के कारण एक पूरा बक्स तरह तरह के पत्थरों से भरा था। शरत्चंद्र के निकट इनकी कोई कद्र नहीं थी; उन्होंने पिता की अनुपस्थिति में इन पत्थरों को उठाकर एक धनी

❋ श्री सतीशचंद्र दास लिखित—शरत्-प्रतिभा, पृ० १७

मित्र को दे दिया। जब मोती बाबू को इस बात का पता लगा तो वे बहुत बिगड़े, शरत्चंद्र को इस बात से इतनी ग्लानि हुई कि वे फिर एकबार घर छोड़कर निकल गये।

अब की बार उन्होंने गेरुआ ग्रहण कर लिया, और मारे-मारे फिरते रहे। श्रीकान्त में संन्यासी जीवन के तजर्बे का बड़ा रोचक वर्णन है। हम उसमें से कुछ ही बातों का वर्णन करेंगे। श्रीकांत (शरत् बाबू) ने भटकते-भटकते एक दिन देखा कि एक आम के बाग से धुँआ निकल रहा है। वे लिखते हैं "मुझे न्यायशास्त्र मालूम था, इसलिये धुँआ देखकर आग का होना मैंने निश्चित समझा, बल्कि सच बात तो यह है कि आग के हेतु को भी मैंने अनुमान कर लिया। इसलिये जल्दी ही उस तरफ बढ़ा तो देखता क्या हूँ कि यह तो अच्छा खासा संन्यासी का आश्रम है। प्रकांड धूनी के ऊपर लोटे में चाय का पानी चढ़ा हुआ था। बाबाजी आधी आँख खोले हुए सामने ही विराजमान थे, और उन्हीं के आस-पास गाँजा पीने के सब साधन थे। एक बच्चा-सन्यासी एक बकरी दुह रहा था, यह दूध चाय की 'भिक्षा' में लगने-वाला था। दो ऊँट, दो टट्टू तथा बछड़ा समेत एक गाय पास ही बँधी खड़ी थी। पास ही एक तम्बू भी लगा हुआ था। मैंने जो ज़रा निगाह दौड़ाकर देखा तो मेरी उम्र का एक चेला भाँग छान रहा था। देखकर मैं भक्ति से गद्गद् हो गया, और पलक मारते ही बाबाजी के श्रीचरणों में लोट गया। उनके चरणरज को मस्तक पर धारण कर मैंने मन ही मन कहा, "हे ईश्वर तुम्हारी करुणा कितनी असीम है। कैसी अच्छी जगह पर तुम हमें लाये। प्यारी चूल्हे में जाय, मुक्ति-मार्ग के इस सिंहद्वार को छोड़कर मैं यदि पलभर भी कहीं जाऊँ तो अनन्त नरक में भी मेरा स्थान न हो।"

बाबाजी बोले—क्यों बेटा!

मैंने विनय के साथ कहा—मैं गृहत्यागी, मुक्तिपथान्वेषी हतभाग्य शिशु हूँ। मुझे दया कर अपने चरणों की सेवा करने की आज्ञा दीजिये।

बाबाजी हँसे, फिर कोई दो बार सिर हिलाकर संक्षेप में बोले—बेटा घर लौट जाओ, यह पथ बड़ा ही दुर्गम है।

मैंने उसी समय करुण आवाज़ से कहा—बाबाजी महाभारत में लिखा है कि महापापी जगाई माधाई[1] वशिष्ठ मुनि के पैर पकड़कर स्वर्ग को चले गये थे, और क्या मैं आपका पैर पकड़कर मुक्ति भी नहीं पा सकता? अवश्य ही पा सकता हूँ।

बाबाजी की बाछें खिल गईं. बाले—बात तो तेरी सच है, अच्छा बेटा रामजी की खुशी।—जो चेला दूध दुह रहा था उसने आकर चाय बनाई, और बाबाजी को दी, फिर हम सब लोगों ने प्रसादी पाई।

भंग संध्या की भिक्षा के लिये छनघुट रही थी, इसलिये चाय के बाद दूसरी तरह के आनन्द के लिये बाबाजी ने इशारे से अपने नम्बर दो चेले को गाँजे का चिलम दिखला दिया, और बनने में देर न हो इस पर ख़ास उपदेश किया।

आध घंटा बीत गया तो त्रिकालदर्शी बाबाजी ने मेरे ऊपर तुष्ट होकर कहा—हाँ बेटा तुम्हारे में अच्छे करतब हैं, तुममें मेरा चेला होने की लायकवरी है।

मैंने हर्ष से गद्गद होकर बाबाजी के पैर की धूल फिर एक बार सिर पर लेली।

दूसरे दिन सबेरे ही नहाकर आया तो देखा कि गुरुजी के आशीर्वाद से कमी किसी चीज़ की नहीं है। प्रधान चेला ने मुझे गेरुये वस्त्रों का एक नया सेट कोई दस रुद्राक्षमाला तथा एक जोड़ा पीतल के कंकण दिये। जहाँ जो चीज़ फबती थी मैंने वहीं उस चीज़ को पहिना, फिर धूनी की कुछ राख लेकर चेहरे पर तथा सिर पर मल

१—जगाई माधाई श्री चैतन्य के समय के थे, इसलिये उनसे न तो वशिष्ठ मुनि से कोई सम्बन्ध ही हो सकता था न महाभारत में ही यह बात लिखी हो सकती थी। बाबाजी के साथ स्तुति के छल में यह उनकी मूर्खता पर श्रीकान्त ने छींटे कसे हैं।

लिया। आँख मारकर मैंने प्रधान चेला से कहा—बाबाजी, कोई शीशा-वीशा भी रक्खे हो ? मुँह देखने के लिये तड़प रहा हूँ। —मैंने देखा रसबोध उसे भी है, फिर भी ज़रा गंभीर होकर लापरवाही से उसने कहा—है एकठो।

—तो ज़रा छिपाकर एक दफे दिखा न दो।

दो मिनट बाद शीशा लेकर एक पेड़ की आड़ में गया। पछाँह में नाई हाथ में जिस प्रकार का एक शीशा हाथ में पकड़ाकर दाढ़ी बनाते हैं, यह यह उसी प्रकार का टिन में मुड़ा हुआ शीशा था। छोटा ही सही, किन्तु देखते ही समझ गया कि बराबर इस्तेमाल होने के कारण साफ है। चेहरा देखकर हँसी के मारे बुरा हाल हुआ। कौन कह सकता था कि यह वही श्रीकान्त है जो कल ही रजवाड़ों में बैठकर बाईजी का मुजरा सुन रहा था। इत्यादि।

शरत्-साहित्य की जो थोड़ी बहुत समालोचना हम कर चुके हैं उसमें भी हमने इसी बात पर ज़ोर दिया है कि शरत् बाबू कल्पना के घोड़े पर सवार लेखक न थे, वे जिस बात को प्रत्यक्ष अनुभव करते थे उसी को लिखते थे। ऊपर का वर्णन भी इसी श्रेणी का है। कुछ हेरफेर के साथ शरत् बाबू के जीवन की ही यह घटना है।

इस बार शरत्चन्द्र की यह अवारागर्दी का जीवन कई वर्षों तक चला। संन्यासी-जीवन के आखिरी दिनों में वे मुजफ्फरपुर में थे, वहाँ १६०३ में इनको अकस्मात् अपने पिता की मृत्यु की ख़बर मिली, बस ये साइकल पर वहाँ से भागलपुर पहुँचे। यहाँ रहते समय उन्होंने 'ब्रह्म-दैत्य' नाम से एक उपन्यास लिखा था, किन्तु जिनके पास रखकर वे गये थे, उन्होंने इसकी पांडुलिपि खो डाली। साहित्य का परम दुर्भाग्य था और क्या कहा जाय ?

इस पितृवियोग रूपी भयंकर विपत्ति के समय भी मामा-कुल को विरुद्धता के कारण उनको पिता का श्राद्ध आदि करने के लिये एक कौड़ी की सहायता नहीं मिली। अतएव उन्हें अपनी एकमात्र जाय-

दाद साइकल को बेचकर किसी तरह यह सब काम करना पड़ा। अब उनके सामने बड़ा कठिन प्रश्न आया, छोटे भाई बहनों का भार उन्हीं पर पड़ा। इस गुरुभार से उनका अवारागर्द मन विद्रोह कर उठा, किन्तु साथ ही प्रेम तथा कर्तव्यबोध ने उन्हें विवश किया। वे फिर नौकर होने को तैयार हो गये। इसके लिये वे कलकत्ता चलने के लिये तैयार हुए, किन्तु भाई बहनों को कहाँ छोड़ते? खंजरपुर के जिस मकान में मोती बाबू रहते थे, उसकी मालकिन उनकी छोटी बहिन को बहुत चाहती थी, इसलिये वह तो वहीं रही। आसनसोल में एक रिश्तेदार ने एक भाई को अपने पास रखकर तार का काम सिखलाना स्वीकार किया। जलपाईगुड़ी के एक रिश्तेदार ने छोटे भाई को अपने पास रखना स्वीकार किया। कलकत्ते के एक वकील रिश्तेदार के पास शरत् बाबू स्वयं रहकर नौकरी की तलाश करने लगे, किन्तु इस रहने के लिये उन्हें वकील साहब के पास आये हुए हिन्दी काग़जात का अनुवाद करना तथा रोज़ जाकर तरकारी ख़रीदना पड़ता था। इस प्रकार मोतीबाबू के मरते ही शरत्-परिवार तितरबितर हो गया। कहना न होगा अवारागर्दी में अभ्यस्त शरत बाबू को वकील साहब के नौकर बनकर इस प्रकार रहना पसन्द न आ सकता था। ऐसी निराशाजनक तथा नीरस परिस्थिति में भी वे गल्प लिखते रहे।

रोटी की तलाश में बर्मा

जिस सन् में उनके पिता की मृत्यु हुई थी, उसी सन् में वे कलकत्ता में नौकरी पाने की तलाश में निराश होकर अब फिर अवारागर्द जीवन में लौट जाने का स्वप्न देखने लगे। इन दिनों एक घटना हुई जो शरतचन्द्र की प्रतिभा का परिचायक है, तथा यह जाहिर करता है कि उसी ज़माने में उनके आस-पास वाले उनके गल्प लिखने का लोहा मानने लगे थे, किन्तु उस ज़माने में बँगला में इतनी मासिक पत्रिकायें तथा प्रकाशक नहीं थे, गल्प लिखने की शायद

कोई आर्थिक संभावना नहीं समझी जाती थी, इसलिये गल्प लिखना बैठे से बेगार भली के अनुसार बेकार श्रेणी की बात समझी जाती थी। उनके कुछ रिश्तेदारों को जो उन्हीं के समवयस्क या उनसे कम उम्र थे यह धुन सवार हुई कि एक हार्मोनियम ख़रीदा जाय, किन्तु पैसे के नाम पर सब के पास ईश्वर का नाम था। एकाएक इन लोगों के दिमाग़ में यह ख्याल आया कि वे शरत्चन्द्र से एक गल्प लिखावें, उसे कुन्तलीन की प्रतियोगिता में भेज कर पुरस्कार प्राप्त करें, और उससे एक हार्मोनियम प्राप्त करें, शरत्चन्द्र की अपनी समझ में अभी उनकी रचना प्रकाशन के योग्य नहीं हुई थी, किन्तु फिर भी मन ही मन इतनी उच्चाकांक्षा थी कि वे अपने नाम से प्रतियोगिता में शामिल होने में हिचक रहे थे। अंत तक उन्हें अनुरोध रक्षा के लिये गल्प लिखना पड़ा, किन्तु इस लिखे हुए गल्प को जिसका नाम 'मन्दिर' था उन्होंने श्री सुरेन्द्रनाथ गङ्गोपाध्याय के नाम से भेजा। प्रतियोगिता में यही गल्प अव्वल आया, यही 'मन्दिर' उनके इस युग की अन्तिम रचना है।

इस पहली सार्वजनिक सफलता से भी उनके आस-पास के लोगों में से किसी की आँख नहीं खुली, और उनके परिचित तथा रिश्तेदारों में से किसी के दिमाग़ में यह बात नहीं आई कि यह एक प्रतिभावान व्यक्ति है, इसे अन्न-चिन्ता से दूर रक्खा जाय जिससे कि यह बैठकर साहित्य को साधना कर सके। वे फिर भी वकील साहब के यहाँ नीरस हिन्दी दस्तावेजों का अनुवाद करते रहे तथा तरकारी खरीदते रहे। अन्त में वे इस जीवन से उक्ता गये, और एक दिन डेक पर रंगून के लिये रवाना हो गये। डेक का भाड़ा देने के बाद उनके पास दो रुपये बचे।

शरत्चन्द्र के इसके बाद के युग को बहुत से लेखकों ने उनके जीवन का अन्धकारमय युग कहकर स्मरण किया, क्योंकि इस बीच में अन्न-चिन्ता ने ही उनका सारा ध्यान बँटा दिया, किन्तु नतीजे को

देखते हुए हमें तो मालूम होता है इस प्रकार रंगून जाना उनके साहित्य के हक में अच्छा ही हुआ। यदि वे इस प्रकार रंगून जाने पर न मजबूर होते, तथा वहाँ बेकारी में लटकते रहते तो हम उनके सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों के सर्वश्रेष्ठ दृश्यों से वंचित हो जाते। 'चरित्र-हीन' तथा 'श्रीकान्त' में रंगून-यात्रा के सजीव दृश्य तो हैं ही, साथ ही मनुष्य जीवन की बहुत सी गुत्थियों पर रोशनी डाली गई है। शरत्चंद्र को तकलीफ हुई, कष्टों ने, दुःखों ने, अभाव ने उन्हें झिंझोट डाला, किन्तु इससे उनके साहित्य को लाभ ही पहुँचा, उनमें विचित्रता आई, पैनापन आया, काट पैदा हुई, चोट की सामर्थ्य उत्पन्न हुई।

शरत्चन्द्र इस पहिली यात्रा के बाद रंगून कई बार आए-गए, हर बार वे डेकयात्री की तरह जाते-आते रहे। इन यात्राओं का मनोज्ञ वर्णन 'चरित्रहीन' तथा 'श्रीकान्त' में है। शरत्चन्द्र को मामूली डेकयात्री के सब कष्ट उठाने पड़े थे यहाँ तक कि उन्हें क्वारन्टीन में रहना पड़ा किन्तु इस कष्ट-सागर में से उन्होंने जिन रत्नों का उद्धार कर साहित्य को अर्पण किया है, वह इन दो पुस्तकों को पढ़ने वाले जानते हैं। हम इन पुस्तकों की आलोचना करते समय इन पात्रों की आलोचना करेंगे।

रंगून पहुँचकर शरत् बाबू अपने मौसा अघोरनाथ चट्टोपाध्याय के घर में टिके। वे धनी तथा विद्वान व्यक्ति थे। उन्होंने शरत् बाबू को देखते ही कहा—अरे तुम नौकरी की फिक्र मत करो, पहले यहाँ ज़रा ढंग से रहो तो फिर मैं तुम्हें किसी दफ़्तर में साथ ले जाऊँगा, और वहाँ बैठाकर ही वापस आऊँगा।—इसमें कोई सन्देह नहीं था कि वे ऐसा ही करते, किन्तु इस प्रतीज्ञा को पूरी करने के पहले ही वे मर गये। जब वे मरे तो पता चला कि उनके ऐश्वर्य के ढोल के अन्दर पोल थी। फलस्वरूप उनकी मौसी भारत लौट आई। मौसी ऐसा छिपकर ही कर सकी, क्योंकि अघोर बाबू जिनके क़र्जदार थे

वे जहाज-घाट पर पहरा रखने लगे। अब शरत्चन्द्र कुछ तो अवारा-गर्दी के प्रेम के कारण कुछ इस कारण, अघोर बाबू के महाजन उनको न परेशान करे बर्मा के उत्तर में भाग गये और वहाँ बौद्ध भिक्षु के वेश में अवारागर्दी का सुख उठाते रहे।

१६०६ तक उन्हें फिर नौकरी करने की सूझी और उन्होंने 'एक्ज़ामिनर आफ पब्लिक वर्क्स ऐन्ड एकाउन्ट्स' विभाग में ३०) रु० मासिक पर नौकरी कर ली। वे मणीन्द्रकुमार मित्र नामक अध्ययन-शील युवक के साथ रहते थे, इनके साथ कहा जाता है उन्होंने पाश्चात्य दर्शन अध्ययन किया। समय अच्छा बीत रहा था; किन्तु अकस्मात् रंगून में ताऊन का प्रकोप हुआ। उनके साथी तो रंगून से भागकर किसी गाँव में रहने लगे, किंतु वे छोटे नौकर थे, वे कैसे जा सकते थे! अतएव वे अपने दफ़्तर के बाबुओं के मेस (mess) में आकर रहने लगे। यहाँ इनको बंगचन्द्र दे नामक एक साथी मिले ये हज़रत बड़े ही अजीब प्रकृति के थे। एक तरफ तो वे बड़े विद्वान थे और उनके लेख अंग्रेजी मासिक पत्रों में छपते थे, दूसरी ओर वे बड़े पक्के शराबी तथा दुश्चरित्र थे। शरत्चन्द्र ने इनकी विद्या से आकृष्ट होकर इनके साथ घनिष्टता स्थापित की थी, किन्तु इनके साथ वे भी शराब पीने-वीने लगे। इस विषय में सभी सहमत हैं कि शरत्चन्द्र ने इन दिनों बहुत ही उच्छृङ्खल जीवन बिताया। इसी ज़माने के बाद ही शरत्चन्द्र ने 'चरित्रहीन लिखा था, उसमें नायिका का स्थान मेस की एक नौकरानी को दिया गया था, तथा मेस-जीवन का विशद वर्णन है। इस उपन्यास का अन्यतम नायक सतीश है जो मेस में रहता है, और एक चरित्रहीन का जीवन बिताता है। पता नहीं इस उपन्यास को लिखने में शरत्चन्द्र ने अपने जीवन के इस अंश का कितना भाग लिया।

बंगचन्द्र दे बाद को ताऊन में मरे। जिस समय बंगचन्द्र दे ताऊन से पीड़ित होकर मृत्युशय्या में थे, उस समय शरत् बाबू ने खाना-

पीना छोड़कर उनकी बड़ी सेवा की। 'श्रीकांत' में एक व्यक्ति ताऊन से पीड़ित होकर श्रीकान्त की ही गोद में सिर रख कर मरता है, स्पष्ट है कि यह दृश्य उन्होंने अपने जीवन से ही लिया था। बंगचन्द्र की मृत्यु से शरत् बाबू को इतना शोक हुआ कि उन्होंने संगीत की चर्चा भी छोड़ दी।

इसीके बाद अत्यन्त रोमैंटिक ढङ्ग से उनकी एक लड़की से शादी हुई। शरत्चन्द्र जिस मकान में रहते थे उसके नीचे की मंज़िल में एक बंगाली मिस्त्री रहता था। जाति से यह मिस्त्री ब्राह्मण था, किन्तु उसके यहाँ जो संगी साथी संध्या समय जमा होते थे वे रंगून भर के छुटे हुए बंगाली लफंगे थे। यह लोग बड़ी रात तक गाँजा, शराब आदि पीते तथा हुल्लड़ मचाते। मिस्त्री की एक विवाह योग्य कन्या थी इसके अलावा उसके और कोई न था। इस बेचारी लड़की को इन लफगों की यह ला, वह ला हुक्म मानना पड़ता था, घर का सब काम-काज भी वही सम्हालती थी, किंतु फिर भी जब तब उसका बाप उसको ज़रा-ज़रा से बहाने पर पीट डालता था।

शरत्चन्द्र संध्या के बाद घर से निकल जाते थे, अक्सर अधिक रात को ही लौटते थे। एक दिन वे ऐसे ही लौटे तो अपने कमरे के किवाड़े को भीतर से बन्द पाया। न मालूम किसने भीतर से किवाड़े को बन्द कर रक्खा था। वे लगे ज़ोर ज़ोर से किवाड़े पर धक्का मारने और चिल्लाने, किन्तु जब उसके अन्दर से किसी गुण्डे के बदले रोती-बिलखती तथा थर-थर काँपती हुई मिस्त्री की लड़की निकली तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वजह पूछने पर लड़की ने बताया कि मिस्त्री ने पक्के शराबी घोषाल बुढ़ऊ से उसकी शादी तय कर ली है, और इसकी बाबत कुछ रुपये भी पेशगी ले लिये हैं। आज नशे के आवेश में घोषाल बुढ़ऊ उसे अपनी पत्नी कहकर उससे लिपटने पर तैयार हुआ तो उसने डर के मारे इस कमरे में घुसकर उसे भीतर से बन्द कर उसने आत्मरक्षा की। लड़की शरत्चन्द्र के पैरों पर गिर पड़ी,

और रोने लगी। शरत्चन्द्र ने कहा आज तुम यहीं सोओ, कल सबेरे इसकी जो कुछ भी हो उचित व्यवस्था हो की जायगी—यह कहकर वे उल्टे पाँव घर से रात भर के लिए निकल गये।

दूसरे दिन शरत् बाबू मिस्त्री से जो कहने गये कि भाई यह वर तुम्हारी बेटी के लायक नहीं तो उसने कहा—मुझे इससे अच्छा नहीं मिलता, तुम्हें इतना दर्द है तो तुम ही इससे शादी न कर लो……

अब शरत्चन्द्र कायल हो गये, और इसी ब्राह्मण मिस्त्री की लड़की से उनकी शादी हुई। वे इस विवाह से सुखी भी हुए और एक पुत्र भी हुआ। रंगून में जब फिर ताऊन आया तो शरत्चंद्र की यह स्त्री पुत्र के साथ उसकी शिकार हो गई। इस प्रकार शरत्चन्द्र फिर एक बार अवारागर्द हो गए। शरत्चन्द्र ने बाद को एक बार और शादी की थी। यह शादी हिरण्मयी देवी नाम की एक गरीब ब्राह्मण महिला के साथ हुई थी। यह शादी बंगाल ही में हुई थी, किन्तु इसकी खबर बहुत ही कम लोग जानते थे, इसलिए लोग उन्हें न जानकर अविवाहित समझते थे। कोई-कोई तो बाद में सभा आदि में उन्हें जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी आदि कहते थे तो वे मुस्करा कर रह जाते थे।

शरत् बाबू अक्सर याने साल दो साल में कलकत्ता हो जाते थे। कभी नौकरी से दो मास की छुट्टी लेकर आते, तो कभी छै मास की। इधर उनकी नौकरी में बराबर तरक्की होती रही। पहली शादी और दूसरी के बीच वे किसी समय एक उत्कलीय ब्राह्मण के होटल में टिके रहे। इस होटल का नाम दा ठाकुरेर होटल था, यहाँ मिस्त्री श्रेणी के लोग खाना खाते थे। दाठाकुरेर के इस होटल को शरत् बाबू ने 'श्रीकांत' में स्मरण किया है।

शरत् बाबू के एक मित्र ने लिखा है कि दिन का तो कोई शुमार नहीं, रात को वे छै सात दफे उठ कर तम्बाकू भर-भरकर पीते थे। 'चरित्रहीन' का सतीश तथा 'श्रीकांत' में स्वयं श्रीकांत इसी प्रकार तम्बाकू के गुलाम हैं। बर्मा में रहते समय शरत् बाबू पर होम्योपैथि

का भूत अक्सर सवार हो जाता था। कहते हैं, वे दवाइयों का पूरा बक्स रखते थे, और लोगों की चिकित्सा करते थे। भक्तों ने यही लिखा है कि उनकी चिकित्सा से बहुत से लोग बड़ी उत्कट व्याधियों से मुक्त होकर उनको दुआ देते चले जाते थे, किन्तु मुझे इसमें अतियुक्ति ही मालूम देती है। 'बामुनेर मेये' के प्रियनाथ चरित्र में शरत् बाबू ने शौकीन होम्योपैथों का अच्छा मज़ाक उड़ाया है। प्रियनाथ बाबू तो इस पर मरते थे कि लोग उनसे चिकित्सा करावें। इसके अतिरिक्त जीवन में उनके लिये कुछ स्पृहणीय नहीं था। 'चरित्रहीन' का सतीश तो होम्योपैथि के कालेज का छात्र था, याने इसी बहाने से कलकत्ते में रहकर मनमाना उच्छृङ्खल जीवन बिताता था।

शरत्चन्द्र बर्मा में रहते समय बंगालियों के स्वभाव के अनुसार केवल बंगालियों से ही नहीं मिलते थे, बल्कि बर्मावासियों के यहाँ भी उनका आना-जाना रहता था। शरत्चन्द्र की एक प्रसिद्ध कहानी का नाम 'छबि' (तसवीर) है, इस कहानी का नायक एक बर्मी चित्रकार बाथिन है। यह बाथिन शरत्चन्द्र की कल्पना से उत्पन्न नहीं बल्कि वास्तविक जीवन से सशरीर और बाथिन के ही नाम से मौजूद था। शरत्चन्द्र से इस बाथिन से बड़ी मित्रता थी। श्री सतीशचन्द्र दास को शरत् बाबू अपने साथ बाथिन के घर ले गये थे, यह वास्तविक बाथिन भी चित्रकार थे। सतीश बाबू ने शरत् बाबू को उन्हीं के परिवार के एक सदस्य की तरह बातचीत करते तथा खाते-पीते पाया। सतीश बाबू ने इतना तो लिख मारा किन्तु गल्प के साथ और किन-किन बातों में वास्तविक बाथिन का सामंजस्य है यह नहीं लिखा। ऐसे जीवनी-लेखकों को इन खोजों से क्या मतलब, उन्हें तो केवल दुनिया को दिखलाना है कि वे शरत् बाबू को जानते थे। अस्तु।

बर्मा में रहते समय शरतचन्द्र कई बार कई जगह रहे। एक मकान में रहते समय शरत् बाबू से बगल के मकान में रहनेवाले एक

परिवार से घनिष्ट परिचय हुआ। इस परिवार में केवल दो व्यक्ति थे, एक मिस्त्री और उसकी बहू। एक बार मिस्त्री की स्त्री भयंकर बीमारी में पड़ी तो शरत् बाबू की चिकित्सा तथा कोशिश से वह बच गई। इस समय से ये दोनों शरत बाबू को पिता की तरह बहुत मानने लगे, और शरत बाबू भी इन्हें बेटा तथा बहू की तरह मानते थे। शरत बाबू यही जानते थे कि वे विवाहित पति-पत्नी हैं, किन्तु एक दिन जब वे अपने मकान में लड़ रहे थे तो शरत् बाबू ने सुन लिया और वे असली बात जान गये। थोड़ी ही देर में मिस्त्री ने शरत् बाबू को जैसे गवाह मानकर कहा—देखिये बाबा ठाकुर मैंने इसकी इतनी अथक सेवा कर आराम दिया, और यह दिन-रात हमारे साथ झाँय-झाँय लगाये रहती है। यदि ऐसा ही करना था तो तुमने हमारे साथ 'कंटीबदल' क्यों किया।—पाठकों की अवगति के लिये यह बात यहाँ बता दी जाय कि 'कंठीबदल' एक तरह की सगाई है, शादी की मर्यादा इसे प्राप्त नहीं।

मिस्त्री की स्त्री यों शरत् बाबू के सन्मुख कुछ अधिक बोलती नहीं थी, किन्तु जब मिस्त्री ने इस प्रकार उसके रहस्य का भंडाफोड़ कर दिया, तो वह भी तिलमिला गई, और तेज़ होकर बोली—बाबा ठाकुर के सामने तुम तो दूध के धुले भद्रव्यक्ति बन रहे हो, किन्तु भद्रव्यक्ति बनकर मेरा सर्वनाश किसने किया? अब ऐसा बन रहे हो, जैसा सारा दोष मेरा ही है! कल मौसी नहीं होती तो मुझे मार ही बैठते, भला मैं क्यों मार खाऊँगी? फिर बात-बात में कहता है निकल जा। असली बात तो यह है इनकी ब्याही आई है, उसी खबर को पाकर ये बेताब हो रहे हैं कि कब उससे मिलूँ, और फिर भद्र बनूँ। जहाँ जाना हो जा, मैं नहीं सहूँगी—कहकर वह रोने लगी।

उस समय तो सब तय हो गया। किन्तु मिस्त्री जो कारखाना जाने के नाम से निकला तो फिर लौटकर घर वापस नहीं आया। जिस बात को वह डरती थी वही हुई। बहुत दिन बर्मा में रहने के

बाद यह स्त्री काशी चली गई। सतीश बाबू का अनुमान है कि इसी स्त्री को लेकर 'विराज-बहू' लिखा गया।

रंगून के बङ्गाली कोई साहित्य चर्चा करने बर्मा नहीं जाते। सच्च बात तो यह है कि रुपया कमाने के अलावा इन क्लर्कों का कोई काम नहीं होता, फिर भी यहाँ एक बंगाल सोशल क्लब था। वहाँ कभी-कभी साहित्यिक आलोचना भी होती थी, किन्तु शरत् बाबू हमेशा यह कहकर कि वे इन सब बातों को समझ नहीं पाते इनसे अलग रहते थे। एक बार इस क्लब में स्त्री-चरित्र के मनोविज्ञान पर बातचीत हो रही थी, तो शरत् बाबू ने ताव में आकर कह दिया कि यह ऐसा नहीं वैसा है, और उसके प्रमाण में बहुत से यूरोपीय लेखकों को उद्धृत किया। लोग सुनकर दंग हो गये, और कहा कि क्लब के आगामी अधिवेशन के लिये वे इस विषय पर कुछ लावें। राज़ी तो वे हुए, किन्तु उन पर वज्र टूट पड़ा। वे सभा के सामने आते घबड़ाते थे। अगले अधिवेशन का दिन आया तो शरत् बाबू ही नदारद। सभा के उद्योक्ता उनके घर गये तो वहाँ भी बड़ी मुश्किलों से उनका लेख 'नारीर इतिहास' मिला। इस लेख को पढ़ने में दो घंटे लगे। जब यह लेख समाप्त हुआ तो लोग धन्य धन्य कहने लगे। दुःख का विषय है कि यह लेख बाद को घर में आग लगने से नष्ट हो गया। साथ ही और भी रचनाएँ तथा उनके अंकित चित्र भी इस अग्निकाण्ड में स्वाहा हो गये।

शरत्चन्द्र बर्मा में कोई चौदह साल के लगभग रहे।

यों तो भागलपुर में ही उन्होंने लिखना शुरू किया था, किन्तु बर्मा की भूमि में ही उनका तीसरा ज्ञाननेत्र खुला और वे शरत्चन्द्र हुए। अब लोग इस विषय में एकमत हैं कि शरत् बाबू का पहला उपन्यास 'शुभदा' है, अब यह मृत्यु के बाद प्रकाशित हुआ है। शरत् बाबू जब तक जीवित रहे, उन्होंने इसे प्रकाशित नहीं होने दिया,

किन्तु अनुसन्धानकारियों की ज्ञानपिपासा दुर्दान्त होती है, वह लेखक की कला का मज़ा उठाकर ही सन्तुष्ट नहीं होती, पर वह उसकी तह में भी पहुँचना चाहती है। प्रकृति भी नीरव-साधना करती है, कली के अन्दर पुष्प बढ़ता है, जब वह देखने योग्य हो जाता है, प्रकृति उसे खोलकर रख देती है, किन्तु मनुष्य बड़ा ही कौतुहली है! वह गर्भ से निकालकर भ्रूण को देखता है, कोरक से निकालकर पुष्प को देखता है, उसी प्रकार शरत् बाबू जब न रहे तो शुभद्रा प्रकाशित हुआ। यह १८६८ के २० जून से २२ सितम्बर तक लिखा गया था। इस उपन्यास में शरत् बाबू की कला अपरिपक्व अवस्था में पाठक के सन्मुख आती है। शुभदा नायिका का नाम है, शरत् बाबू ने उसे एक सती साध्वी की तरह चित्रित किया है, बाद को हम चरित्रहीन में सुरबाला के रूप में एक स्वीकृत सती को तथा श्रीकान्त में अन्नदा दीदी के रूप में एक अस्वीकृत सती को शरत् साहित्य में पाते हैं। इन चरित्रों से इन उपन्यासों की कला पुष्ट ही हुई है, आहत नहीं हुई, किन्तु शुभदा के कट्टरपन से उपन्यास का नाश ही हुआ है। फिर भी शुभदा के चरित्र में एक अतृप्ति का अस्तित्व स्पष्ट है। उपन्यास का कथानक शिथिल और घटना-परम्परा सुग्रथित नहीं है, किन्तु इन अपूर्णताओं के बीच में भी हम शरत्चन्द्र की प्रतिभा के 'चीकने पात' देख पाते हैं। नारी जीवन के चित्रकार, मूक नारी के मुँह में भाषा-दान करनेवाले शरत्चन्द्र को यहीं से हम पा जाते हैं। उनके बाद उपन्यासों में वेश्याओं का जो तिक्तताहीन बल्कि सहानुभूतियुक्त चित्रण हम पाते हैं उसका श्रीगणेश यहीं हो चुका है। कात्यायनी का चित्रण वे खुली सहानुभूति तो नहीं, किन्तु ऊपरी तटस्थता से करते हैं। 'सब जानना सब कुछ क्षमा करना है' इस फ्रेंच कहावत के अनुसार वे कात्यायनी का चित्रण करते हैं। वे उसे अमानुषी राक्षसी के रूप में नहीं, बल्कि समाज की चक्की के नीचे पिसती हुई एक अभागी स्त्री के रूप में चित्रित करते हैं। कात्यायनी

राक्षसी तो है ही नहीं, वह लोगों से कष्ट के साथ सचमुच सहानुभूति करती है केवल यही नहीं, वह उन्हें आर्थिक सहायता देती है। बाद को किरणमयी और कमल के मुँह से जो बौद्धिक मन्तव्य हमें सुनते-सुनते एक साथ ही कला और बौद्धिकता का आनन्द आता है, उसका शुभदा में ही पुट है। शरत् बाबू के विकास की यह पहली कड़ी हमारे हाथ लगने ही से यह स्पष्ट हो जाता है कि शरत् बाबू का क्रमविकास कैसे हुआ। भ्रूण रूप में हम शुभदा में सारे शरत्-साहित्य को पा जाते हैं, कम से कम उसकी महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों को, तो हम पाते ही हैं। मध्यवित्त श्रेणी की नारी के दुखदर्दों के चित्रकार शरत् बाबू प्रारम्भ से ही ऐसे रहे यह द्रष्टव्य है। शुभदा की समालोचना करते समय यह स्मरण रहे कि यह पुस्तक १८६८ में लिखी गई थी।

सोलहों आना साहित्यिक जीवन

शरत्चन्द्र जिस समय बर्मा गये थे उस समय वे अपनी रचनाओं को (जिनको उन्होंने तब तक लिखा था) एक मित्र के पास रख दिया था। जिस मित्र के पास उन्होंने रचनाओं को रक्खा था, उनके पास कुछ साहित्यिक आया जाया करते थे जिनमें उस ज़माने की प्रसिद्ध पत्रिका 'भारती' से संयुक्त श्री सौरीन्द्रमोहन मुखोपाध्याय भी थे। इन रचनाओं में शरत् बाबू का सुप्रसिद्ध उपन्यास 'बड़दिदि' (बड़ी दीदी) भी था। शरत् बाबू को बिना बताये हुए ही तथा उनकी अनुमति बिना प्राप्त किये ही सौरीन्द्र बाबू ने इस उपन्यास को धारावाहिक रूप में प्रकाशित करना शुरू कर दिया। यहाँ तक कि जब प्रकाशित होना शुरू भी हो गया तब भी शरत् बाबू को न तो कोई सूचना ही दी गई, न कोई पत्रिका की प्रति ही भेजी गई।

जब १३१४ के बैशाख में (१६०७) 'भारती' में 'बड़ी दीदी' की पहली किश्त निकली, तभी लोग उसे पढ़कर आश्चर्य में पड़

गये। लिखने की परिपाटी इतनी सुन्दर थी, कहानी इतनी गठी हुई थी, और भाषा इतनी मनोज्ञ थी कि लोग हैरान हो गये कि यह लेखक कौन है। पहली किश्त में किसी का नाम नहीं निकला था। साहित्यमर्मज्ञों ने इसको पढ़कर यही तय किया कि हो न हो नाम छिपाकर रवीन्द्रनाथ ने ही यह लिखा होगा। उन दिनों मजुमदार लाईब्रेरी से कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ के संपादकत्व में 'बङ्गदर्शन' नव पर्याय निकल रहा था। मजुमदार लाइब्रेरी के मालिक श्री शैलेश मजुमदार ने रवीन्द्रनाथ से जाकर शिकायत करते हुए कहा कि आपने हमारी पत्रिका में इतनी उत्कृष्ट रचना को न देकर 'भारती' को क्यों दिया। रवीन्द्रनाथ ने इसपर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया, क्योंकि उनकी जान में तो उन्होंने कोई लेख 'भारती' को नहीं दिया था। उन्होंने 'भारती' से उस अंश को पढ़ा, रचना वाक़ई बड़ी सुन्दर थी, उन्होंने उसकी प्रशंसा की, किंतु श्री मजुमदार को साफ बता दिया कि वे इसके लेखक नहीं। 'भारती' में अन्त में लेखक का नाम शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय प्रकाशित हुआ था।

इसके साढ़े पाँच साल बाद शरत्चन्द्र को इस उपन्यास के धारावाहिक रूप में प्रकाशित होने का पता मिला। इस बीच में शरत्चन्द्र की साधना बराबर जारी तो रही, किंतु यह एक झक की तरह ही रही। लेखक को अपनी विपुल शक्ति का कुछ पता न मिला था। श्री सौरीन्द्रमोहन ने इस सम्बन्ध में लिखा है।

"१३१८ साल की पूजा अर्थात् दशहरे के समय शरत्चन्द्र अकस्मात् आ धमके, और कहा—मुझे ज़रा बड़ी दीदी कहानी पढ़ने दो।

मुझे अच्छी तरह याद है, उस दिन कालीपूजा थी। कोई दिन के दो बजे थे, हमारे घर के बाहर के कमरे में शरत्चन्द्र, उपेन्द्रनाथ तथा मैं था। बँधी हुई 'भारती' में से मैं बड़ी दीदी पढ़ने लगा। शरत्चन्द्र लेटकर सुनने लगे। बीच-बीच में उठ बैठते थे। मेरे

हाथों को दबाकर कह उठते—चुप रहो ।—उनकी आँखों में आँसू थे, गला रुँधा हुआ था । शरत्चन्द्र ने मुग्ध विस्मयचकित दृष्टि से कहा—यह मेरी रचना है ? इसको मैंने लिखा है !

मानो उनको विश्वास ही नहीं होता था । हम लोगों ने उनको झड़पा—लिखना छोड़कर तुमने कितना बड़ा अपराध किया है, ज़रा समझो तो ।

शरत्चन्द्र उदासीन होकर बड़ी देर तक बैठे रहे, फिर बोले—अच्छा लिखेंगे, लिखना छोड़कर मैंने अच्छा नहीं किया, रचना अच्छी है, मेरा ही हृदय हिल गया था—। उन्होंने रुककर कहा—सौ रुपये मिलते हैं, बहुतों को देना पड़ता है । शरीर भी ठीक नहीं है ।

उन्होंने यह भी कहा कि यदि और अधिक दिन वे वहाँ रहे तो उन्हें तपेदिक हो जायगा ।

मैंने कहा—बहरहाल तीन महीने का छुट्टी लेकर चले आओ, सौ रुपये तुम्हें मिले इसकी हम लोग व्यवस्था करेंगे ।

शरत्चन्द्र ने कहा—देखूँगा ।

इसके कोई तीन महीने बाद वे फिर कलकत्ता आये । 'यमुना' सम्पादक फणीन्द्रनाथ पाल ने मुझे कहा कि 'यमुना' को वे अपने जीवन का सर्वस्व बनाना चाहते हैं, और इसके लिये मेरा सहयोग चाहिये ।

शरत्चन्द्र के आने पर उनको मैंने कहा—साहब 'यमुना' के लिये तुम्हें लिखना पड़ेगा ।

शरत्चन्द्र ने कहा—'चरित्रहीन' उपन्यास लिख रहा हूँ, पढ़कर देखना चलेगा कि नहीं—उपन्यास का कोई एक तृतीयांश उन्होंने मुझे दिया । मैंने पढ़ा । शरत्चन्द्र ने कहा—नायिका किरणमयी है, वह तो अभी तुम्हारे सामने आई ही नहीं, बड़ी भारी पुस्तक होगी ।

यह तय पाया कि 'चरित्रहीन' यमुना में छपेगा। उन्होंने अनिला देवी उपनाम से 'नारीर मूल्य' मुझे देकर कहा—मेरा असली नाम बिना प्रकाशित किये ही इसे छापो।

ऐसा ही किया गया। फिर उन्होंने एक कहानी दी 'रामेर सुमति' फिर बैशाख की 'यमुना' के लिये एक कहानी दी 'पथनिर्देश'

सौरीन्द्र बाबू के दिये हुए इस विवरण में ज़रा सी त्रुटि रह गई, वह यह कि 'चरित्रहीन' उपन्यास की पांडुलिपि दूसरी जगह से लौटाई जाकर तभी वह 'यमुना' में छपने के लिये आई। उन दिनों बँगला के सुप्रसिद्ध नाटककार श्री द्विजेन्द्रलाल राय के संपादकत्व में 'भारतवर्ष' बड़े ठाट से निकल रहा था। इसके प्रकाशक धनी थे, लेख भी अच्छे आते थे। इस प्रकाशन के उद्योक्ताओं में प्रमथनाथ भट्टाचार्य नामक एक व्यक्ति थे, उन्होंने 'भारतवर्ष' प्रकाशन के काम में दिलचस्पी लेते ही मुजफ़्फ़रपुर के अपने पुराने मित्र ने शरत् बाबू को स्मरण किया। साथ ही द्विजेन्द्रलाल ने जब 'यमुना' में 'रामेर सुमति' शीर्षक गल्प पढ़ा, तो उन्होंने प्रमथ से कहा—तुम इनकी रचनाओं को 'भारतवर्ष' के लिये पाने की चेष्टा करो, ये भविष्य में बँगला साहित्य में एक नये युग की सूचना करेंगे।

प्रमथ बाबू पहले से ही शरत् बाबू की तलाश में थे, यह जो द्विजेन्द्र बाबू ने कहा तो उन्होंने रंगून में शरत् बाबू को पत्र लिखवा कर 'चरित्रहीन' का आधा मँगवा लिया। द्विजेन्द्रलाल उन दिनों काव्य में व्यभिचार के विरुद्ध आन्दोलन कर रहे थे, इसलिये ऐसे एक उपन्यास को जिसका नाम ही चरित्रहीन हो, और जिसमें शुरू से ही एक मेस की नौकरानी नायिका के रूप में सामने आई हो, उन्होंने अपने सम्पादन में 'भारतवर्ष' में प्रकाशित करने से इनकार कर दिया। कहना न होगा ऐसा कर द्विजेन्द्रलाल ने भले ही अपनी कथित सुनीतिपरायणता के चरणों में पुष्पाजलि दी हो, किन्तु अपनी साहित्यमर्मज्ञता के ऊपर हमेशा के लिये एक अमिट धब्बा लगाया।

हम आगे 'चरित्रहीन' की विस्तृत आलोचना करेंगे, किन्तु द्विजेन्द्र-लाल ने जिस मेस की नौकरनी को देखकर मुँह बिचका लिया, वह केवल नाम से ही सावित्री नहीं सचमुच सावित्री थी। कथित भले घरों में उससे अच्छी निष्पाप स्त्री कहाँ मिलती है? चरित्रहीन के भी अनुसार वह अच्छे कुल की सुशीला, सुशिक्षिता लड़की थी, फिर भी यदि द्विजेन्द्र बाबू ने उसे किसी उपन्यास में प्रमुख भाग दिये जाने के केवल इस कारण अयोग्य समझा कि उसने दुर्दशा में पड़कर नौकरनी का काम कर साधु उपाय से पेट पाला था, तो यह उनका अहमकपन था ऐसा कहने में मुझे कोई हिचकिचाहट नहीं है। द्विजेन्द्र-लाल ने ऐसा नीतिबोध के कारण कितना, और वर्गबोध (class consciousness) के कारण कितना किया, यह विचारणीय है। उच्च तथा मध्यवित्त श्रेणी की नीति के ठेकेदारों को यह अवश्य ही नागवार है कि एक श्रेणी जिसकों वे निम्न श्रेणी समझते हैं उसकी लड़की उनके उपन्यासों में भी एक नौकरनी के सिवा अधिक से अधिक रखैली के अलावा किसी और रूप में आवे, शोषण या शोषण में सहायता के कारण प्राप्त धन के ताव में वे दूसरों को नैतिक रूप से भी अपने से छोटा समझते हैं। अस्तु।

इस प्रकार शरत् बाबू का 'चरित्रहीन' 'भारतवर्ष' द्वारा लौटाया जाकर 'यमुना' में गया था। बहुतों के मत से यही इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है, और इसी की यह दुर्गति हुई। फिर द्विजेन्द्र बाबू की तरह साहित्यमर्मज्ञ के हाथों ऐसा होना और भी आश्चर्य है। जब चरित्रहीन उपन्यास प्रकाशित हुआ तो शरत् बाबू पर बहुत गालियाँ पड़ीं, किन्तु इसी गाली की बौछार से वे प्रसिद्ध हो गये। 'भारतवर्ष' वालों ने इस प्रकार 'चरित्रहीन' तो लौटा दिया, किंतु उनकी प्रतिभा के लोहे ने शीघ्र ही उन्हें मजबूर किया, और वे अब की बार शरत् बाबू के किवाड़े खटखटाने फिर पहुँचे तो उन्हें एक छोटा उपन्यास 'विराज-बहू' मिला। शरत् बाबू को रुपयों की ज़रूरत थी, उन्होंने

'विराज-बहू' उपन्यास तथा 'रामेर सुमति', 'विंदुर छेले' और 'पथ-निर्देश' इन तीनों गल्पों को पुस्तक रूप में प्रकाशित करने की कापी-राइट नाममात्र मूल्य ३००) रुपये में 'भारतवर्ष' प्रकाशक के हाथ बेच दी। गुरुदास चट्टोपाध्याय एण्ड संस जिन्होंने इनको ख़रीदा शरत् बाबू के इन्हीं पुस्तकों के ज़रिये ऐसे कितने ३००) मिले होंगे, किन्तु शरत् बाबू को ३००) ही मिले। प्रकाशक और लेखक का सम्बन्ध पूँजीपति और मज़दूर का ही सम्बम्ध है, इस उदाहरण से यही बात पुष्ट होती है।

शरत्चन्द्र ने 'यमुना' में बहुत दिनों तक बड़ी दिलचस्पी थी। हेमेन्द्रकुमार राय का कहना है कि यह वैसी ही बात है कि एक झरना जब तक पत्थर से बन्द पड़ा रहा, पड़ा रहा, किन्तु ज्यों ही उसका मुँह खोल दिया वह भला फिर क्यों किसी का सुनता। उस ज़माने में उन्होंने रंगून से जो पत्र लिखे उनके पढ़ने से ज्ञात होता है कि सम्पादक से कहीं बढ़कर उन्हीं को 'यमुना' की चिन्ता सताती थी। अकेला ही लिखकर नन्हीं-सी 'यमुना' के सारे पन्ने वे रँग देना चाहते थे। गल्प, समालोचना, निबन्ध ; कहा जाता है एकाध बार उन्होंने ऐसा किया भी अर्थात् कविता के अलावा उन्होंने 'यमुना' की सारी झोली स्वयं ही भर दी। कई बार उन्होंने गुमनाम समालोचना भी लिखी। हेमेन्द्र बाबू के अनुसार 'नारीर लेखा' तथा 'कानकाटा' उन्हीं का लिखा हुआ था। इन समालोचनाओं की सूक्ष्म चोट ने उन दिनों धूम मचा दी थी। 'रामेर सुमति' के अतिरिक्त 'विन्दुर छेले' तथा 'पथनिर्देश' भी 'यमुना' में ही प्रकाशित हुए थे। इसके अतिरिक्त 'परिणीता', 'चन्द्रनाथ' तथा 'चरित्रहीन' भी यमुना में ही निकले। 'चरित्रहीन' को एम० सी० सरकार ने पहली बार पुस्तक रूप में प्रकाशित किया, इस साढ़े तीन रुपये की पुस्तक की पहले ही दिन चार सौ कापियाँ बिक गईं, बाद को उनकी पुस्तक 'पथेर दाबी' ही इससे अधिक एक ही दिन में बिकी।

इसके बाद तो शरत्चन्द्र का जीवन एक सफल साहित्यिक का जीवन है। अब वे साहित्य के छोटे तालाब की छोटी मछली नहीं रहे, अब उनके विचरण के लिये विराट सागर के विपुल विस्तार की जरूरत पड़ी, इसलिए यमुना का छिछोरा पानी उन्हें बाँध न रख सका, अब वे स्वच्छन्द होकर विश्वसाहित्य के महासागर में विहार करने लगे।

रंगून में शरत् बाबू का स्वास्थ्य गिर रहा था, डाक्टरों ने कहा रंगून छोड़ दीजिये। सुप्रसिद्ध प्रकाशक हरिदास चट्टोपाध्याय ने उनकी १००) माहवार की जिम्मेदारी ली, तब वे रंगून से लौट आये। बाजे शिवपुर में एक छोटा-सा मकान भाड़े पर लेकर वे रहने लगे। छोटे भाई प्रकाशचंद्र को लाकर उन्होंने अपने पास रक्खा। इस बीच में उनके दूसरे भाई प्रभासचंद्र ने संन्यास व्रत अवलम्बन कर स्वामी वेदानन्द का नाम ग्रहण किया था, और वृन्दावन के रामकृष्ण आश्रम में सेवाकार्य के इनचार्ज थे। जब कभी वे कलकत्ता आते तो शरत्चन्द्र के यहाँ रहते। उनकी बड़ी बहिन अनिला देवी भी बीच-बीच में अपने पति के साथ वहाँ आकर रहती थी।

इसके बाद उनके जीवन में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ, बराबर वे पुस्तक के बाद पुस्तक प्रकाशित करते रहे। आर्थिक रूप से वे सफल रहे, हेमेन्द्रकुमार ने लिखा है कि वे ही पहले बंगाली साहित्यिक हैं जिन्होंने ने केवल क़लम के जोर पर कलकत्ते में बड़ा मकान तथा निजी मोटर कर लिया। शरत्चन्द्र की प्रतिभा उच्च कोटि की थी, साथ ही इसमें जननशक्ति भी ग़ज़ब की थी। एक ही साथ वे कई पत्रिकाओं में अपना धारावाहिक उपन्यास चलाते थे।

उपन्यास के क्षेत्र में उनका सर्वप्रथम प्रयास 'बासा' या 'काक-बासा' का कोई पता ही नहीं, सच बात तो यह है शरत् बाबू ने ही उसे नष्ट कर डाला था। ईस्टलिन के अनुकरण में लिखा हुआ 'अभिमान' नामक उपन्यास के सम्बन्ध में यह समझा जाता है कि

वह शायद किसी के पास हो, किन्तु किसके पास है कौन जाने। Mighty atom का अनुसरण कर जो 'पाषाण' उन्होंने लिखा था, वह उनके मामा सुरेन्द्रनाथ गङ्गोपध्याय ने खो डाला। इन महाशय ने स्वयं साहित्यिक होते हुए ऐसी ग़लती ही नहीं अपराध कैसे किया यह समझ में नहीं आता। इनके अतिरिक्त 'बागान' (बाग़) नाम देकर उन्होंने तीन खंडों में अपनी रचनाओं का एक संग्रह तैयार किया था, इसके प्रथम खंड में 'बोझा', 'काशीनाथ', 'अनुपमार प्रेम', द्वितीय खंड में 'कोरेल ग्राम' 'बड़दीदी' 'चंद्रनाथ' तथा तृतीय खंड में 'हरिचरण' 'देवदास' और 'बाल्यस्मृति' थी। इनमें से सभी बाद को प्रकाशित हुए। कुछ दिन के उपरान्त उन्होंने 'शुभदा' नाम से एक उपन्यास लिखा, किन्तु इस उपन्यास में जिन लोगों का ज़िकर था वे जीवित थे, इसलिये उन्होंने अपनी मृत्यु पर्यन्त इसे प्रकाशित होने नहीं दिया। उनकी मृत्यु के बाद ही 'शुभदा' छपकर प्रकाशित हो सका। 'ब्रह्मदैत्य' नाम से जो उपन्यास उन्होंने लिखा था वह महादेव साहू के ही यहाँ रह गया। इनके अतिरिक्त कुछ लेखक उनकी इस युग की रचनाओं में जो खो गई उनमें 'बाला' 'शिशु' 'छायार प्रेम' 'बामुन ठाकुर' आदि पुस्तकों का नाम लेते हैं।

ऊपर दिये गये विवरण से स्पष्ट है कि प्रारंभिक साहित्यिक जीवन में उन्होंने कुछ अनुवाद या छायानुवाद किये थे, किंतु इनमें से एक भी पाठकों के हाथ में न पहुँच सका। बाद को यदि कोई अनुवाद के विषय में उनसे कहता तो वे कह देते थे, "अनुवाद करना और व्यर्थ परिश्रम करना एक ही बात है, यह सब मुझे अच्छा नहीं लगता।"

कैसे 'बड़ दीदो' के प्रकाशन के बाद शरत्‌चन्द्र छै वर्ष तक चुप रहे, तथा कैसे फिर वे साहित्य में आये, और क्या-क्या लेकर आये यह पहले ही बतलाया जा चुका है। इनके बाद एक के बाद एक 'पंडित मशाई' 'वैंकुठेर विल' 'मेजदीदी' 'दर्पचूर्ण' 'पल्ली-समाज'

'श्रीकान्त' 'अरक्षणीया' 'निष्कृति' 'मामलार फल 'गृहदाह' 'देना पाओना' 'नवविधान' 'हरिलक्ष्मी' 'एकादशी बैरागी' 'विलासी' 'अभागीर स्वर्ग' 'अनुराधा, सती ओ परेश' 'शेष प्रश्न' प्रकाशित हुए। इनमें से अधिकांश 'भारतवर्ष' में निकले। 'पल्ली समाज' को पहिले शरत बाबू ने जैसा लिखा था, छपने के पहले उसके उपसंहार को बदलकर उन्होंने उसे दूसरा रूप दिया था। कहा जाता है शरत् बाबू ने पहले 'श्रीकान्त' और 'चरित्रहीन' को एक ही पुस्तक के अन्तर्गत किया था, किन्तु बाद को दो पृथक पुस्तकें बना दीं। इन दो पुस्तकों को यदि मिलाकर पढ़ा जाय तो इसमें कोई संदेह नहीं कि दोनों रचनाओं के कुछ पात्र हेरफेर के साथ एक ही मालूम पड़ेंगे। श्रीकान्त तथा दिवाकर की बर्मा-यात्रा की घटनायें बहुत कुछ एक हैं। 'श्रीकान्त' का नन्द मिस्त्री और उसकी स्त्री टगर के साथ 'चरित्रहीन' के मकान मालिक तथा मकान मालकिन का बहुत ही सादृश्य है। 'श्रीकान्त' की राजलक्ष्मी का श्रीकान्त के प्रति प्रेम उसी प्रकार का है, तथा उस प्रेम का इतिहास उसी तरह है जैसे किरणमयी का उपेन्द्र के प्रति प्रेम का है। अवश्य उपसंहार में प्रभेद है। हम इस विषय में बाद को और आलोचना करेंगे। अस्तु।

देशबन्धु चित्तरंजन दास के सम्पादन में जो 'नारायण' पत्र निकलता था, इसमें शरत् बाबू का 'स्वामी' गल्प प्रकाशित हुआ। इस गल्प पर क्या पुरस्कार दिया जाय यह स्वयं न निर्णय कर देशबन्धु ने शरत्चन्द्र को एक दस्तखत किया हुआ चेक दे दिया और कहा जो अंक आप उचित समझें बैठा लें। शरतचन्द्र ने १००) का अंक बैठा कर चेक भुनाने भेजा। इस समय शरत् बाबू बंगला साहित्य में दूसरे व्यक्ति तथा उपन्यास में प्रथम माने जा चुके थे, अतएव यह १००) का अंक उनके लिये संयम ही था।

'बंगवाणी' पत्रिका में उनके 'पथेर दावी' नामक उपन्यास क्रमशः प्रकाशित हुआ था। इसके अतिरिक्त 'महेश' 'सती' आदि गल्प भी

प्रकाशित हुए थे। 'पथेर दावी' उपन्यास के प्रकाशन का इतिहास मनोरंजक है। 'बंगवाणी' तरुण बंगाल के मुखपत्र के रूप में निकली थी। इसके संपादक श्री रमाप्रसाद मुकर्जी स्वभावतः चाहते थे कि तरुणों के प्रिय औपन्यासिक शरत् बाबू का कोई उपन्यास उसमें धारावाहिक रूप से निकले, किन्तु शरत् बाबू के यहाँ दौड़ते-दौड़ते उनके मोटर की टायर घिस गई, किन्तु अपने उद्देश्य से वे उतने ही दूर थे। ऐसे समय में उन्होंने एक दिन देखा कि शरत बाबू के लिखने के मेज़ पर 'पथेर दावी' के कुछ अध्यायों की पांडुलिपि रक्खी है। वे इस पर खुशी से उछल पड़े, किन्तु शरत बाबू ने कहा—इतने खुश न हो जाओ, इसको प्रकाशित करने में तुम्हारे लिये खतरा है सोच लो—इस पर वे डरने के बजाय और भी खुश हुए कि 'बंगवाणी' के लिये ऐसी ही चीज़ तो चाहिए। दो साल तक 'बंगवाणी' में यह सुबृहत् उपन्यास छपता रहा, अन्त में यह जब सम्पूर्ण हुआ तो शरत्-बाबू ने वादे के अनुसार सुधीर सरकार को दिया, किंतु वे डरे। सुधीर बाबू ने शरत् बाबू को १०००) रुपया पेशगी इस वादे पर दिया था कि ज्यों ही वह पुस्तक 'बंगवाणी' में समाप्त हो जाय त्यों ही वह छपने के लिये उनकी कम्पनी को सौंपी जाय। इसीलिये शरत् बाबू ने उनको पुस्तक अब दी! सुधीर बाबू की गति साँप छछून्दर की हुई। अन्त में उन्होंने शरत् बाबू से कहा कि कानून की दृष्टि से पुस्तक का जो जो अंश आपत्तिजनक ठहर सकता है उनको निकालकर वे इसको छापना चाहते हैं। इस पर शरत् बाबू ने सब फाईल उनसे छीन ली और कहा कि १०००) रुपया का हिसाब कर दिया जायगा। शरत् बाबू ने अपनी पुस्तक का एक भी अर्धविराम चिह्न कम नहीं करना चाहा। उनके सभी प्रकाशक ने इस पुस्तकों को प्रकाशित करने से इंकार किया। अंत में सर आशुतोष के दो पुत्र बंगवाणी संपादक रमाप्रसाद मुखोपाध्याय तथा उमाप्रसाद ने इसको अपने खर्चे पर तथा खतरा सहकर प्रकाशित करना स्वीकार किया।

अब मुश्किल इस बात पर हुई कि कोई प्रेस इस पुस्तक को छापने पर राज़ी न हुआ। तब काटन प्रेस ने इसको छापा। पहले संस्करण में ३००० प्रतियाँ छपीं, दाम तीन रुपये रक्खे गये, किंतु एक महीने में ही संस्करण खतम हो गया। दूसरे संस्करण में ५००० छपीं, किंतु वे भी तीन महीने में खतम हो गईं। इसके बाद पुस्तक ज़ब्त हो गई। सरकार मुकदमा भी चलाने जा रही थी, किंतु कुछ विशेष प्रभावशाली लोगों के बीच में पड़ने के कारण मुक़दमा नहीं चलाया गया। शरत् बाबू को इस ज़ब्ती पर इतना क्रोध आया कि वे इस प्रश्न को लेकर एक आंदोलन खड़ा करना चाहते थे, इसलिये वे रवीन्द्रनाथ के पास गये, तो रवीन्द्रनाथ ने उनको ऐसा करने से मना किया। यह क्यों यह समझ में नहीं आता, रवीन्द्रनाथ की अन्तर्राष्ट्रीयता तथा विश्वप्रेम कहीं मजबूरी की उपज तो नहीं है?

'विचित्रा' में उनका 'विप्रदास' निकला, और दूसरी एक रचना 'आगामी काल' निकल रही थी किंतु वह समाप्त न हो सकी। 'परेश' नाम की एक बड़ी कहानी श्री नलिनीरंजन पण्डित संपादित 'शरतेर फूल' नामक वार्षिक पत्रिका (annual) में निकली। 'भारतवर्ष' में वे 'शेषेर परिचय' तथा मासिक 'वसुमती' में 'जागरण' नाम से दो उपन्यास लिख ही रहे थे कि मर गये। शिशिर पब्लिशिंग हौस ने उनका 'बामुनेर मेये' नामक उपन्यास प्रकाशित किया, यह पहले किसी पत्र-पत्रिका में प्रकाशित नहीं हुआ था।

उनके उपन्यासों में 'श्रीकांत' 'चरित्रहीन' 'दत्ता' 'गृहदाह' 'पथेर दावी' बहुत बड़े हैं, बाक़ी उपन्यास बड़ी कहानी से लेकर छोटे तथा मध्यम आकार के उपन्यासों की तरह है। कहा जाता है अपने उपन्यासों के कारण वे ब्राह्म सम्प्रदायवालों में बहुत प्रिय थे, क्योंकि उन्होंने अपने उपन्यासों में हिन्दू-समाज के खोखलेपन को स्पष्ट कर उस पर तीव्र आक्रमण किया था, किंतु जब उन्होंने अपनी तोप का मुँह ब्राह्म समाज पर घुमाया तो वे उनसे फिरन्ट हो गये।

बँगला की सबसे प्रसिद्ध पत्रिका 'प्रवासी' ने शरत् बाबू को बराबर अवज्ञा की दृष्टि से देखा, किंतु जब वे बहुत प्रसिद्ध हो गये और चारों तरफ से उनके लेख की माँग आने लगी तो 'प्रवासी' के बुद्धिमान सम्पादक श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय ने चाहा कि शरत् बाबू की कोई रचना अपनी पत्रिका में छापें, इसके लिये उन्होंने शरत् बाबू को कहलवाया, किंतु शरत् बाबू अब वे शरत् बाबू नहीं थे जो 'यमुना' के आश्रित हों, उन्होंने इसपर कोई ख्याल नहीं किया, क्योंकि उनके हाथों में यों ही बहुत से काम थे। तब 'प्रवासी' वालों ने कवीन्द्र रवीन्द्र से शिकायत की, और कहा कि आप 'प्रवासी' के लिये शरत् बाबू का लेख दिलवायें। रवीन्द्रनाथ बाबू ने शरत् बाबू से कहा, तो शरत् बाबू ने कहा अच्छा देंगे, किंतु जब उन्होंने 'प्रवासी' वालों से कहलवाया कि वे धैर्य रक्खें, जल्दी ही वे 'प्रवासी' के लिये कोई उपन्यास देंगे। इस पर 'प्रवासी' से उत्तर आया बड़ी खुशी है, किंतु साथ ही यह हिदायत आई कि जो उपन्यास वे 'प्रवासी' को देना चाहें, उसका एक संक्षिप्त वर्णन पहले ही आ जाना चाहिये। शायद वे डरते थे कि 'प्रवासी' में ही कहीं वे ब्राह्म सम्प्रदाय पर गोलाबारी न करना शुरू कर दें। शायद यह 'प्रवासी' के लिये उचित डर था, क्योंकि रामानन्द बाबू एक प्रमुख ब्राह्म नेता थे, किंतु शरत् बाबू ने ऐसी शर्त पर 'प्रवासी' में कुछ लिखना स्वीकार न किया। फलस्वरूप 'प्रवासी' में उनकी कोई रचना कभी प्रकाशित नहीं हुई।

शरत्चन्द्र के उपन्यासों को इस प्रकार गिनाने के बाद अब हम बतायेंगे कि शरत् बाबू रचना किस प्रकार से करते थे। पाठकों को पता लग गया होगा कि वे उसी विषय पर लिखते थे, जिसको उन्होंने स्वयं जीवन में प्रत्यक्ष किया था। जो कुछ उन्होंने देखा था, सुना था, अनुभव किया था, उसी को कुछ हेरफेर के साथ वे अपने उपन्यासों में चित्रित करते थे। उनके जीवन से अभिज्ञ पाठकों को कई बार उनके उपन्यासों को पढ़ते समय यह

संदेह हुए बिना न रहेगा कि उन्होंने उपन्यास के नायक के रूप में अपने ही जीवन के किसी भाग को चित्रित किया है। स्वयं उनके जीवन के अधिकांश भाग अवारागर्दी में गया था, वे स्वयं एक glorified vagabond याने यशप्राप्त अवारागर्द थे, इसी प्रकार उनके उपन्यासों के नायक यशप्राप्त अवारागर्द थे। 'चरित्रहीन' का सतीश अवारागर्द शराबी, वेश्यागामी था, उसके रुपये खर्च करने का बल्कि लुटाने का हिसाब तो शरत्चंद्र ने अक्सर दिया है, किंतु उसने कभी एक पैसा भी पैदा नहीं किया, तथा उसके जीवन में कोई उद्देश्य था ऐसा तो नहीं मालूम देता। वह जैसे आँधी में उड़ रहा था। 'श्रीकांत' का नायक श्रीकांत तो अवारागर्द है ही, एक भाग्यवान तथा प्यारा अवारागर्द। 'पल्ली-समाज' का नायक रमेश डाक्टर या वकील खुदा जाने क्या था, किंतु उसने कभी डाक्टरी या वकालत की हो या करनी चाही हो ऐसा शरत् बाबू नहीं लिखते। 'देवदास' का देवदास भी एक अवारागर्द ही है, पैदाइशी नहीं बना हुआ। 'बड़ी दीदी' का नायक सुरेन्द्र यों तो बड़ा अच्छा छात्र था, किंतु वह अपने अच्छेपन से ऊबकर अपने पैरों पर खड़ा होना चाहता है, इस उद्देश्य से वह घर छोड़कर भाग निकलता है, यहीं से उपन्यास का सूत्रपात होता है। 'दत्ता' का नरेन्द्र विलायत पास डाक्टर है, किंतु अवारागर्द के सब गुण उसमें मौजूद हैं। 'गृहदाह' के सुरेश और महिम का भी वही हाल है। 'पथेर दावी' का डाक्टर एक क्रांतिकारी है, किंतु है वह भी एक देशभक्त त्यागी अवारागर्द। उसने सारी दुनिया की खाक अपनी धुन में छान डाली थी। अवारागर्दों के प्रति यह पक्षपात शरत् साहित्य की एक विशेषता है।

शरत्चंद्र के पुरुष पात्रों से कहीं बढ़कर उनके उपन्यासों की नायिकायें हृदय पर प्रभाव डालने वाली हैं। दलित, अपमानित भारतीय नारी के साथ शरत्चन्द्र ने पग-पग पर जिस समझदारपूर्ण

सहानुभूति का परिचय दिया है वह भारतीय साहित्य में अमर वस्तु है, इसीलिये बंगाल की नारियों ने उनको सानन्द अभिनन्दन किया। भारतीय नारियों ने, जो धर्म, गतानुगतिकता तथा पैसे के संयुक्त मोर्चे के अभिमान के आगे युगों से पिसी जा रही थीं, अब उनकी रचनाओं में अपनी स्वतन्त्रता को जैसे लौटा पाया। युगयुगांतर के उनके पैरों की भारी बेड़ियाँ जैसे झनझनाकर टूट गई। उन्होंने भी जाना कि जीवन में उनका भी कुछ भाग है जो सर्वदा गौण ही हो ऐसा नहीं। शरत्चन्द्र की पुसस्तकों में वारनारियों का चरित्र तक सहानुभूति-पूर्वक चित्रित है, हमें उनको देखकर ऐसा मालूम देता है कि वे भी मनुष्य योनि की सदस्या हैं, उसमें भी उसी प्रकार धड़कता हुआ दिल है जैसा और किसी नारी में और और वह दिल किसी से निकृष्ट नहीं। 'श्रीकांत' की राजलक्ष्मी कोई नियमित वेश्या नहीं है, किंतु एक पदस्खलिता नारी है, जिसने गाने को ही अपना बनाया है। उसका चरित्र इतना उज्ज्वल और सुन्दर है कि उस पर घृणा तो उत्पन्न होती ही बल्कि उसको प्यार को जी चाहता है। श्रीकांत की जिस-जिस प्रकार से उसने सेवा की, उसको मरने से बचाया उससे अधिक कुलवधू भला क्या कर सकती है। जब घनिष्टता अधिक बढ़ते देख-कर श्रीकांत और राजलक्ष्मी जुदा होती हैं तो उस समय श्रीकांत ने जो कहा "बड़ा प्रेम केवल पास ही नहीं खींचता, बल्कि यह दूर भी ले जा फेंकता है" यह कितना बड़ा सत्य है, तथा दोनों के प्रेम की गम्भीरता को स्पष्ट कर हमारी आँखों के सामने रखकर क़रीब-क़रीब हमें रुला देता है। राजलक्ष्मी का चरित्र हमारे साहित्य में एक अमर चीज़ है। यह चरित्र स्पष्ट कर देता है कि नारी जब प्रेम करती है तो वह क्या कर सकती है।

'देवदास' की चन्द्रमुखी तो एक मामूली बाज़ारू वेश्या है, किंतु जब देवदास के प्रेम में पड़ जाती है, तो वह क्या से क्या हो जाती है। वेश्यावृत्ति तो वह छोड़ ही देती है, साथ ही वह जो करती

है उसका एक ही नाम हमारी भाषा में है, वह है तपस्या कई बार 'देवदास' को पढ़ते हुए मैं इस दुविधे में पड़ गया हूँ कि यदि प्रेम ही से किसी पुरुष पर स्त्री का अधिकार होता है, तो देवदास किसका है ? पार्वती का या चंद्रमुखी का ? देवदास स्वयं इस द्विविधे में गोता खा रहा है जब वह चंद्रमुखी से कहता है "तुम दोनों में कितना असामंजस्य, है फिर सामंजस्य भी है। एक कितनी अभिमानी तथा उद्धत है, दूसरी कितनी शांत तथा संयत है। वह कुछ भी नहीं सह सकती, और तुम कितनी सहनशीला हो। उसका कितना यश है, नाम है और तुम्हारा कितना कलंक है ? सभी उनको कितना प्यार करते हैं, और तुम्हें कोई प्यार नहीं करता ? किंतु मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, अवश्य करता हूँ"—कहकर एक गहरी साँस खींचकर फिर बोला—"पाप पुण्य के विचारक तुम्हारा क्या विचार करेंगे, नहीं मालूम, किंतु मृत्यु के बाद यदि मिलन हो तो मैं तुमसे कभी अलग नहीं रह सकता।"

पाठक यह ज़रा ध्यान से देखें तो मालूम होगा कि 'चरित्रहीन' की सावित्री का चरित्र क़रीब क़रीब वही चरित्र है जो 'देवदास' की चंद्रमुखी। प्रभेद केवल इतना है कि सावित्री वेश्या नहीं, और चँद्रमुखी वेश्या थी। सतीश तथा देवदास पर जब विपत्ति पड़ती है या वे बीमार पड़ते हैं तो क्रमशः सावित्री तथा चद्रमुखी आती है, और देवी की तरह उनकी सेवा करती है। दोनों का प्रेम अंत में निष्फल होता है. सावित्री सतीश को जीतकर भी प्रथम पर्व 'श्रीकांत' में राजलक्ष्मी की तरह बड़े प्रेम की मर्यादा के कारण दूर हट जाती है। यदि श्रीकांत प्रथम पर्व में ही समाप्त होता जैसा कि उसके होने में कोई बाधा नहीं थी, तो हम कह सकते 'श्रीकांत' की राजलक्ष्मी और 'चरित्रहीन' की सावित्री हेरफेर के साथ एक ही पात्री हैं, किंतु द्वितीय पर्व में जाकर शरत् बाबू ने श्रीकांत और राजलक्ष्मी का मिलन करा देने से सावित्री से राजलक्ष्मी की कुछ विभिन्नता आई।

साथ ही स्मरण रहे यह केवल घटना के ख्याल से विभिन्नता है, नहीं तो दोनों का चरित्र एक ही है। यह जो अनुमान किया गया है कि शरत्चंद्र पहले 'चरित्रहीन' और श्रीकांत को एक ही उपन्यास बनाना चाहते थे याने पहले दोनों की कल्पना एक थी, बाद को विभक्त होकर द्विविघ्न हो गई, यह सत्य मालूम होता है।

'देवदास' की चंद्रमुखी इन दोनों के सन्मुख ज़रा फीकी इसलिये जँचती है कि वह पहले वेश्या थी; किंतु फिर भी उसका चरित्र सावित्री तथा राजलक्ष्मी से बहुत भिन्न नहीं है।

अध्यापक धिरेन्द्र कृष्ण मुकर्जी ने 'वसुमती' के एक लेख में लिखा था "हमारे देश के एक प्रसिद्ध औपन्यासिक के हाथ में इन समाज-वहिर्भूता नारियों के चित्र बहुत ही सुन्दर उतरे हैं, कहा जाता है यह इनकी वैयक्तिक अभिज्ञता का परिचायक है।"* अध्यापक मुकर्जी ने इस औपन्यासिक का नाम नहीं दिया. किंतु बँगला साहित्य से कुछ भी परिचित प्रत्येक व्यक्ति समझ जायगा कि उनका यह कटाक्ष शरत्चद के ऊपर था।

समाजवहिर्भूता नारी से अध्यापक का मतलब केवल चंद्रमुखी की तरह सचमुच वेश्या से या राजलक्ष्मी की तरह लोकसमाज में वेश्या रूप में प्रचारित वेश्या से ही नहीं, बल्कि उनका मतलब किरणमयी, अभया, टगर यहाँ तक कि अन्नदा दीदी से भी है। 'चरित्रहीन' का किरणमयी चरित्र वाकई एक अद्भुत चरित्र है। एक विद्वान पति से उसका विवाह हुआ था, किंतु वह उसकी शिष्या ही रही। कभी स्त्री या प्रिया नहीं हुई। वह दिवाकर नामक युवक के साथ अद्भुत परिस्थिति में भागती है। विद्वत्तापूर्ण (geistreich) बातचीत में वह शरत्-साहित्य में अनुपम है, शायद 'शेष प्रश्न' की कमल उससे कुछ बीस उतरे। किरणमयी के साथ प्यार करने का जी तो नहीं

* 'वसुमती' श्रावण १३४३

चाहता, किंतु यह एक स्त्रीचरित्र है जिसको कभी कोई भूल नहीं सकता।

'श्रीकांत' की अभया किरणमयी से मिलती-जुलती है। वह बर्मी स्त्री के साथ रहने वाले पतिदेव के यहाँ से पीटी जाकर लौटती है, और रोहिणी बाबू के साथ पति-स्त्री की तरह रहती है। श्रीकांत अकस्मात उसे मिलता है, तो वह चौंक पड़ती है, किन्तु सामने आकर कहती है "जन्म-जन्मांतर के अंध संस्कार के धक्के से पहले मैं ज़रा तिलमिला गई थी, सम्हल न पाई थी, इसीलिये भाग गई थी श्रीकांत बाबू, नहीं तो इसे आप मेरी वास्तविक लज्जा न समझें।" इत्यादि, अभया की बातचीत सुनकर किरणमयी की ही बातचीत याद आती है। विद्रोहिनी नारी का वही तेजस्वी रूप उसमें भी दिखाई पड़ता है, किन्तु अभया के प्रति किरणमयी से अधिक श्रद्धा इसलिये होती है कि अभया ने एक तो पति को हद दर्जे का मौक़ा दिया, दूसरा वह रोहणी बाबू के (जो उसे प्यार करता था) साथ सचमुच पति स्त्री की तरह रहना चाहती थी, किरणमयी की तरह बुद्धि तथा रूप से अभिभूत कर दिवाकर को लेकर खेल कर रह जाना चाहती थी। किरणमयी के सम्बन्ध में एक और बात है कि वह मन ही मन प्रेम तो कर रही उपेन्द्र बाबू से, किंतु गर्व में ठेस लगने के कारण दुष्टता (Perversity) वश दिवाकर को फुसला कर रंगून भाग गई। शरत्चन्द्र ने चरित्रहीन में किरणमयी के लिये पापिष्ठा आदि शब्द का व्यवहार किया है, किंतु इसका कोई कारण नहीं मिलता कि 'चरित्रहीन' की पांडुलिपि की एक तिहाई देखकर द्विजेन्द्र बाबू ने लौटा दिया था; तथा क्यों अन्य मित्रों ने जो यह मीठी धमकी दी थी बंगाली समाज जिससे कहने वालों का मतलब बंगाली मध्यवित्त समाज इतने रसातल में नहीं पहुँचा वे सहम गये, तथा इस प्रकार कथित लोकमत के प्रति रियायत की। नहीं तो किरणमयी ने कौन सा पाप किया? फिर किरणमयी पापिष्ठा थी तो अभया क्या दूध की धुली

हुई थी ! फिर अभया के लिये उन्होंने पापिष्ठा आदि शब्द इस्तेमाल क्यों नहीं किया ? 'श्रीकांत' के प्रकाशन तक शरत्चन्द्र निडर हो चुके थे यही इसकी व्याख्या है। हम बाद को किरणमयी और अभया की सामाजिक क्रांति के सम्बन्ध में आलोचना करेंगे।

'श्रीकान्त' की अन्नदा दीदी को धीरेंद्र बाबू शायद समाजबहिर्भूता नारियों की श्रेणी में रक्खे। अन्नदा दीदी समाज के बाहर थी या भीतर, यदि बाहर थी तो इसमें समाज का छोटापन ज़ाहिर होता है या अन्नदा दीदी का, यह पाठक अन्नदा दीदी के मुँह से उनका विवरण सुनकर निर्णय करें। वे श्रीकांत को लिख गईं—

"श्रीकान्त, तुम्हारी इस दुःखिनी दीदी का नाम अन्नदा है। पति का नाम मैं क्यों गुप्त रख गई, यह इस विवरण के अन्त में पढ़ने पर तुम्हें खुद ही ज्ञात हो जायगा। मेरे पिता धनी व्यक्ति हैं, उनका कोई लड़का नहीं था। हम दो बहिनें थीं। इसलिए पिता ने चाहा था किसी ग़रीब घर के लड़के को दामाद बनाकर घर लावें, और उसे लिखा-पढ़ाकर आदमी बनावें। तदनुसार मेरे पति को उन्होंने लिखाया-पढ़ाया तो सही, किन्तु आदमी न बना पाये। मेरी बड़ी बहिन विधवा होकर घर ही पर थी, इन्हीं की हत्या कर पति फरार हो गये। यह दुष्कृत्य उन्होंने क्यों किया था, अभी तुम बच्चे हो न समझोगे, किन्तु एक दिन समझोगे। जो कुछ भी हो, कहो तो श्रीकान्त यह दुःख कितना बड़ा है ! यह लज्जा कितनी मर्मबेधी है ? फिर भी तुम्हारी दीदी ने सब सहा था, किंतु पति होकर जिस अपमान की आग वे अपनी स्त्री के हृदय में जला गये, उसकी ज्वाला आज भी शांत नहीं हुई। जाने दो। इस घटना के बाद सात बरस बीते, तब फिर उनके दर्शन हुए। जैसी पोशाक में तुमने उन्हें देखा था, उसी पोशाक में वे हमारे मकान के सामने साँप का खेल दिखला रहे थे। उनको और कोई पहिचान न पाया, केवल मैंने पहचाना ! मेरी आँखों को वे धोखा न दे सके। सुनती हूँ यह परम

दुःसाहस का काम उन्होंने मेरे ही लिए किया था, किंतु यह झूठी बात थी। फिर भी एक दिन गभीर रात में मैंने मकान का पिछला किवाड़ा खोलकर पति के लिये घर छोड़ दिया। किंतु सब ने सुना तथा जाना कि अन्नदा कुलत्यागिनी हो गई। इस कलक का बोझा मुझे आमरण ढोना पड़ेगा। क्योंकि जब तक पति जीवित थे, मैं आत्मप्रकाश न कर सकी, पिताजी को जानती थी, वे किसी भी प्रकार अपनी कन्या के हत्यारे को क्षमा नहीं करते। आज ख़ैर वह भय नहीं, आज जाकर उनको सब कह सकती हूँ, किंतु आज कौन इस कहानी पर विश्वास करेगा। इसलिये पितृगृह में मेरा कोई स्थान नहीं है, इसके अतिरिक्त मैं मुसलमानी हूँ (क्योंकि वे मुसलमान हो गये थे)।"

कहना न होगा कि ऐसी अवस्था में अन्नदा दीदी समाजबहिर्भूता भले ही हो, किंतु सतीत्व के प्राचीन मानदंड से भी अन्नदा दीदी से बढ़कर सती शायद पौराणिक साहित्य में भी कोई न मिले। अन्नदा दीदी ने सती बनने के लिये समाज त्याग दिया, कुल त्याग दिया, यहाँ तक कि असती होने का कलंक भी अपने ऊपर ले लिया। रहा यह कि ऐसा कर उन्होंने अच्छा किया या बुरा यह यहाँ विचार्य नहीं है, किंतु सती की वह जो प्राचीन धारणा है जिसमें सब अवस्थाओं में पति ही सती का धर्म है उसको खूब निबाहा। शरत् साहित्य में अन्नदा दीदी का चरित्र भी ऐसा है जो भूला नहीं जा सकता। मेरी तो धारणा है कि सुरबाला का चरित्र भी सतीत्व की मर्यादा में अन्नदा दीदी के सामने फीका पड़ जाता है!

'चरित्रहीन' उपन्यास में सुरबाला का चरित्र आता है। वह उपेन्द्र की स्त्री है, पति को अपना देवता समझती है, पतिप्राणा है। शरत बाबू को 'चरित्रहीन' उपन्यास के लिये गालियाँ क्यों दी गई हैं यह मेरी समझ में नहीं आता, क्योंकि इस उपन्यास में शरत बाबू ने सुरबाला को, जो किरणमयी के मुकाबले में उससे कहीं बढ़कर

विदुषी तथा वाग्विलासिनी है, अधिक पवित्र तथा महिमामयी करके चित्रित किया है। तुलनात्मक रूप से सुरबाला को अधिक महिमामयी करके दिखलाने का प्रयत्न 'चरित्रहीन' में स्पष्ट तथा ज्ञानकृत (conscious) है, एकाध दफे इनमें टक्कर हुआ है तब किरणमयी हार ही गई है। इसमें सन्देह नहीं कि सुरबाला औरों की अपेक्षा पृष्ठभूमि में रहती है, किन्तु शरत बाबू से जब हुआ है, वह उज्ज्वल ही होकर सामने आती है। उसकी निष्क्रियता को शरत बाबू ने किरणमयी की अद्भुत क्रियाशीलता से तथा उसके मौन को किरणमयी की वाग्मिता से कहीं बढ़कर दिखलाया है। सुरबाला बहुत ही धनी सम्भ्रान्त घराने की लड़की है, उसका पति भी भद्र लोक श्रेणी का ही नहीं वैयक्तिक रूप से, स्वभाव से भी उन सब गुण का अधिकारी है जो एक भद्र पुरुष के लिये अनिवार्य समझा जाता है, इसलिये किसी भी तरह की कल्पना से यह नहीं कहा जा सकता कि वह समाजवहिर्भूता है। अवश्य ही वह समाज के अन्दर है, किन्तु यह सब होते हुए भी किसी भी तरह से यह नहीं कहा जा सकता कि अन्नदा दीदी से बढ़कर यह सती है। समाजान्तर्गता सुरबाला का सतीत्व को यदि तुलना घृतदीप से की जा सकती है तो अन्नदा दीदी की तुलना ध्रुवतारा से की जा सकती है जो भटके हुए को रास्ता दिखाती है।

'गृहदाह' की अचला एक दूसरी ही टाईप की है। सुरेश और महिम दो प्रेमिकों के बीच वह उधेड़बुन में पड़ जाती है, यहाँ तक कि महिम के साथ विवाह करने पर भी वह अपने को समझ नहीं पाती। जब इसको देखती है तो इसकी ओर ढलती है। अंत में सुरेश उसको लेकर भाग निकलता है, पहले वह छटपाती है, किन्तु सुरेश की भयंकर बीमारी से पसीजकर उसके साथ पति-पत्नी रूप में तो नहीं, किन्तु मित्रता से रहती है। इत्यादि। इस चरित्र की विचित्रता इसी में है कि इधर से उधर ढलती है। इसी को लेकर

इस उपन्यास के रस में परिपक्वता आती है। यही इस उपन्यास का लुत्फ़ है ।

'पल्ली-समाज' की रमा इस प्रकार एक बाल-विधवा युवती स्त्री है जो अंत तक उधेड़बुन की शिकार रहती है । वह स्वभाव से प्रेमशीला तथा सत्य-पथ पर रहने की चेष्टा करने वाली है, किन्तु समाज के दबाव में पड़कर यहाँ तक सत्य से डिग जाती है कि झूठी गवाही देकर उसी रमेश को जेल भिजवाती है जिसको शायद वह दुनिया में सब से अधिक चाहती है । अवश्य विधवा होने के कारण वह अपने प्रेम को अपने निकट भी अस्वीकार करती है। रमा कदाचित् उतनी कमजोर नहीं है, किंतु ग्राम्य समाज का जो भयंकर दबाव है उसी को स्पष्ट करना शायद शरत् बाबू का अभिप्राय है ।

किन्तु 'दत्ता' की विजया उतनी कमजोर नहीं है, फिर भी वह इतनी कमजोर है कि यदि दयाल बीच में पड़ता तो वह अपने प्यारे नरेन्द्र से विवाह न कर धूर्त रासविहारी के पुत्र से ही विवाह कर बैठती ।

'बड़ी दीदी' की माधवी शरत्चन्द्र की एक बहुत ही कवित्वपूर्ण सृष्टि है। इसमें मालूम होता है युवक कलाकार शरत्चन्द्र ने अपने हृदय का सब मधु ढाल दिया है। माधवी में किशोरी की क्रीड़ाशील कल्पना, यौवन की मधुमय प्यास, हिन्दू विधवा की व्रीड़ा, तथा सेवा करके अपने को परिपूर्ण करने की इच्छा मूर्त हो उठी है। उसके हृदय में मधु इतना लबरेज़ है कि किंचित बयार से भी वह छलक उठता है, सुरेन्द्र के ऐसे ग़ैर-जिम्मेदार अपने पैर पर खड़ा न हो सकने वाले सुन्दर युवक को पास पाकर वह ज़ोर से छलक उठता है । यह कहना ग़लत होगा कि सुरेन्द्र के प्रति उसका आकर्षण केवल सुन्दर आदम के प्रति सुश्री हौवा का ही स्वाभाविक आकर्षण है। सच बात तो यह है माधवी का हृदय केवल पत्नी होने से ही नहीं, माता होने से भी वंचित है। सुरेन्द्र एक बड़ा लड़का मात्र (big boy) होने के

कारण सुरेन्द्र की देख-रेख कर माधवी के हृदय के वात्सल्य की बुभुक्षा भी परितृप्त होती है। सुरेन्द्र के प्रति माधवी का आकर्षण इसलिए एक जटिल वस्तु है, इसी जटिलता को ठीक-ठीक अदा करने में ही शरत्चन्द्र की कला की सार्थकता है।

'बड़ी दीदी' में शांति एक टाईप है। वह अलक्ष्य में रहकर उपन्यास के रस को परिपक्व करती है, मानो यही उसका एकमात्र करणीय (role) है। वह स्वयं स्पष्ट कम होती है, दूसरों को स्पष्ट करती है तथा जहाँ साँस (gap) है उसे भरती है। शरत् बाबू के उपन्यासों में ऐसी पात्रियाँ कई हैं। 'चरित्रहीन' की सरोजिनी ऐसी ही है। सरोजिनी ने जिस दिन से सतीश को देखा उसी दिन से वह उस पर अपना दिल वार चुकी, कोई प्रमाण नहीं कि सतीश के प्रति उसका प्रेम, सतीश के प्रति सावित्री के प्रेम से किसी प्रकार निकृष्ट है, फिर भी वह पश्चाद्भूमि में ही रहती है। अन्त में उसी से सतीश का विवाह होता है। सरोजिनी मानो इसलिये पैदा हुई थी तथा मानो उसका प्रेम इसी लिए था कि एक नाटकीय मुहूर्त में वह आये और सावित्री और सतीश को एक दूसरे से अलग होने में मदद करे। सरोजिनी ने इस प्रकार पश्चाद्भूमि में रहकर सतीश और सावित्री के चरित्र को स्पष्ट किया।

'देवदास' में चंद्रमुखी भी इसी श्रेणी की पात्री है, वह पार्वती और देवदास के बीच में खड़ी होने के लिए नहीं आती, बल्कि देवदास तथा पार्वती को स्पष्ट करने के लिये पैदा होती है। जब पार्वती अपने वृद्ध पति के गंजे सिर पर हाथ रखकर कहती है, "मैंने लड़की को बुलाया है," लड़की से मतलब उसकी मरी हुई सौत की लड़की से है, तो हम जानते हैं उसके इस कथन में कोई प्यार नहीं है, समस्त हृदय से वह देवदास को ही चाहती है। उसी प्रकार जब देवदास चन्द्रमुखी या अन्य किसी वेश्या के ओठ में ओठ लगा कर पड़ा रहता है तो हम जानते हैं कि इस आलिङ्गन में कोई प्रेम नहीं, यह

तो हलाहल है। अवश्य चन्द्रमुखी के प्रेम से उसका भी प्रेम बाद को जगा था, जिसका वर्णन पहले आ चुका है। "उसके मन में दोनों अगल-बगल विराजमान हैं", किंतु क्या चन्द्रमुखी के प्रति उसका प्रेम सचमुच जगा था? इसमें सन्देह है, क्योंकि वह मरने के लिये पार्वती के दर पर ही गया। इस प्रकार चन्द्रमुखी केवल देवदास को स्पष्ट करने के लिये आती है।

अब हम शरत्चद्र की पात्रियों का कुछ थोड़ा बहुत परिचय पेश कर चुके, संदेह नहीं कि उनके उपन्यास नारी-चरित्र-प्रधान हैं। उनके पुरुष-चरित्रों से उनके नारी-चरित्र कहीं ज़्यादा ज़ोरदार हैं। सावित्री, किरणमयी, अभया, अन्नदा, माधवी, सुरबाला, राजलक्ष्मी, चन्द्रमुखी इत्यादि एक से एक अद्भुत चरित्र हैं जो पाठक के हृदय-पट पर अपने को अंकित कर लेते हैं।

इन्हीं कारणों से बंगाल की नारियों ने शरत्चंद्र में ऐसी विभूति देखी, जिन्होंने उनको पालतू पशु की अवस्था से उठाकर मनुष्यता की मर्यादा दी। शरत्चन्द्र की ५७वीं जन्मतिथि के उपलक्ष्य में बंगाल के सब नारी-संघों की ओर से जो अभिनन्दन दिया गया। उसमें कहा गया—

"पराधीन देश के अधःपतित समाज की असहाया अंतःपुरचारिणियों के हृदय की मूक आनन्द-वेदना को तुमने भाषा में मूर्त कर दिया है। उनके दुर्गतिपूर्ण जीवन के सुख-दुःखों की सब अनुभूतियों को निविड़ सहानुभूति ढालकर तुमने साहित्य में सत्य करके प्रत्यक्ष करा दिया है। तुम्हारी अनाविष्ट दृष्टि, सूक्ष्म पर्यवेक्षण सामर्थ्य, सुगभीर उपलब्धि-शक्ति तथा विचित्र मानव-चरित्र की अतलस्पर्शी अभिज्ञता ने निखिल नारी-चित्त की निगूढ़ प्रकृति का गुप्ततम पता पा लिया है। हे नारी-चरित्र के परम रहस्यज्ञाता, हम लोग तुम्हारी वन्दना करती हैं।"

"सब तरह का आत्मापमान तथा सब तरह की हीनता की हालत में भी नारी की प्राकृतिक विशेषतायें सब देश के सब समाज में मौजूद हैं, तुमने उसके अकृत्रिम रूप को प्रत्यक्ष किया है, उसकी सत्यप्रकृति का अध्ययन किया है। हे सन्नारियों के अंतर्यामी, हम तुम्हारी वंदना करती हैं।"

"आज के इस विशेष दिन में हम यही जनाने आई हैं कि हम तुम्हारी प्रतिभा को वरण करती हैं। हम लोग तुमको श्रद्धा करती हैं, हम तुमको प्यार करती हैं। तुमको हम लोग अपना ही करके समझती हैं। हे नारियों के परम श्रद्धेय मित्र, तुम हम लोगों के परम प्रिय हो, तुम हम लोगों के परम आत्मीय हो—हम तुम्हारी वन्दना करती हैं।"

शरत्चंद्र को देश की नारियों ने जिन शब्दों में अभिनन्दित किया, वैसी प्रशंसा कदाचित् किसी देश के किसी साहित्यिक को प्राप्त नहीं हुई।

शरत्चद्र किस ढङ्ग से अपने उपन्यासों को लिखते थे इसका कुछ विवरण देकर यह अध्याय समाप्त किया जायगा। शरत्चंद्र को उपन्यास लिखने में प्लाट (plot) या कथा-भाग की कमी कभी महसूस नहीं हुई। उनके अवारागर्द जीवन में वे सैकड़ों तरह के लोगों के सम्पर्क में आये, यहाँ तक कि वे उन्हीं की तरह होकर रहे, फिर उन्हें प्लाट की कमी क्यों होती ? गाँव में वे रहे, शहर में वे रहे, देश में वे रहे, विदेश में रहे, पराश्रित रहे, साधू रहे, शराबी रहे, कुछ दिन तक कांग्रेस में भी रहे, क्रांतकारियों के हमदर्द रहे, वे क्या नहीं रहे, किंतु जैसा कि उन्होंने लिखा है सब तरह की सोसायटी में रहते हुए भी वे हमेशा अनुभव करते रहे कि वे उनमें के नहीं हैं। कलाकार की यह एकाकिता बुर्जुवा कला की विशेषता है, और शरत्चन्द्र की रचनाओं में यद्यपि दलितों की विशेषकर दलिता नारियों की आवाज़ हम सुन सकते हैं, फिर भी इन सारे क्रन्दनों को कोई दिशा न दे सकने के कारण तथा उसी क्रन्दन से करीब-करीब मनोरंजन का

एकमात्र उद्देश्य सिद्ध करने के प्रयत्न के कारण उनकी कला पूर्व के सब लेखकों से जनता के अधिक नज़दीक की चीज़ होने पर भी वह अधिकांश भाग में बुर्जुवा कला ही रह गई है।

शरत्चंद्र ने मध्यवित्त श्रेणी की नारियों के सुख-दुःख को ज़रूर ख़ूब व्यक्त किया है। 'अरक्षणीया' उपन्यास में उन्होंने मध्यवित्त श्रेणी की लड़कियों के विवाह को लेकर उनके अभिभावकों को तथा उनको जो भयानक हलाकान होना पड़ता है, उसको बड़ी ख़ूबी से दर्शाया है। हरेक मध्यवित्त गृहस्थ के घर में बड़ी लड़की एक समस्या के रूप में होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं। शरत्चन्द्र ने मध्यवित्तों की लड़की रूपीणि इस आपत्ति की ग्लानि तथा दुःख की विराटता को एक श्रेष्ठ कलाकार की तरह दिखलाया है। फिर भी शरत् बाबू ने मध्यवित्त श्रेणी की भी सब से मुख्य समस्या पर रोशनी नहीं डाली है, यह हम बाद को दिखलायेंगे।

प्लाट में शरत् बाबू को कभी कमी नहीं पड़ी, यह बात सच होते हुए भी हमें इस बात का ताज्जुब है कि शरत् बाबू जिस ग़रीबी के कारण एफ० ए० के इम्तहान में नहीं बैठ सके, जिस गरीबी के कारण उन्होंने एक तरह से अपने भाई तथा बहिनों को रिश्तेदारों में बाँट सा दिया तथा जिस गरीबी में वे बराबर गोता खाते हुए इधर से उधर धक्का खाते फिरे, उसकी तथा मध्यवित्त श्रेणी की सब से बड़ी समस्या बेकारी का उनके उपन्यासों में कहीं पता नहीं। 'बड़ो दीदी' का सुरेन्द्र घर से भागकर कलकत्ता गया था, कुछ दिन वह बेकार अवश्य रहा, किंतु मालूम होता है उसके पास काफी रुपये थे, उसने कभी भी भूख तथा फाके को उसके चेहरे की ओर घूरते नहीं देखा। बाद को तो उसे बड़ी दीदी के यहाँ आश्रय मिल गया। जब वहाँ से निकाल दिया गया तो शरत् बाबू ने उसको मोटर से दबवा दिया, वह अस्पताल चला गया, जहाँ से उसका बाप उसे ले गया। इसलिये बेकारी का कहीं सवाल ही नहीं आता।

'दत्ता' 'देवदास' 'पल्ली-समाज' 'गृहदाह' 'बामुनेर मेये' 'शेष प्रश्न' कहीं भी कोई बेकारी से पीड़ित नज़र नहीं आता। हाँ, 'पल्ली-समाज में गरीबी के कुछ चित्र अवश्य हैं, किंतु वहाँ ग़रीबी के अनिवार्य नतीजे के रूप में ग्रामवासियों के दुर्गुणों को जैसे एक दूसरे में ईर्ष्या, बेइमानी, झूठी गवाही तथा कुसंस्कार पर ज़ोर न देकर शरत् बाबू ने इनको मुख्यतः अशिक्षा के मत्थे मढ़ा है, जो सत्य होते हुए भी पूर्ण सत्य नहीं है। शरत्चन्द्र के उपन्यासों में 'पल्ली-समाज' एक विशेष स्थान रखता है, इसलिये हम उसकी ज़रा विस्तृत आलोचना करेंगे। इस उपन्यास के नाम से ही ज़ाहिर है कि शरत् बाबू ने इसमें ग्रामों की हालत दिखलायी है। यों तो शरत्चन्द्र के कई उपन्यासों का सम्बंध ग्रामों से है, जैसे 'अरक्षणीया', 'बामुनेर मेये' 'देवदास' इत्यादि, किंतु पल्ली-समाज में ग्रामों की दुरवस्था की ओर अधिक व्यापक रूप से दृष्टि आकर्षित की गई है।

पल्ली-समाज

रमेश ने अपनी सारी शिक्षा शहर में समाप्त की, वह पिता की मृत्यु पर उनका श्राद्ध करने ग्राम में आता है। चाहे उसके बाप के साथ किसी का कुछ भी सम्बन्ध रहा हो वह निश्चय करता है कि घर-घर जाकर नम्रता के साथ सब को बुलाकर बड़ी धूमधाम के साथ श्राद्ध का कार्य सम्पन्न करेगा, किंतु वेणी घोषाल जो उसका चचेरा भाई लगता है इसी में उसका बुरा उद्देश्य देखता है। वह गाँव के समाज का शिरोमणि है, वह रमेश की इस उदारता में बदमाशी देखता है। विधवा नवयुवती रमा तथा उसकी मौसी वेणी घोषाल के निकट प्रतिज्ञा करती हैं कि वह यदि निमंत्रण करने उनके घर आवे तो उसका अपमान कर उसे निकाल दिया जायगा। मौसी यों तो दिन भर पूजा-पाठ करती है, किंतु परनिन्दा की भनक कान में आते ही या उसकी गुंजाइश मालूम देती है तो सब काम छोड़कर उसमें

जाकर जुटती है, वह भला ऐसे मौके पर क्यों चूकती, वह इस सलाह में शामिल होती है। वेणी इस बात से चलने लगता है, तो इतने में स्वयं रमेश निमंत्रण करने आता है। वेणी उसे देखकर ही पूँछ दिखा देता है, रमा जो एक कमज़ोर लड़की है और मन ही मन समझती है कि रमेश ठीक है, हिचकिचाकर कुशल प्रश्न करती है, किंतु मौसी चूकती नहीं। वह कह बैठती है, "तुम ही फलाने के लड़के हो न? तुम एक गृहस्थ के घर कैसे बिना कहे-सुने घुस आये?" इत्यादि। पाठक को मालूम होना चाहिये रमा से रमेश लड़कपन से परिचित था, साथ ही उससे उसकी शादी की भी बात पहले चली थी।

रमा ने कुछ प्रतिवाद भी किया, किन्तु मौसी ने रमेश से कह दिया कि रमा उसके घर में पैर धुलवाने भी नहीं जायगी इत्यादि। तब रमेश क्या करता, चला जाता है। कुछ लोग ख़ैरख़्वाही करने आते हैं, रमेश कहता है चलो कम से कम कुछ व्यक्ति तो श्राद्ध में साथ देंगे, किन्तु जल्दी ही उसका भ्रान्तिभंग होता है, क्योंकि वह इन्हीं अपने ख़ैरख़्वाहों को वेणी घोषाल के घर में छिपकर वेणी से सलाह करते, तथा उसको (रमेश) की बुराई करते सुन लेता है। वेणी को माँ बड़ी बुद्धिमती है, वह रमेश को गुप्त रूप से यहाँ तक कि एक बार जब कि क्षेन्ति ब्राह्मणी की लड़की के श्राद्ध-मंडप में घुसने पर लोग कुछ आपत्ति करते हैं, और पंक्ति से उठ खड़े होते हैं, तो वह सामने आती है और कहती है, "गांगूली महाशय को मना करो कि वे किसी को डर न दिखलावें, और हालदार महाशय से कहो कि हमने सब को आदर-पूर्वक बुलाया है, सुकुमारी को भी, इस पर यदि किसी को आपत्ति हो तो वह उठकर दूसरे कहीं चला जाय।"

इस प्रकार ग्राम्य समाज जिसे पवित्र हिंदू समाज का कहा जाता है, रमेश को व्यावहारिक तजर्बा होता जाता है। जो न्यौता खाने आते हैं वे घर के सब बच्चों को लाते हैं, बेहिसाब खाते हैं, फिर बाँध कर

ले जाते हैं। एक तालाब में रमेश का हिस्सा है, किन्तु वह उदारता से उसकी मछलियों में कोई हिस्सा नहीं बटाता, तो इस पर गाँव के लोग उसे बेवकूफ या कायर समझते हैं। रमेश रमा को जिस रूप में जानता था, उसमें उसका विश्वास है कि रमा कभी किसी दूसरे के हिस्से की चीज़ में हाथ न लगायेगी। जब इस तालाब में उसको बिना इत्तला दिये ही मछली पकड़ी जाती है, उस समय वह अपने नौकर भजुआ को भेजता है, 'जाओ जो चाहे कुछ भी कहे, मैं निश्चय जानता हूँ माँजी (रमा) कभी झूठी बात नहीं कहेगी। वह कभी भी दूसरे की चीज़ नहीं छूएगी।" रमा के मन की बात कुछ भी हो वह एकत्रित लोगों के दबाव में आकर बिलकुल इसके विपरीत आचरण करती है।

सब से अधिक इस बात से रमेश ग्राम-सुधार के सम्बन्ध में निराश हो गया। वह गाँव छोड़ कर चले जाने को उद्यत हो जाता है। वह यह बात जानकर अपनी चाची से कहता है। चाची कहती है कि इतने से निराश होना ग़लत होगा। वह बहुत निराश होते हुए भी एक बार और कोशिश कर देखने के लिये रह जाता है। वह चाहता है गाँव के रास्ते सुधारे जायँ, विशेषकर स्टेशन जाने का रास्ता बहुत खराब है वह उसे सुधारना चाहता है। इसके लिये २००) रुपये की ज़रूरत है, वह चदे का रजिस्टर बनाकर घर-घर जाता है, किंतु कई दिन तक दौड़ते रहने पर भी आठ दस पैसे भी नहीं मिले। उसने अपने कानों से एक जगह लोगों को आपस में बातचीत करते हुए सुना, "एक पैसा भी तुम लोग कोई न देना, देखते नहीं हो इसमें उसी की ग़रज़ सब से ज्यादा है। बात यह है उन्हें अंग्रेज़ी जूता पहिने हुए चर्रमर्र करके चलना है न। कोई कुछ न दोगे, वह आप ही अपने खर्चे से सब मरम्मत करा देगा। इसके अतिरिक्त इतने दिन तक बच्चा जब नहीं थे, तो क्या हम लोग स्टेशन नहीं जाते थे।" एक दूसरे ने कहा "अरे भाई ज़रा ठहरो तो, चट्टो

महाशय ने कहा है इसके सिर पर हाथ फेर कर शीतला जी का घाट भी बनवा लिया जायगा, ज़रा बाबू बाबू कहते रहो सब काम बन जायगा।"

इस बात से रमेश का जी पक जाता है, और वह फिर गाँव छोड़-छाड़ कर चले जाने को तैयार हो जाता है, किंतु चाची फिर बीच में पड़ती है। वह कहती है "ये कितने दुखी तथा दुर्बल हैं यह यदि रमेश तुम जान जाओ तो इन पर क्रोध करते तुम्हे लज्जा होगी। ईश्वर ने यदि दया करके तुम्हें भेजा ही है तो तुम इनमें रहो न बेटा!"

—"किंतु चाची ये तो हमें चाहते नहीं।"

—"किंतु क्या इसी से तो तुम्हें समझना चाहिये कि ये इतने अमहक़ हैं कि सर्वथा तुम्हारे क्रोध और अभिमान के अयोग्य हैं।"

रमेश ने घर जाकर ठंडे दिमाग़ से जब इन बातों पर विचार किया तो वह समझ गया कि सचमुच वह क्रोध किन पर करे, वह रहने लगा।

रमेश जब चाची के यहाँ लौटता है तो उसके पास एक रोता हुआ लड़का आता है। पूछने पर ज्ञात होता है कि उसका बाप मरा पड़ा है, किंतु चूंकि किसी कारण से उसके पिता का बिरादरी वालों ने हुक्का-पानी बंद कर दिया था, इसलिये मरने पर उसकी लाश पड़ी है, कोई उसको उठाने को तैयार नहीं होता। अब लाश उठवाने के लिये जरूरत इस बात की है कि मरा हुआ आदमी प्रायश्चित्त करे। समाज का यही न्याय है। जिस बात को उसने जीते जी करने से इनकार किया, अब समाज उसे उसी बात को मरने के बाद करने के लिये मजबूर कर रहा है, नहीं तो चीलकौवे उसकी लाश को घसीटकर नोच खायेंगे, केवल यही नहीं, समाज की पुलिस उसका श्राद्ध आदि होने नहीं देगी, इस प्रकार कर्म चाहे उसने अपने जीवन में कैसे भी किये हों, परलोक का पासपोर्ट उसे न मिलेगा। रोते हुए लड़के को बाप के परलोक की शायद इतनी फिक्र

नहीं है, किंतु बाप का थोड़ा सा जो इहलोक बाकी रह गया है उसी की फ़िक्र है, और दुःख है पितृवियोग का। वह समाज के धुरन्धरों के पास जाता है, तो एक जगह उसे चार पैसे, दूसरी जगह उसे चवन्नी मिलती है, किन्तु प्रायश्चित करने के लिये कम से कम नौ चवन्नियाँ चाहिए। आश्चर्य यह है कि डाक्टरों को मरनेवालों की नाड़ी देख कर रुपया लेने की निंदा की जाती है, किन्तु इन मुफ़्तखोर पुरोहितों के लिये यह कोई बुरी बात नहीं कि वे मृत्यु का फायदा उठा कर सम्बन्धियों से दक्षिणा आदि ऐंठे। यह इसलिए कि पुरोहित या ब्राह्मण तो ऐसा करके स्वर्ग का द्वार खोल देते हैं। अस्तु।

रमेश इस प्रायश्चित की व्यवस्था कर देता है, उस लड़के को फिर कहीं जाना नहीं पड़ता।

रमेश तारकेश्वर में जाता है तो वहाँ मन्दिर में रमा से भेंट होती है, किंतु वह रमा को पहचानता नहीं है। रमा रमेश को स्वयं बुला कर परिचय देती है और ले जाती है, वहाँ उसको बड़े आदर के साथ खिलाती है, फिर दरी बिछा कर सोने के लिये कहकर दूसरे कमरे में चली जाती है। रमेश को इतना आदरकर कभी किसी ने खिलाया है यह उसे स्मरण नहीं होता, उसको भोजन की परितृप्ति के सुख का पहले ही बार जैसे अनुभव होता है। रमा का यह निमंत्रण लेकिन तारकेश्वर में ही है। गाँव में लौटकर समाज के दबाव तथा दल-बन्दी में पड़कर वह जैसी हो जाती है यह बाद में आयेगा।

दो दिन तक अविश्रान्त रूप से वर्षा होने के कारण 'सौ बीघे का मैदान' पानी से डूब जाता है। गाँव के प्रत्येक गृहस्थ की इस मैदान में कुछ न कुछ ज़मीन है, इस मैदान का नाम सौ बीघे का मैदान नाम होने पर भी यह सौ बीघे से कहीं ऊपर है, तथा सारे गाँव की खेती एक तरह से इसी पर निर्भर है। इस मैदान का पानी निकाला जा सकता है, किन्तु इसकी निकासी जिस तरफ है उधर जमींदारों का एक ताल है। सौ बीघे का मैदान और इस ताल के बीच में एक

बाँध है, यदि इस बाँध को खोल दिया जाय तो ताल की सब मछली निकल जायगी जिससे जमींदारों को कोई दो तीन सौ रुपये का नुकसान होता है। पहले तो किसान जमींदार वेणी बाबू के यहाँ जाते हैं, किन्तु वे कुछ करने से इनकार करते हैं, तब वे रमेश के पास आते हैं। रमेश सीधा ही वेणी के पास जाता है, किन्तु वेणी रमेश को कहता है—"इन दो सौ रुपयों का नुकसान कौन बर्दाश्त करेगा ? तुम दोगे ?"

सच बात तो यह है कि जितना नुकसान होगा वेणी का होगा उतना ही रमेश का होगा, क्योंकि इस ताल में वेणी, रमा और रमेश का बराबर हिस्सा है। रमेश इस नुकसान के लिये तैयार है, किन्तु इस बात के लिये तैयार नहीं कि अपनी जेब से दूसरे सरीकैन का नुकसान पूरा करे। वह कहता है, "ज़रा सोच तो देखिये, हम लोगों के तीन घरों का दो-तीन सौ रुपया नुकसान तो ज़रूर होगा, किन्तु इसको यदि हम बचाने जाते हैं तो ग़रीबों का कम से कम छै-सात हज़ार रुपये का नुकसान होता है।" वेणी इस पर कहता है, "नुकसान सात नहीं सत्तर हज़ार हो तो हम परवाह नहीं करते।"

तब रमेश रमा के यहां यह उम्मीद लेकर जाता है कि वह अवश्य ही ग़रीबों की पुकार को सुन लेगी, किन्तु वहाँ उसे घोर निराश का सामना होता है। वह इस प्रकार आशा भंग होने पर इतना क्रोध में आ जाता है कि रमा को नीच, कमीनी आदि कहता है, साथ ही कहता है "मैं ज़बरदस्ती बाँध काट दूँगा, जिसको मजाल हो वह चल कर रोक ले।" रमा कहती है, "आपने मेरे ही घर में मेरा अपना किया, मैंने कुछ न कहा, किन्तु बाँध ज़बरदस्ती काट देने की चेष्टा आप न करें, क्योंकि इतनी अपमानित होने पर भी आपसे लड़ने का जी नहीं चाहता।" रमेश कहता है, "लड़ने का मेरा जी नहीं चाहता, किन्तु साथ ही तुमसे सद्भाव रखने का भी कोई मूल्य हमें नहीं मालूम देता", और वह चला जाता है।

रमा अकबर नाम के अपने एक प्रसिद्ध लठैत को बाँध पर पहरा देने के लिये भेजती है। वह अपने दो जवान लड़कों के साथ पहरे पर जाता है। रमेश अपने नौकर को लेकर बाँध काटने जाता है, किन्तु वहाँ पहरा देखता है। रमेश का नौकर एक ही लाठी में मिट्टी पर लोट जाता है, तब रमेश स्वयं लाठी लेकर आगे बढ़ता है और सब को भगा देता है। बाँध कट जाता है। अकबर जाकर वेणी से सब हाल कहता है, तो वेणी कहता है, "चलो तुम लोगों की चोट दिखाकर थाने में रपट लिखवायें", किन्तु अकबर इस बात पर राज़ी नहीं होता है, कहता है "पाँच गाँव के लोग मुझे सर्दार कहते हैं, मैं किस मुँह से रपट लिखवाऊँ कि मैं पिट गया। वेणी के कहने पर रमा ने भी उसको कहा कि वह जाकर वैसा ही करे जैसा वेणी बाबू ने कहा, किन्तु वह ऐसा करने से साफ इनकार कर चला गया। वेणी क्रोध में गालियाँ देता रहा, रमा चुप रही। रमा यद्यपि हारी हुई थी, किन्तु इस पर भी जो कुछ हुआ उससे जैसे उसके हृदय पर से एक भारी पत्थर उतर गया। ऐसा होने का कोई कारण हो उसकी समझ में नहीं आया।

एक दिन कुछ मुसलमान किसानों ने आकर रमेश से शिकायत की कि गाँव की पाठशाला में उनके लड़कों को भर्ती नहीं किया जाता। रमेश ने ही आकर इस स्कूल के लिये नया मकान बनाकर तथा अन्य हर प्रकार से सहायता कर उसे एक नया रूप तथा जीवन दिया था, इसलिये इस बात को सुनकर उसे बड़ा क्रोध आया और वह फौरन इस बात के लिये तैयार हो गया कि खड़े-खड़े अपने सामने मुसलमान के लड़कों को भर्ती करा दे। किन्तु मुसलमानों के बुजुर्गों ने कहा कि झगड़ा इससे बढ़ेगा न कि घटेगा, इसलिये बाबू की बड़ी मेहरबानी होगी यदि वे उनका ही एक छोटा स्कूल खोल दें। रमेश भी लड़ते-लड़ते थक गया था, उसने ऐसा ही करना स्वीकार कर लिया।

एक दिन रमा बिना कुछ इत्तला दिये अपने छोटे भाई को साथ में लेकर रमेश के यहाँ आ पहुँची। रमेश अपने को न रोक सका। उसने बताया कि लड़कपन से वह उसे प्यार करता है, उसने सुना था कि उसी से उसकी शादी होगी, किन्तु जब बचपन में ही उसने सुना कि यह शादी टूट गई तो वह अपने आँसुओं को न रोक सका था। इसी प्रकार वह न मालूम क्या-क्या कह रहा था, इतने में एक व्यक्ति ने आकर खबर दी कि पुलिस ने उसके नौकर को एक डकैती के सम्बन्ध में गिरफ़ार कर लिया। रमेश ने रमा को पिछले दरवाजे से निकल जाने के लिये कहा क्योंकि तलाशी का डर था। रमा अकड़ गई, बोली—"आपको तो कुछ खतरा नहीं है? मैं नहीं जाऊँगी।" फिर रमेश ने समझाया तो वह चली गई।

रमेश का नौकर दो महीने से गिरफ़ार है। भैरव आचार्य ने जाकर गवाही दी कि वारदात के दिन रमेश का नौकर उसके साथ उसकी लड़की का वर ढूँढ़ने गया था। नौकर छूट गया। वेणी की ही यह सारी कारसाज़ी थी, इसलिये उसको बड़ा दुःख हुआ। भैरव एक दिन ढाढ़ मारकर रोते हुए रमेश के पास आया। जब उसका धीरज बँधाकर उससे पूछा गया तो उसने बताया कि वेणी की स्त्री के चाचा ने भैरव के नाम से ग्यारह सौ छब्बीस रुपये सात आने की डिग्री प्राप्त की है, और इसके फलस्वरूप दो ही एक दिन में उसकी सब ज़मीन जायदाद कुर्क कर ली जायगी। यह डिग्री एकतरफा नहीं थी, बाक़ायदा सम्मन जारी हुआ था, किसी ने भैरव का नाम दस्तख़त कर उसे ले लिया था और निश्चित दिन पर इसी जाली भैरव ने अदालत में सब मुकदमे को सच करके मान लिया था। असल में यह ऋण, मुद्दई तथा मुद्दालह सब झूठे थे। अब जब सब हो चुका है तो गरीब क्या कर सकता था? रमेश ने चेक लिख दिया और कहा रसीद ले लेना, यथासमय इस फैसले के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई की जायगी।

इधर गाँव में मलेरिया का प्रकोप होने के कारण रमेश उसी को रोकने में व्यस्त था। रमेश को एकाएक जो शहनाई की आवाज सुनाई दी तो उसको नौकर से मालूम हुआ कि भैरव के नाती का अन्नप्राशन हो रहा है। यह भी मालूम हुआ कि भैरव ने बन्दोबस्त अच्छा किया है, गाँव के सभी गण्यमान्य व्यक्ति बुलाये गये, केवल वही नहीं बुलाया गया इस पर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह उठकर सीधा भैरव के यहाँ गया। वहाँ भैरव न था। वह किसी काम से भीतर से बाहर आया तो सामने रमेश को देखा तो एकदम चौंक पड़ा जैसे भूत देखा हो। एक बार उसे देखकर ही वह भीतर चला गया। एक बुजुर्ग ने जो भीतर से रमेश से सहानुभूति रखते थे रमेश को बता दिया, "बात यह है कि आपको समाज-निकाला दिया गया है, इसलिये भैरव ने यदि आपको न बुलाया तो इसमें उसका दोष नहीं, आज नहीं तो कल उसे बेटी, बेटे को नहीं तो नाती-पोते की शादी करनी है" इत्यादि। रमेश ने "ज़रूर ज़रूर" तो कहा, किन्तु उसके हृदय से व्यक्तियों के इस कायरपन तथा कृतघ्नता पर रोष हुआ। वह चला आया।

आगे इससे भी भयंकर बात ज्ञात हुई। वह यह कि भैरव आचार्य के ऊपर यह जो नालिश हुई थी, इसमें भैरव जान-बूझकर स्वयं हाजिर नहीं हुआ था। जो रुपया उसे रमेश की उदारता से मिला था उससे उसने वेणी आदि समाज के स्तम्भों की मित्रता खरीद ली थी। अन्नप्राशन में न बुलाने से यह अपमान कहीं बढ़कर था। रमेश अदालत से सीधा भैरव के घर पहुँचा, और उसका हाथ पकड़कर कहा—"क्यों तुमने ऐसा किया? क्यों?"

भैरव ने कुछ उत्तर देने की कोशिश नहीं की, बल्कि उससे जितना चिल्लाते बना चिल्लाने लगा। एक मिनट में भीड़ इकट्ठी हुई। रमेश ने फिर भी हाथ न छोड़ा। रमा भीड़ चीरती हुई आई, बोली, "इसे छोड़ दो!"

—'क्यों ?"

—"इतने लोगों में तुम्हें ऐसा करते लज्जा नहीं मालूम होती, किन्तु मैं तो लज्जा से मरी जा रही हूँ ।"—रमेश ने हाथ छोड़ दिया, यह जैसे जादू हो गया ।

जब रमेश चला गया तो लोग सलाह करने लगे कि इस प्रकार मकान पर चढ़कर रमेश ने जो मारपीट की उसका तो कुछ होना चाहिये । रमा भी थी, उसने कहा, "ऐसी कौन सी बात हुई कि इसे लेकर एक तूफ़ान बरपा की जाय ।" वेणी ने आश्चर्य प्रकट किया। भैरव की लड़की लक्ष्मी ने कहा—"तुम तो दीदी उन्हीं की होकर कहोगी, तुम्हारे बाप को किसी ने घर पर चढ़कर मारा थोड़े ही । सुनो तुम धनी हो इसलिये कोई कुछ कहता नहीं, नहीं तो क्या कोई कुछ जानता नहीं ।" रमा समझ गई, वेणी की ओर घूमकर बोली—"क्यों भैया, यह क्या ? तुमसे कोई भी दुष्टता नहीं बची, तुम्हीं मुझको यह सब कहलवा रहे हो, में समझती हूँ ।" वेणी ने कहा—"लोगों ने तुमको सवेरे यदि रमेश के घर से निकलते देखा हो तो इसमें हम क्या कह सकते हैं ?" इतने में भैरव की स्त्री ने लड़की को डाटकर कहा—"लक्ष्मी, स्त्री होकर स्त्री के नाम से इस प्रकार लांछना न लगाओ, धर्म इसको नहीं सहेंगे—" फिर घूमकर वह रमा से बोली, "तुम भी अनर्थक बात बढ़ा रही हो, कौन यहाँ ऐसा है जो तुम्हें नहीं जानता ?" यह घटना यहीं समाप्त हुई ।

रमेश को घर पर चढ़कर भैरव को छुरा मारने की चेष्टा करने के अपराध में सज़ा हो गई। वह अब जेल में था । मेजिस्ट्रेट को उसे सज़ा देने में कोई हिचकिचाहट नहीं हुई क्योंकि उसके नाम से बहुत दिनो से हर तरीक़े की रपट दर्ज थी । रमा ने भी गवाही दी थी "रमेश भैरव के घर में घुसकर उसे मारने आया था, किन्तु उसने भैरव को छुरी मारी था या नहीं यह वह नहीं जानती, और उसके हाथ में छुरी थी या नहीं यह उसे स्मरण नहीं ।"

रमा गवाही देते समय यह नहीं जानती थी कि रमेश को साल भर की सज़ा होगी, अधिक से अधिक सौ दो सौ जुर्माना होगा, यहां वह जानती थी। इसालिए उसने सब कुछ जानते हुए भी सच नहीं बोला था, समाज सत्य कब चाहता था, यदि वह सत्य बोलती तो उसे पुरस्कार यही मिलता कि लोग उसे कुलटा कहते। इस त्याग के बजाय उसने रमेश को सौ दो सौ जुर्माना करवाना ही अच्छा समझा। रमेश तो जेल में चक्की चलाने लगा, इधर रमा के घर में पूजा हुई, किसान प्रसाद लेने आये थे किन्तु अबकी बार समाज के स्तम्भों के अतिरिक्त कोई न आया। वे बहुत क्रुद्ध थे। मुसलमान तो वेणी को खतम ही करना चाहते थे।

एक दिन वेणी को कुछ अज्ञात लोगों ने मार गिराया, वेणी मरे तो नहीं, किन्तु अस्पताल लायक हो गये। जब वह अच्छा हुआ तो उसने सोचा अब मामला गड़बड़ है, इस प्रकार न चलेगा, इसलिए जब रमेश छूटा तो फाटक पर पहला व्यक्ति वेणी उससे मिला। लगा सहानुभूति दिखाने, साथ ही रमा के विरुद्ध रमेश के मन में विष भरने—"उसीने तुमको सज़ा कराई, उसी ने अकबर को भेजकर तुम्हें पिटवाना चाहा था।"

रमेश को आकर धीरे-धीरे ज्ञात हुआ कि उसकी अनुपस्थिति में, गाँव की जो नीच क़ौमें कहलाती हैं तथा जो किसान हैं, उनमें कितना परिवर्तन हुआ था, वे अब पंच को मानकर अदालत जाने से भी विमुख हो रहे थे। रमेश को यह भी पता लगा कि रमा को समाज से अलग कर दिया गया है, गवाही देने पर ही। इसलिए उसके एक-मात्र भाई यतीन के उपनयन में कोई गया नहीं था। रमा कठिन बीमारी में थी। एक दिन रमा के यहाँ से रमेश का बुलावा आया। रमा ने अपने अपराधों की क्षमा माँगी, और कहा कि वह यतीन का भार रमेश पर छोड़ देना चाहती है, साथ ही कुछ जमींदारी

भी उसे देना चाहती है। रमा ने पैर छूकर क्षमा माँगी, और अगले दिन वेणी की माँ के साथ काशी चली गई।

यही "पल्ली-समाज" उपन्यास है। शरत्चन्द्र ने इस उपन्यास में गाँव की सब समस्याओं को मूर्त करके पाठक के सन्मुख रख दिया गया है। हमने इसका जो संक्षिप्त रूप पाठकों के सन्मुख उपस्थिति किया है उसमें साहूकारों के ऋण से कैसे किसान मुक्त नहीं हो पाते, बल्कि दिन-बदिन और ऋण में बँधते जाते हैं, यह नहीं आ पाया, किन्तु मूल पुस्तक में यह भी है। "पल्ली-समाज" उपन्यास 'चरित्रहीन' 'श्रीकांत' आदि उपन्यासों के सामने फीका पड़ गया है, उसकी ओर लोगों की दृष्टि अधिक नहीं गई, किन्तु मैं समझता हूँ इस उपन्यास में उससे कहीं ज्यादा है जितना लोग समझते हैं। गाँव की मध्यवित्त तथा उच्च श्रेणी की दयनीय हालत का चित्रण इसमें है। कहीं-कहीं इसमें किसान आदि के जो चित्र आये हैं, वे गौण रूप में ही आये हैं। शरत्चन्द्र ने इस पुस्तक का नाम 'पल्ली-समाज' रक्खा है, सन्देह नहीं कि इसमें जिन लोगों का चित्र खींचा गया है वे ही ग्राम्य समाज के स्तम्भ हैं, किन्तु फिर भी वे ही सब कुछ नहीं। इस पुस्तक का नाम पल्ली-मध्यवित्त-समाज होता तो अधिक उपयुक्त होता, किन्तु एक तो यह नाम एक उपन्यास के लिए शायद सम्पूर्ण रूप से समीचन न होता, और दूसरा शरत् बाबू के दिमाग में श्रेणियों का विभाजन स्पष्ट नहीं था, उन्होंने तो यही समझ कर लिआ कि वे पूरे पल्ली-समाज का चित्रण कर रहे हैं। 'पल्ली-समाज' तीस चालीस साल पहले के बंगाल के औसत गाँवों का चित्रण है, किन्तु मैं समझता हूँ मोटे तौर पर इसमें अखिल भारतीय आजकल के मध्य-वित्त ग्राम्य समाज की रूपरेखा आ गई है। हम इस पुस्तक की अन्य समालोचना आगे करेंगे, यहाँ और इतना कह देंगे कि रमा और रमेश में हमें पार्वती और देवदास का सादृश्य मिला है, यह सादृश्य रमा विधवा तथा पार्वती पर स्त्री होने पर भी स्पष्ट है।

'पल्ली-समाज' से ही स्पष्ट है कि शरत् बाबू ग्राम्य मध्यवित्त श्रेणी के समाज से बखूबी परिचित थे, क्यों न होते, वे स्वयं उन्हीं में से एक थे। उनकी निरीक्षणशील, आँखों ने तथा अनुभूतिशील हृदय ने उसकी सारी गहराई तक पैठकर, उसकी असलियत का पता पा लिया था। उसमें जो धोखा, क्षुद्रता, ढोंग, परश्रीकातरता थी, उसके नाड़ीनक्षत्र सबसे शरत् बाबू परिचित थे। इसलिये इस परिचित समाज के विषय में लिखते समय शरतचंद्र को कभी प्लाट की कभी नहीं होती थी।

"किसी उपन्यास को लिखते समय पहले से वे प्लाट नहीं ठीक करते थे, पहले वें अपने लिये एक दायरा बना लेते थे, फिर उसके उपयोगी चरित्रों (charecters) को मन ही मन सोच लेते थे, फिर ठीक करते कि वे क्या-क्या काम करेंगे। बंकिमचन्द्र की रचना-पद्धति बिलकुल दूसरी थी, बंकिम सहोदर पूर्णचन्द्र से मालूम हुआ है कि वे पहले घटना कब किसके बाद होगी वह ठीक कर लेते थे। शरत्चंद्र में और एक विशिष्टता थी, वह यह कि ज्यों ही नये उपन्यास की कल्पना मन ही मन निश्चित हो जाती त्यों ही वे लिखना शुरू करते, किन्तु वे हमेशा सिलसिलेवार तरीके से लिखते थे यह बात नहीं, अक्सर वे बाद के या बीच के अध्यायों को पहले लिख लेते थे। उनके 'चरित्रहीन' का एक से अधिक विख्यात अंश इसी प्रकार लिखा गया। शरत्चन्द्र की रचनाओं को पढ़ने से यह मालूम देता है कि भाषा जैसे स्वयं ही सरकती चली जा रही है, किन्तु यह बात नहीं। वे न तो जल्दी ही लिख पाते थे न आसानी से शब्द उनकी कलम की नोक पर आते थे। लिखने के बाद वे बहुत काटते थे। खूब सोच-समझ कर तभी वे वाक्य की रचना करते थे।"*

*देखिये श्री हेमेन्द्रकुमार राय लिखित साहित्यिक शरतचन्द्र, पृ० ७३

सतीशचन्द्र दास नामक एक महाशय ने "शरत्-प्रतिभा" में यह लिखा है कि "चरित्रहीन" लिखते समय शरत् बाबू ने शराब का बहुत इस्तेमाल किया था, किन्तु जैसा कि मैंने पहले लिखा है 'चरित्र-हीन' उपन्यास में एकाध जगह पर सेक्स-अपील यह मौन आवेदन अधिक होने पर भी पुस्तक का उपसंहार हितोपदेश की ही तरह है। किरणमयी पर ही समाज के ठेकेदारों को विशेष आपत्ति है, उसके तर्क कितने भी पैने हों शरत् बाबू ने उसका अन्त पगली बनकर हुआ यह दिखलाया है। बाद को 'चरित्रहीन' की विस्तृत आलोचना करते समय हम इसकी आलोचना करेंगे। सतीश बाबू का वक्तव्य कहाँ तक ऐतिहासिक है यह वही जानें। बहुत सम्भव है यह उनकी कपोल-कल्पना हो, मेरा वक्तव्य केवल इतना है कि शरत् बाबू के लिए उन दिनों शराब पीना शायद मामूली बात थी, 'चरित्रहीन' लिखने के लिए ही उन्हें विशेषकर शराब पीना पड़ा यह हम नहीं मानते, क्योंकि वैसा यदि हम मानें तो हमें यह मानना पड़ेगा कि शराब पीकर वे नीतिवादी (moralist) हो जाते थे, जो शायद सतीश बाबू को और भी नापसन्द हो।

———

महाप्रस्थान

कलकत्ता लौट आने के बाद से शरत् बाबू की जीवनी एक अखिल देश प्रशंसित साहित्यकार की जीवनी रही। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उनको 'जगत्तारिणी' तमग़ा दिया, ढाका विश्वविद्यालय ने उन्हें डि० लिट की उपाधि दी। उनकी पुस्तकों के दस दस हजार के संस्करण निकले, संपादकगण लेख के लिये उनके दरवाज़े पर माथा रगड़ते ही दिखाई देते थे। मासिक पत्रिकाओं की शरत्-संख्या निकली, शरत्चन्द्र के सम्मान के लिये स्थायी रूप से शरत्-समितियाँ बनीं। उनकी पुस्तकों का धड़ल्ले के साथ भारतीय भाषाओं में तथा अंग्रेजी में अनुवाद हुआ। कुछ लोगों ने यहाँ तक लिखा है कि उनको नोबल पुरस्कार मिलते-मिलते रह गया। उनकी रचनाओं ने बंगाली मध्यवित्त समाज को जिस तरह हिला दिया तथा उनकी रचनाओं की उत्तमता तथा परिमाण को देखते हुए यह कोई असंभव बात नहीं थी। इस विषय पर इससे अधिक कहकर एक वितर्क में फँसना मैं नहीं चाहता।

एक तरफ शरत् बाबू पर जैसे प्रशंसा की झड़ी लगी, दूसरी तरफ वैसे ही उनको हर तरह की गालियाँ मिलीं। किसी ने उनको अनीति का तथा व्यभिचार का प्रचारक कहा तो किसी ने उनको वेश्याओं का विशेषज्ञ कहा। इसमें सन्देह नहीं कि शरत् बाबू अपने जीवन के पहले भाग में उच्छृंखल रहे, किन्तु उनकी पुस्तकों में किसी भी जगह उच्छृंखलता का प्रचार या उसकी वकालत

नहीं की गई। उनका मोटो 'पाप को घृणा करो, पापी को नहीं' यही रहा ज्ञात होता है। यदि Les miserables के लेखक विक्टर ह्यूगो को या गेटे को पाप का प्रचारक नहीं कहा जा सकता तो शरत् बाबू को भी पाप का प्रचारक नहीं कहा जा सकता।

यदि यह कहा जाय कि वे स्वयं जीवन के पहले हिस्से में उच्छृंखल थे, इसलिए उनकी पुस्तकों में दुर्नीति का प्रचार होना ही चाहिए तो यह बात बिलकुल ग़लत है। गेटे, शेली, रूसो इनमें से किसी ने भी दुर्नीतिपूर्ण समाजविरोधी साहित्य की सृष्टि नहीं की, किन्तु इनमें से सभी नीतिवादी की दृष्टि में असच्चरित्र थे। जो कुछ भी हो, हम शरत्चन्द्र की पुस्तकों की विस्तृत आलोचना करते समय इस बात की जाँच करेंगे कि कहाँ तक शरत्चन्द्र ने अपने साहित्य में दुर्नीति का प्रचार किया है।

शरत्चन्द्र क़लमशूर तो थे, किन्तु किसी सभा में दो बात कहते हुए उनकी जान निकल जाती थी। फिर भी सैकड़ों सभा में उनको जाना पड़ा, या तो वे भाषण लिखकर ले जाते थे, या बोलते थे तो तीन-चार मिनट के लिये। मरते दम तक उनका यही हाल रहा। रवीन्द्रनाथ की तरह वे साहित्य में सव्यसाची होकर नहीं आये थे, उपन्यास की ही प्रतिभा उनमें थी।

असहयोग के ज़माने में शरत्चन्द्र बहुत दिनों तक कांग्रेस में रहे, यहाँ तक की १६२२ में वे हावड़ा कांग्रेस कमेटी के सभापति थे। "पथेर दावी" उपन्यास के अलावा किसी भी उपन्यास में फिर भी राजनीति की गन्ध नहीं, यह शरत्-साहित्य की एक विशेष त्रुटि है। साथ ही यह भी याद रखने योग्य है कि यदि शरत् बाबू राजनीति को लेकर उपन्यास लिखते तो शायद उनकी सभी पुस्तकें ज़ब्त हो जातीं, और जेल में ही उनकी उम्र बीतती। अस्तु।

शरत्चन्द्र कभी भी बहुत तन्दुरुस्त नहीं थे, उच्छृंखल जीवन ने तथा ग़रीबी ने उनके स्वास्थ्य को पहले से ही पंगु बना रक्खा था,

किन्तु वे कभी बीमार भी नहीं रहते थे। हाँ, बवासीर का रोग उनका पुराना था, किन्तु मृत्यु से कुछ साल पूर्व इसको भी आपरेशन करके आराम कर दिया गया।

१६३६ की भीषण गर्मी में वे गाँव से पैदल चलकर देउलटी स्टेशन में गाड़ी पर सवार हुए, इससे उन्हें लू लग गई। तब से जो सिर का दर्द शुरू हुआ वह बन्द ही नहीं होने को आता देखकर उसकी चिकित्सा कराई गई, तो डाक्टरों ने कहा यह न्यूरालजिक दर्द है, तदनुसार उन्हें आलट्रा-वायोलेट रश्मियाँ दी गईं, किन्तु कोई फायदा न हुआ। पढ़ने-लिखने से यह दर्द और बढ़ता था। कभी सोचा गया यह चश्मे में पावर की ग़लती के कारण ऐसा है, इसलिये कई बार उन्होंने चश्मा भी बदला, किन्तु उससे कुछ फायदा न हुआ। उल्टा अब ज्वर भी कुछ-कुछ रहने लगा। ज्वर ने भी जैसे ज़िद पकड़ी, किसी तरह छूटता नहीं। तो सोचा गया, यह मलेरिया है, फिर क्या था, जितने प्रकार से कुइनैन शरीर में ठूसा जा सकता है, ठूसा गया। इससे ज्वर न घटा तो डाक्टरों ने कहा यह रोग 'बी कोलाई' है। इसकी चिकित्सा हुई तो ज्वर अच्छा हो गया। शरत् बाबू अच्छे हो गये, और हवा बदलने के लिये देवघर गये। वहाँ से वे सम्पूर्ण रूप से स्वस्थ होकर लौटे।

श्रावण में फिर बीमार पड़े। अब की बार पेट ने तकलीफ दी, जो खाते वही हज़म नहीं होता ऐसी हालत हो गई। डाक्टरों ने कहा— डिस्पेप्सिया (अजीर्ण) रोग है। चिकित्सा होने लगी, किन्तु मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की। वे गाँव में चले गये कि शायद वहाँ अच्छे हों किन्तु वही हालत रही देखकर कलकत्ता लौट आये। डाक्टर विधानचन्द्र राय ने परीक्षा लेकर कहा कि शायद रोग kink है, एक्सरे किया जाय तो ठीक पता लगे। तदनुसार एक्सरे किया गया तो पता लगा यकृत में कैंसर हुआ है, और वह बढ़ते-बढ़ते

पाकस्थली तक पहुँच गया। डाक्टरों ने कहा, आपरेशन होना चाहिये।

वे आपरेशन कराने पर तैयार न हुए। किन्तु जब कष्ट बढ़ने लगा तो फिर कई बड़े डाक्टरों का परामर्श लिया गया, तो उन्होंने आपरेशन की सलाह दी। इसमें दिक्कत यह थी कि वे बहुत दुर्बल थे और आपरेशन बहुत कठिन था। यह ठीक हुआ कि किसी अच्छे नार्सिंग होम में रहें, और वहीं आपरेशन तब किया जाय जब उनका स्वास्थ्य कुछ सुधरे। तदनुसार वे डाक्टर मैके के नर्सिंग होम में दाखिल हुए, किंतु वहाँ अफीम तथा तम्बाकू की मुमानियत थी, देखकर वे अपने एक मित्र डाक्टर चटर्जी के नर्सिंग होम में चले गये। असल में डाक्टरों को उनके जीवन की कोई आशा नहीं थी।

धीरे-धीरे ऐसी हालत हुई कि मुँह से जो कुछ खाते, वह हज़म नहीं होता, रेक्टम फीडी याने मलद्वार के ज़रिये नल से पुष्टि पहुँचाने में शरत् बाबू ने आपत्ति की, तब डाक्टरों ने उनके पेट में एक आपरेशन किया इसलिये नहीं कि कैंसर को निकाल दें बल्कि इसलिये कि रबर के नल से सीधा उनके पेट में खाना पहुँचाया जाय। इसके बाद भी उनको फायदा न पहुँचा, तो डाक्टरों ने कहा दूसरे का रक्त उनके शरीर में पहुँचाया जाय। उनके छोटे भाई प्रकाशचन्द्र रक्त देने को तैयार हो गये। दो दिनों तक यह प्रक्रिया की गई, कुछ हालत सुधरती मालूम पड़ी, किन्तु यह 'बुझने के पहले जल उठना' था। उन्होंने १६ जनवरी को १० बजे अन्तिम साँस ली। ११ बजे उनको घर लाया गया। शाम को एक विराट भीड़ के साथ उनके शव को केवड़े-तल्ले में ले जाया गया और ५-४५ बजे के समय उनकी चिता में अग्नि स्पर्श करा दिया गया।

इस प्रकार ६१ साल से कुछ अधिक जीने के बाद वे मर गये। मरने के पहले उन्होंने कई बार कहा था "आमाके दाओ" "आमाके दाओ" याने 'मुझे दो' 'मुझे दो'। इस वाक्यखंड के बहुत से अर्थ

किये गये हैं जैसे वह इस महान् शिल्पी के सारे दर्शनशास्त्र का निचोड़ हो, भविष्य में भी शायद जब तक उनको पुस्तकें पढ़ी जायँ, इसके बहुत गूढ़ अर्थ निकाले जायँ, किन्तु शायद उन्होंने एक साधारण मूमुषु की तरह केवल पानी की एक बूँद माँगी हो, और इस प्रकार यह दर्शाया हो कि सब मानव एक हैं, मनुष्य चाहे उसमें जितना ही भेद पैदा करे।

उनके मरने के बाद सारे बंगाल में हाहाकार मच गया, जिन्होंने जीवन-काल में उनकी निन्दा की थी उन्होंने भी उनकी प्रतिभा का शतमुख होकर अभिनन्दन किया। रवीन्द्रनाथ ने लिखा—

जाहार अमर स्थान प्रेमेर आसने,
क्षति तार क्षति नय मृत्युर शासने।
देशेर माटिर थेके निलो जारे हरि,
देशेर हृदय तारे राखियाछे वरि।

"प्रेम के आसन में जिनका अमर स्थान है, मृत्यु के शासन में उन्हें खोना कोई खोना नहीं है। देश की मिट्टी से जो हर लिये गये, देश के हृदय ने उनको वरण कर रख छोड़ा है।"

सच बात तो यह है कि शरत् बाबू की तरह लेखक मरते नहीं, लेखों तथा रचनाओं के रूप में वे मृत्युहीन होकर रहते हैं।

— — — —

शरत्-साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि

किसी भी लेखक का सबसे बड़ा परिचय उसकी रचना है, इसी की बदौलत आनेवाली सन्तानों (posterity) की अदालत में अपने को सब से बड़ा कुलीन साबित कर सकता है। दुनिया में कालीदास, शेक्सपियर ही नहीं बहुत से ऐसे महान्, लेखक तथा कवि हुए हैं, जिनके सम्बन्ध में दुनिया या तो कुछ भी नहीं जानती या बहुत कम जानती है, किन्तु उनकी रचनायें जब तक मौजूद रहती हैं तब तक उनका नाम भी मौजूद रहता है। यदि एक लेखक बहुत उच्च कुल में उत्पन्न हुआ हो, याने ऐसे कुल में जिन्हें लोग उच्च कहते हैं, वह चाहे अलेक्ज़ेंडर की तरह किसी लुटेरे का कुल ही रहा हो, और उसका चरित्र भी बिलकुल उस काल के उस समाज के मानदंड से बिलकुल दूध का धुला हो जिसमें वह पैदा हुआ हो, किन्तु उसकी रचनायें निकृष्ट हों तो उस लेखक को दो कौड़ी का ही समझा जायगा। इसके विपरीत लेखक या कवि यदि घृणित से घृणित पापी हो, किन्तु उसकी रचना में वे गुण हों जो उसको प्रिय बनाते हैं, तो उसको अच्छा लेखक ही कहेंगे। हम कवि फ्राँसोया विलों (Francois Villom) को, जिसको लूई ग्यारहवें ने यह कहकर मृत्युदंड देने से इनकार किया कि 'मै फ्राँसोया विलों को मृत्युदंड नहीं दे सकता, फ्रांस में उसकी तरह बदमाश सैकड़ों होंगे, किन्तु उसकी तरह कवि एक नहीं" या पाल वारलेन (Paul Verlaine) को ही क्यों न लें जिसने मामूली अपराध में सजा पाकर जेल में सुन्दर से सुन्दर धार्मिक

कविता लिखी। हमारे भारतवर्ष के आदि कवि दस्यु थे, किन्तु कौन कह सकता है कि वे उत्कृष्ट कवि नहीं थे। इसलिये होना तो यह चाहिये कि कवि तथा औपन्यासिकों की जीवनी में मुख्यतः उनकी कला तथा रचनाओं की समालोचना की जाय तथा परिचय दिया जाय, किन्तु ऐसा न कर अक्सर केवल उनके जीवन की घटनाओं का ही वर्णन होता है। मैं इसको जीवनी लिखने का गलत तरीका समझता हूँ। पास्तूर एडिसन, केलविन, यार्कनि आदि की जीवनी लिखते समय उनके आविष्कारों का ज़िकर न करना, केवल उनकी शादियों तथा पुत्रों का ज़िकर करना जैसे हास्यास्पद होगा, वैसे ही किसी लेखक का परिचय देते समय उसकी रचनाओं का परिचय न देना बहुत ही ग़लत तथा हास्यास्पद होगा।

इसी के अनुसार हम यह उचित समझते हैं कि शरत् बाबू की रचनाओं का परिचय देना यहाँ आवश्यक है, किन्तु शरत् बाबू की रचना का परिमाण इतना है कि उनका संक्षिप्त परिचय देने के लिये भी एक पृथक ग्रन्थ की आवश्यकता पड़ेगी। इसलिये यहाँ हम सब रचनाओं का परिचय देने की चेष्टा नहीं करेंगे, हम केवल उनकी कुछ मुख्य रचनाओं का परिचय ही यहाँ करायेंगे और सो भी संक्षेप में। परिचय देने में हम एक विशेष प्रक्रिया का अनुसरण करेंगे। पहले पाठक के सामने उपन्यास की कथा का सार रख देंगे, फिर उस पर आलोचना करेंगे। ऐसा करने के पूर्व हम पाठक को एक बार अच्छी तरह इस बात को याद दिला देंगे कि कहानी के सार से उपन्यास पर कोई मन्तव्य स्थिर करना एक अधूरी चेष्टा होगी, तथा ऐसा करने में लेखक के साथ अन्याय होगा, क्योंकि एक बड़े औपन्यासिक की कला सिर्फ इस बात में नहीं है कि वह एक विशेष कहानी का तानाबाना कैसे बनाता है, बल्कि चरित्रों को वह किस प्रकार विकसित करता है, तथा घटना तथा व्यक्तियों की एक दूसरे पर क्या प्रतिक्रिया होती है, इसको वह किस प्रकार दिखलाता है इसी में उसकी कला का

सूक्ष्म परिचय है। कहना न होगा कि जो गल्प या उपन्यास का सार हम पेश करने जा रहे हैं उनमें इन बातों को यथार्थ रूप से प्रतिफलित करना असम्भव है। चार्लस तथा मेरी लैंब ने शेक्सपियर के नाटकों का जो संक्षिप्त सार लिखा है, उससे कोई शेक्सपियर के नाटक की कहानियों के बारे में कुछ मोटी धारणा भले ही पाले, किन्तु उनकी कविता के बारे में कोई सही धारणा प्राप्त करना कठिन ही नहीं असंभव है।

हम पहले 'चरित्रहीन' से ही शुरू करेंगे, क्योंकि इसी पुस्तक के कारण उनको सबसे अधिक गालियाँ मिली हैं तथा उनके उपन्यासों में यह सबसे बड़ा है।

चरित्रहीन

पश्चिम के एक बड़े शहर में परमहन्स रामकृष्ण के चेला किसी सत्कार्य के लिये चन्दा माँगने आये हैं, उनकी सभा में उपेन्द्र ने बिना यह पूछे कि यह कथित सत्कार्य है क्या, सभापतित्व करना स्वीकार कर लिया। जो लोग इस सभा के उद्योक्ता थे उन्होंने सतीश को भी इस सभा में उपस्थित होने को कहा, किन्तु उसने साफ कह दिया कि उस समय वह उपस्थित नहीं हो सकता क्योंकि उस समय उनका पूरा रिहर्सल होने वाला है। इस पर उद्योक्ताओं ने उसकी हँसी उड़ाई, तो उसने कहा, "आप कुछ न जानकर भी एक अनुष्ठान को सुन्दर तथा सही मान रहे हैं, किन्तु रिहर्सल में कितना अच्छा कितना बुरा है मैं जानता हूँ, इसलिये उसे छोड़कर एक अनिश्चित सत्कार्य में नहीं कूद सकता।" इत्यादि। इसी रूप में सतीश पहले सामने आता है।

तीन महीने बाद कलकत्ते के एक मेस में सतीश को हम फिर देखते हैं, वह यहीं रहता है और होम्योपैथी पढ़ता है, याने समझता है कि पढ़ता है। उस मेस की नौकरनी सावित्री बड़ी अच्छी व्यवस्था

करने वाली है, मेस के सब लोग उससे खुश हैं। वह साथ ही सुन्दरी है, किन्तु मेस की नौकरानियों की तरह नहीं है। स्पष्ट है कि सतीश पर वह विशेष देख-भाल करती है, यद्यपि किसी दूसरे को देख-भाल करने में भी वह त्रुटि नहीं करती। वह सतीश को क्यों सभी की विश्वास-पात्री है, सब लोग मजे में उसे अपने-अपने कमरे की चाभी दे जाते हैं, सतीश तो कैशबाक्स की चाभी भी उसी के पास रखता है। सतीश अक्सर होम्योपैथी के स्कूल में जाना नहीं चाहता, किन्तु सावित्री उसे एक बच्चे की तरह समझा-बुझाकर स्कूल भेजती है। सतीश का जीवन इस प्रकार स्वच्छ सरल तरीके से चलता है। एक दिन सावित्री कहती है, "मैं विपिन बाबू के यहाँ नौकरी करने जा रही हूँ" इस पर सतीश बहुत नाराज़ हो जाता है, यहाँ तक कि उसे जाकर पीटने के लिये तैयार हो जाता है। विपिन एक दुश्चरित्र किन्तु धनी युवक है। सावित्री जब बताती है वह कहीं नहीं जायगी, चाहे तनख्वाह उसे वहाँ अधिक मिलने वाली ही हो, तब सतीश शान्त होता है। इनमें छोटे-छोटे झगड़े बहुत होते हैं, किन्तु शान्त हो जाते हैं, फिर भी ऐसी हालत में जैसी घनिष्टता होने की उम्मीद की जाती है। उनमें बराबर एक "यहाँ तक, इसके आगे नहीं" का व्यवधान बना रहता है। सतीश तो कभी-कभी गलता जा रहा है ऐसा मालूम होता है, किन्तु सावित्री बहुत पास आती हुई मालूम होते हुए भी हट जाती है।

एक दिन सतीश पूछ बैठता है "सावित्री तुम्हारी बातचीत तो अशिक्षिता स्त्री की तरह नहीं है, तुम तो बहुत पढ़ी-लिखी मालूम होती हो।" सावित्री खिलखिला कर हँस पड़ती है, वह पूछती है—"बहुत कितनी ?" इतने में हल्ला करते हुए विपिन के अपने दलबल सहित उसके पास आने की आहट मालूम देती है, सतीश कुछ न सोचकर जलते हुए सरसों के तेल के दिये बुझा देता है। सावित्री कहती है "यह आपने क्या किया ?" किन्तु इतने में दोस्त लोग आ जाते हैं। उनमें से एक ने दियासलाई जलाकर देखा तो पहले ही सावित्री

दिखायी पड़ी, सावित्री का तो ऐसा हाल हुआ कि काटो तो लहू नहीं, वह फौरन निकल गई, किन्तु ये लोग जो शराब पिये हुए थे बड़े जोर से ठहाका मारकर हँसने लगे, फिर वे सतीश को पकड़ ले गये। वहाँ से सतीश शराब पीकर लौटा तो मेस के पास लड़खड़ा कर गिर पड़ा। सावित्री को इसकी आशंका थी, वह जग रही थी। वह उसे वहाँ से उठा लाई, उसके जहाँ-जहाँ छिल गया था उसको धो दिया, फिर बोली "आप कहाँ गिर पड़े ?" सतीश ने कहा "कहीं नहीं गिरा।" सावित्री रोती हुई बोली, "अब अगर किसी दिन आपने शराब पिया तो मैं आपके पैरों में सिर टकराकर जान दे दूँगी।" सतीश ने कहा—"नहीं, कभी नहीं पीऊँगा।" सावित्री ने कहा, "मेरा हाथ छूकर प्रतिज्ञा कीजिये।" सतीश ने ऐसा ही किया। सावित्री ने हाथ खींचकर कहा "याद रहे आपने प्रतिज्ञा की।" सतीश ने कहा, "यदि याद न रहे तो याद करा देना।" सावित्री अपने ठीये पर सोने चली गई, किन्तु शुक्रतारे को सामने टिमटिमाता हुआ देखकर उसने कहा, "देवता, तुम इस बात के साक्षी हो।"

अब हम उपेन्द्र को देखते हैं। दिवाकर उसका किसी तरह का भाई है, उसी के यहाँ रहता है, इस समय बी० ए० का छात्र है। सुरबाला उपेन्द्र की स्त्री है, बड़ी प्रेमशीला। सुरबाला के पिता धनी हैं, उन्होंने एक पत्र लिखा जिसमें लिखा है कि सुरबाला की बहिन शची के लिये उपेन्द्र कोई वर ठीक करे। उपेन्द्र कहता है "तुम्हारे पिता धनी हैं, उनकी कन्या के लिये वर की कमी न होगी।" सुरबाला कहती है, "यह कोई बात नहीं, क्या तुमने मेरे पिता के रुपये देखकर मुझसे शादी की ?" उपेन्द्र ने कहा "यदि मैं इस पर ना कहूँ तो मेरी इज्जत तो रह जायगी पर वह सत्य नहीं होगा।" इस पर सुरबाला कहती है "सत्य यह नहीं, सत्य यह है कि जहाँ कहीं भी मैं पैदा होती तहाँ तुम्हें मुझसे ब्याह करने जाना पड़ता।" उपेन्द्र ने कहा "मान लो तुम किसी कायस्थ के घर पैदा होती, तो ?" सुरबाला

ने तर्क करने के लिये नहीं ध्रुव विश्वास के साथ कहा "वाह रे यह कहीं हो सकता है, ब्राह्मण की लड़की होकर कायस्थ के घर कैसे पैदा होती!" यही सुरबाला है, पति में उसका अटल विश्वास है। मियाँ-बीबी में यह तय हुआ कि शची के विवाह के लिये वे दिवाकर को चुनते हैं ऐसा लिख दिया जाय।

सतीश शराब के नशे से छुटकारा पाकर दस बजे उठता है तो पानी माँगता है, इसपर सावित्री कहती है "आप बिना गायत्री जप किये कभी पानी भी पीते हैं कि आज ही पीजियेगा।" प्रतिवाद करना बेकार है समझकर सतीश रोज़ की तरह पूजा करता है। सतीश को धीरे-धीरे एक दिन मालूम होता है कि सावित्री रोज़ नियमित सन्ध्या-गायत्री करती है, एकादशी के दिन पानी भी नहीं पीती, मछली नहीं खाती, दिन में केवल एक बार खाती है जैसे बंगाली विधवायें करती हैं।

सतीश कलकत्ते की सड़कों पर फिर रहा था, उससे मोक्षदा नाम की एक पुरानी बुढ़िया नौकरनी से भेंट हो गई। मोक्षदा कई दिन से एक चिट्ठी पढ़ाने के फिक्र में घूम रही थी, यह चिट्ठी कुछ इसी किस्म की थी कि उसे वह जिससे-तिससे पढ़ाना नहीं चाहती थी। वह चिट्ठी उसके घर में थी, इसलिये वह सतीश को साथ लेकर घर गई, सतीश न मालूम क्या सोचकर राजी हो गया। मोक्षदा का कमरा ऐसा नहीं था जिसमें वह सतीश के ऐसे धनी को बैठाने की हिम्मत करती, इसलिये उसने अपनी एक पड़ोसिन नौकरनी का कमरा खोलकर बैठाया। चिट्ठी पढ़ी गई, कमरा बहुत पवित्र तथा साफ था, सतीश ने एक पुस्तक भी देखी जिस पर भुवनचन्द्र मुखोपाध्याय का नाम था। इतने में सावित्री आई, यह उसी का कमरा था। मोक्षदा ने कहा यह बाबू कैसे यहाँ आये। सावित्री ने यह नहीं बताया कि वह सतीश को जानती है, उसने मोक्षदा की बातें सुन लीं, फिर पूछा—"यह तो हुआ मौसी, किन्तु बाबूजी ने चरणरज आपके यहाँ

डालने के बजाय मेरे यहाँ क्यों डली ?" मौसी कुढ़कर बोली, "यह तो तेरा सौभाग्य है, ये कैसे पाये के लोग हैं तू क्या जाने।" सावित्री ने कहा "तो अच्छी बात है" फिर सतीश की ओर मुँह फेरकर बोली, "पंडितजी, आपको कुछ जलपान तो कराना चाहिए, आप यदि आये ही हैं तो कुछ जलपान करें नहीं तो बड़ा पाप होगा। आपको भूख तो अवश्य लगी होगी।" इस तरह परिहास में शुरू होकर बातचीत सावित्री की ओर से पहले भावुकतापूर्ण उच्छ्वास फिर अप्रियता में खतम हुई। सतीश खा-पीकर लौट गया, किन्तु सावित्री क़रीब आकर भी क़रीब नहीं आई। सतीश यह समझ नहीं पाता था कि सावित्री क्यों इस प्रकार पास बुलाती है, और पास आने पर निष्ठुर आघात देकर दूर हटा देती है। उसको तो इन बातों से यह सन्देह उत्पन्न हो गया कि कहीं सावित्री पागल तो नहीं है।

सतीश ने इस लुकाछिपी से परेशान होकर उसी दिन मेस छोड़ देना निश्चय किया, किन्तु उसका सामान बँधकर जब तैयार हुआ, और वह हिसाब चुकाने गया तो वहाँ पता लगा सावित्री आज आई ही नहीं। मेस के सब लोग सतीश के इस प्रकार चले जाने और सावित्री के न आने का एक ही माने लगा रहे थे, और ऐसा ही उन्होंने उससे साफ-साफ कहा। सतीश चला गया, क्या करता, सफाई देना व्यर्थ था; किन्तु उसने बूढ़े नौकर बिहारी को उसकी तलाश में भेजा।

जिस दिन बिहारी पहुँचा उस दिन सावित्री के मकान में कुछ अजीब हालत थी। सावित्री ने लौटकर देखा कि मकान भर में कच्चे प्याज़ के छिलके पड़े हैं, मोक्षदा मौसी के मुँह से शराब की बू आ रही है, और उसके कपड़े भी अजीब तरीके से विपर्यस्त हैं। उसने मोक्षदा से पूछा यह क्या, तो वह गरजकर बोली, "बाबू ने नक़द बीस दिये तब मैंने बोतल को छूआ है, वह तुम्हारे कमरे में बैठे हैं।" सावित्री का दिल धक् से हुआ, वह कौन ? सतीश ! वह डरते-डरते अपने कमरे में गई तो वहाँ विपिन बाबू उसके बिस्तरे पर

गाढ़ी नींद में पड़े हुए थे। वह आश्चर्य, भय तथा आशा-भंग से विपिन को देख रही थी। ठीक इसी समय सतीश का भेजा हुआ बिहारी आया, उसने देखा विपिन उसके बिछौने पर लेटा है, और सावित्री अपलक नयनों से उसे देख रही है। उसने न कुछ पूछा न ठहरा, सतीश को जाकर कह दिया कि सावित्री का कोई पता नहीं। उसने पूछा, "मौसी से पूछा वह कहाँ गई?" उसने कहा, "मौसी नहीं जानती, वह वहाँ आती ही नहीं।" सतीश उसी दिन कलकत्ता छोड़कर चला गया।

सतीश कलकत्ते से चला तो आया, किन्तु उपेन्द्र के एक मित्र कलकत्ते में बहुत सख्त बीमार होने के कारण उपेन्द्र जब कलकत्ता जाने को तैयार हुए, तो सतीश को भी साथ कर लिया। हावड़ा स्टेशन पर उपेन्द्र के एक मित्र बैरिस्टर ज्योतिष राय आकर उन लोगों को अपने घर लिवा गये। सन्ध्या समय सतीश और उपेन्द्र अँधेरी गलियों को पारकर एक सीले हुए मकान के अन्दर घुसे। वहाँ एक अत्यन्त सुन्दरी स्त्री उनको रास्ता दिखाकर रोगी हारान बाबू के पास ले गयी। इस स्त्री के अतुलनीय रूप तथा हँसमुख चेहरे के साथ उसके मृत्युशय्या पर शायित पति का कोई जैसे सामंजस्य नहीं था। यही स्त्री किरणमयी है। हारान ने उपेन्द्र से कहा—"मेरा दो हज़ार रुपये का बीमा है, और यह टूटा मकान है, ऐसी लिखा-पढ़ी कर लो कि तुमको सब मिले। मेरे मरने के बाद तुम रहे और मेरी बुढ़िया माँ।" याद दिलाए जाने पर उसने कहा—हाँ मेरी स्त्री, उसका कोई नहीं है, उसको भी देखना।"

मकान से निकलते समय किरणमयी ने इसका पता पा लिया। उसने उपेन्द्र से पूछा कि क्या यह उपेन्द्र के लिए उचित होगा कि पति की सारी जायदाद की मालिक स्त्री न होकर वे ही हों। उपेन्द्र निरुत्तर हो गये, किन्तु सतीश ने कहा,—"बहूजी, यदि आपने ही स्त्री के अधिकार गँवा न दिये होते तो आज यह दिन ही काहे को आता?

किरणमयी का चेहरा फक् पड़ गया, उसने पूछा—"उन्होंने मेरे विषय में क्या कहा है ज़रा सुनें।" किन्तु हारान ने किरणमयी के विषय में कुछ नहीं कहा था, यह केवल सतीश का एक अँधेरे में ढेला था।

ज्योतिष राय की बहिन कुमारी सरोजिनी सतीश के गाने, शारीरिक ताक़त तथा साहस आदि से बहुत प्रभावित हुई। इधर सतीश तथा उपेन्द्र के जाने के बाद डाक्टर साहब आये, नौकरनी ने किरणमयी से कहा; किन्तु आज वह बोली, "उसको जाने क्यों नहीं कहती, उसकी दवा यहाँ कोई पीता तो है नहीं।" नौकरनी समझ न पाई कि मामला क्या है, कौन सी बात इस बीच में हो गई जो डाक्टर का आना ही अनावश्यक हो गया। डाक्टर ने नौकरनी से बात सुन ली किन्तु वह स्वयं ही किरण के पास आ धमका। किरणमयी बोली—"जाओ न।" वह बोला, "जाना तो मैं जानता हूँ।" अन्त में डाक्टर गया, किन्तु किरण ने पुकारकर कहा—"सुन जाओ, यही आखिरी जाना है।" किरणमयी इसका कारण बताने जा रही थी, इतने में उपेन्द्र और सतीश आये। बात वहीं रह गई। उपेन्द्र और सतीश ने देखा डाक्टर चोर की तरह निकल गया।

कलकत्ता आकर सतीश को अपने बूढ़े नौकर बिहारी के ज़रिये सावित्री का हाल-चाल मालूम करने की धुन सवार हुई, तब बिहारी ने थोड़ा बढ़ाकर बताया कि वह विपिन के साथ चली गई। यह बात सुनकर सतीश को बुरा मालूम हुआ कि वह घूमने निकल गया। ज्योतिष बाबू के घर में सब लोग सतीश का ही इन्तज़ार कर रहे थे कि वह आकर गावे, किन्तु जब वह नहीं आया तो सरोजिनी से विवाह के इच्छुक नये बैरिस्टर शशांक ने सरोजिनी को ही गाने के लिए कहा। सरोजिनी ने शशांक को निराश किया।

किरणमयी के साथ उपेन्द्र की जो कुछ घनिष्टता हुई उससे उसके मन में उसके प्रति वह जो भय कि पति की सम्पत्ति से उसे

वंचित करने के लिए वे आते-जाते हैं यह दूर हो गया, बल्कि कुछ श्रद्धा ही बढ़ी। एक दिन डाक्टर फिर आ धमका, किरण से बोला—"तुम लोगों की ज़रूरत चाहे खतम हो गई हो, मेरी जरूरत अभी ख़तम नहीं हुई। इसी बात को कहने के लिये मैं आया हूँ।" किरण बोली, "आप क्या चाहते हैं? रुपये?" डाक्टर बोला, "यह आप क्यों कहती हैं किरण? इतने दिन मैंने क्या माँगा था, रुपये?" फिर वह बोला, "रुपया नहीं चाहता यह नहीं कह सकता, जब तुम्हारा वह अभाव नहीं रहा तो लाओ रुपये ही दे दो, मैं दोनो तरफ से ठगा जाना पसन्द न करूँगा।" किरण उठकर चली गई, और लाकर सब गहने डाक्टर को दे दिये, "यह लीजिये!" डाक्टर ने लेने से इनकार किया, कुछ कहना चाहा, लेकिन किरण ने एक न सुना। उसे सब गहना लेना पड़ा। लेते हुए भी डाक्टर ने कहा, "यह सब मैंने नहीं दिया था" किन्तु बात ख़तम होने के पहले ही किरणमयी ने किवाड़ा बन्द कर उसे जाने को मजबूर किया।

उपेन्द्र बीच में ही दो दिन के लिये घर चले गये, इसके बाद जब वे आने लगे तो पत्नी सुरबाला उनके साथ चली। दिवाकर भी चला क्योंकि वह बी० ए० में फेल हो गया था, उपेन्द्र ने कहा कलकत्ते में रहकर वह पढ़े। सतीश को तार दिया गया था, वह स्टेशन में जाकर सबको अपने मकान में लिवा लाया, किंतु सावित्री को सतीश के कमरे में बैठी देखकर उपेन्द्र उलटे पाँव लौटे, और सुरबाला तथा दिवाकर को ले जाकर वे मित्र ज्योतिष राय के यहाँ उतरे। सावित्री के वहाँ होने का पता सतीश को न था, अभी थोड़ी देर पहले उससे बिहारी से भेंट हुई थी। बिहारी को उसने बताया कि विपिनवाली बात झूठी है। बिहारी ने बताया था सतीश उसके बारे में क्या जानता है फिर भी उसने सतीश के सामने प्रकट न होना ही अच्छा समझा। वह बिहारी से कुछ रुपये लेकर काशी जा रही थी, उपेन्द्र जिस समय आये उस

समय वह यही सोचकर सतीश के कमरे में बैठी थी कि सतीश गहरी रात गये आयेगा। तब तक वह चली जायगी।

उपेन्द्र तो चले गये, किंतु सतीश वहीं खड़ा रहा। उसने कहा, "तुम ? इस मकान में ?" सावित्री समझ गई इशारा विपिन की ओर है, किंतु फिर भी सच नहीं बोली, क्योंकि उसने बिहारी से वादा किया था कि सतीश को वह असली बात नहीं बतायेगी ताकि बिहारी पर बाबू नाराज़ न हों। सतीश ने उसके चरित्र पर लांछन लगाये, कहा— "बस तुम लोग रुपये ही पहचानती हो" इत्यादि, फिर वह चली गई। सतीश फिर शराब पीने लगा।

उपेन्द्र जो जरा सा अपराध की गंध पाते ही सतीश के साथ पुरानी मित्रता का ख़याल न कर एकदम उसका घर छोड़ कर चले गये, इस पर सतीश को बड़ा क्रोध आया। उपेन्द्र के यहाँ तो जाना व्यर्थ था, वे अवश्य ही उसे दुतकारेंगे इसका उसे पूर्ण विश्वास था। हारान बाबू के घर में अगले दिन घुसते हुए उसने सोचा, कहीं उपेन्द्र ने वहाँ का दरवाजा भी उसके लिये बन्द न कर दिया हो ? इतने में नौकरनी ने उसे बुलाया तो जान में जान आई, किंतु किरणमयी के सामने रसोईघर में उपस्थित होते ही किरण ने जब अनायास ही उससे पूछा—"क्यों देवरजी, कल रात को नींद नहीं आई क्या, चेहरा बैठा हुआ है।" सतीश ने आव देखा न ताव, उसने समझा उपेन्द्र ने नमकमिर्च के साथ कल की बात बतलाई है, वह फुफकार कर बोल उठा, "जी हाँ, कल रातभर उसके साथ गुलछर्रे उड़ा रहा था, यही तो उस हरामजादे ने कहा है..." इत्यादि। किरण आश्चर्य में पड़ गई, उसको तो किसी ने कुछ भी न कहा था; किंतु सतीश की गालियाँ बंद नहीं हुईं। उपेन्द्र शोर सुनकर आ गया, सतीश चला गया। किरणमयी ने बाद को सतीश को उपेन्द्र के जरिये से ही बुलाना चाहा, उपेन्द्र ने कहा—आदमी भेज दूँगा।

सरोजिनी गाड़ी पर सतीश के घर की ओर से जा रही थी, उपेन्द्र ने सतीश को इस बात की खबर देते हुए एक दो पंक्ति का पत्र सरोजिनी के हाथ दिया। सरोजिनी को बड़ा आश्चर्य हुआ सतीश अभी यहीं है। सरोजिनी सतीश के घर गई, तो वहाँ सतीश नहीं था। सरोजिनी ने इसी मौक़े से सतीश का घर देख लेना चाहा, तो वहाँ साड़ी सूखती मालूम पड़ी। उसने कौतूहलवश रसोइये से पूछा, "साड़ी किसकी है?" तो उसने कहा, "यह माजी की है।" रसोइये ब्राह्मण ने सावित्री के विषय में, जहाँ तक वह जानता था बतलाया, यहाँ तक कि उपेन्द्र का सुरबाला को लेकर लौट जाना तथा ज्योतिष बाबू के घर जाने की बात उसे ज्ञात हुई।

हारान मर गया। यह तय हुआ कि किरणमयी के पास रहकर दिवाकर कलकत्ते में पढ़ेगा। दिवाकर और किरणमयी में जो बातचीत यहाँ से शुरू होती है, वह geistreich विचारशील बातचीत का एक आदर्श है। एक दिन जब की दिवाकर घूमने गया था उपेन्द्र आया। किरणमयी ताजी पूड़ियाँ निकाल कर देने लगी, और बात करने लगी। यह बातचीत भी साहित्य में एक ही चीज़ है। वह कहती है, य"अन्धादि गड्ढे में गिरे तो उसे सब लोग दौड़ कर उठाते हैं, किन्तु कोई यदि प्रेम में अन्धा होकर गड्ढे में गिर पड़े तो सब उसे और ढकेलकर, मिट्टी डालकर, तोप देते हैं" इत्यादि। चलते-चलते पति हारान पर बात चलती है, वह कहती है, "मैंने उनसे कभी प्रेम न किया। न उन्होंने कभी मुझे प्यार किया, न मैंने कभी उन्हें किया। लड़कपन में मेरी शादी हुई। पति विद्वान् थे; वे मुझे पढ़ाया करते थे, इसमें वे सफल भी हुए। मैंने बहुत पुस्तकें उनसे पढ़ीं, किन्तु मैं उनकी प्रेयसी या स्त्री न हुई। पति पड़े बीमार, महीनों पड़े रहे। ऐसे समय में डाक्टर आये, मेरा दिल प्रेम का भूखा था, जो भी उसने दिया वह प्रेम नहीं हलाहल था किन्तु मैंने उसे आकंठ पिया। असली न सही, नकली ही सही मैंने उसे अपनाया। मैं हलाहल पीती ही जाती, किन्तु

ऐसे समय अमृत का पता मुझे लगा।" किरण ने साफ करके कहा, उपेन्द्र ही यह अमृत है। उपेन्द्र ने सुन लिया, किन्तु चला गया। दिवाकर रह गया।

सतीश अब जाकर मानसिक स्वास्थ्य सुधारने के लिये एक जंगली जगह में नौकर तथा रसोइये के साथ रहता था। इसीके पास एक बाबुओं के स्वास्थ्य सुधारने की जगह थी। इस जगह में सरोजिनी आई थी, वह गाड़ी पर एक दिन न मालूम रास्ता भूल गई या क्या हुआ, उसी के घर पर गुण्डों द्वारा घेर ली गई, सतीश ने शोर सुनकर उसे बचाया और उसे अपने घर पर ले आया, वहाँ से उसका भाई उसे आकर ले गया। इसी बीच में उन दोनों की घनिष्टता पहले से बढ़ गई।

उधर दिवाकर कलकत्ते में रहकर किरणमयी की देख-रेख में बी० ए० पढ़ने लगा। उसने एक गल्प लिखा "ज़हर की छुरी"। किरणमयी पढ़कर हँसी, बोली, "देवरजी, तुम किसी से प्रेम करते हो?" "मैं!" कहकर दिवाकर आश्चर्य में पड़ गया। किरण बोली, "यदि तुम प्रेम नहीं करते तो प्रेम के अनुभव तुमने कैसे लिखे, कहीं तुम छिपकर मुझसे तो प्रेम नहीं करते?" किरण ने कहा, "यदि प्रेम नहीं करते तो यह लिखना तुम्हारा व्यर्थ है, क्योंकि यह अनुकरण ही है।" इस प्रकार किरणमयी अपनी श्रेष्ठ बुद्धि के कारण दिवाकर को लेकर खेलने लगी, दिवाकर उसकी बुद्धि तथा रूप से तिलमिलाया जाकर अजीब परेशानी में रहने लगा।

उपेन्द्र घूमने कलकत्ता आया, तो दिवाकर कैसा पढ़-सुन रहा है, देखना चाहा, तो मालूम हुआ कि कालेज खुलने पर भी अभी वह कालेज में भर्ती नहीं हुआ। किरण की सास अघोरमयी ने उपेन्द्र से कहा—"पढ़े भी क्या; उसको तो दिनभर बहू से छुट्टी ही नहीं मिलती।" उपेन्द्र ने इसका जो अर्थ लगाया वह उसने खाते समय

किरण से कहा—"तुम्हारा छूआ खाने को जी नहीं चाहता।" उपेन्द्र ने तय किया दिवाकर लौट चलेगा, किंतु रात ही में दिवाकर को फुसला कर किरणमयी बर्मा भाग गई।

बर्मा में वे रहने लगे, किंतु दिवाकर अपने से लड़ते-लड़ते इतना थक गया कि वह अब किरणमयी के लिये ख़तरनाक हो गया। किरण उससे प्रेम नहीं करती थी, केवल उपेन्द्र को जिससे वह सचमुच प्रेम करती थी दुःख देने तथा उससे बदला लेने के लिये वह बर्मा भाग गई थी; किंतु जब उसने दिवाकर को इस प्रकार ख़तरनाक होते देखा, तो वह उससे लड़ पड़ी और वे अलग-अलग रहने लगे।

इधर सतीश से सरोजिनी के घराने के लोगों की घनिष्ठता बढ़ी, किंतु शशांक ने, जो सरोजिनी के साथ विवाह करने का इच्छुक था, एक दिन वहाँ आकर कह दिया कि सतीश तो सावित्री नाम की एक दासी के साथ रहता था। सतीश को ज्योतिष ने पूछा, 'सावित्री से उसका क्या सम्बन्ध है ?' तो उसने कुछ सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया, और उन लोगों से मिलना छोड़ दिया।

सतीश एक तान्त्रिक बाबाजी के पल्ले में पड़कर शराब में डूबकर 'साधना' में लवलीन हो गया। नौकर बिहारी बाबू का यह हाल देखकर बहुत डरा, तो वह बनारस जाकर सावित्री को बुला लाया। सवित्री ने आकर बाबाजी को तुरन्त भगा दिया। सतीश बीमार पड़ा, सावित्री सेवा करने लगी, फिर उसने एक पत्र उपेन्द्र को लिखा।

उपेन्द्र को यह पत्र पुरी में मिला, जहाँ वे सुरबाला की मृत्यु के बाद स्वास्थ्य सुधारने एक होटल में थे। इस होटल में रहते समय उन्हें सावित्री के पूरे इतिहास का पता मिला। वह इतिहास यह था कि सावित्री कुलीन ब्राह्मण की लड़की है, नौ साल में विधवा हुई, यही होटलवाला उसे भगा लाया था, किंतु उसको अपने प्रण से डिगाने में असमर्थ रहकर उसने पीछा छोड़ दिया। उपेन्द्र को जब यह हाल मालूम

हुआ तो वे बहुत पछताने लगे, इसलिये सावित्री का पत्र उन्हें मिलते ही वे कलकत्ता के लिये रवाना हुए। वहाँ वे ज्योतिष के घर ठहरे। सरोजिनी सतीश की बीमारी की बात सुनकर उपेन्द्र के साथ सतीश के घर चल दी। वहाँ उपेन्द्र ने सावित्री से कहा, "बहिन, हमें तुम्हारी ज़रूरत है, इन लोगों को रहने दो" कहकर उसने सरोजिनी को दिखला दिया। सावित्री उपेन्द्र के साथ चली गई।

सतीश बर्मा जाकर दिवाकर तथा किरणमयी को ले आया। उपेन्द्र मृत्युशय्या पर था। किरणमयी पागल हो गई। वह उपेन्द्र के पास आकर बोली, "सुरबाला मर गई यह सुनकर मेरे दुःख की कोई सीमा नहीं रही! वही तो मेरी गुरुआईन थी, उसी ने तो मुझसे कहा था ईश्वर है। हाय! तब यदि मैं इस बात को विश्वास करती।" अकस्मात् उसकी आँखें दिवाकर की ओर गईं तो उसके गिरे हुए चेहरे की ओर देखकर उसने कहा, "भाई, तुम क्यों ऐसी नीची निगाह किये हुए खड़े हो, तुम्हें क्या यह लोग लज्जा दे रहे हैं?" कहकर उपेन्द्र की ओर देखकर उसने कहा, "उसको कोई दुःख न हो देवरजी, वह किसी के मुकाबले में बुरा नहीं। हमारे हाथ में तुमने उसको जिस तरह सौंपा था, मैं उसे उसी प्रकार लौटा रही हूँ। इस सत्य की मैंने प्राणों से भी रक्षा की।"

उपेन्द्र मरते समय सावित्री से बोले—"अधिक बात मैं नहीं कह सकता, मैं एक तरफ तो तुम्हारे हाथों में सतीश और दिवाकर को, दूसरी ओर किरणमयी और सरोजिनी को सौंपता हूँ" फिर सतीश तथा दिवाकर को सम्बोधित कर कहने लगे, "मैं सावित्री के भीतर जीऊँगा, इसका अपमान न करना।"

उपेन्द्र मर गये।

यही "चरित्रहीन" उपन्यास का सार है। इस पुस्तक के लिये शरत् बाबू पर लोग बेतरह नाराज़ क्यों हुए, यह स्पष्ट नहीं है। शरत् बाबू

ने न तो इस पुस्तक में पाप की जय ही दिखलाई न पुण्य की पराजय। शरत् बाबू ने अपनी एक पत्र-लेखिका को उत्तर देते हुए अपने सम्बन्ध में कहा था, "समाज-संस्कार की कोई भी दुरभिसन्धि मुझमें नहीं है, इसलिये मेरी पुस्तकों में मनुष्य के दुखदर्दों का विवरण है, शायद समस्यायें भी हैं, किन्तु समाधान नहीं है। यह काम दूसरों का है, मैं तो केवल गल्प-लेखक हूँ, इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं।" "समाज नामक वस्तु को मैं मानता हूँ, किन्तु देवता करके नहीं। पुरुष तथा स्त्रियों के बहुत दिनो की पुंजीभूत मिथ्या, अनेकों कुसंस्कार तथा उपद्रव इसमें सम्मिलित हैं। हमारे खान-पान तथा रहन-सहन में इसका शासन दंड-विशेष सतर्क नहीं हैं, किन्तु नरनारी के प्रेम के मामले में इसकी निर्दय मूर्ति दिखाई दे जाती है। मनुष्य को सामाजिक उत्पीड़न सब से अधिक इसी क्षेत्र में सहना पड़ता है। मनुष्य सब से ज़्यादा इससे ही डरता है, इसकी अधीनता तो उसे इस क्षेत्र में माननी ही पड़ती है। सदियों का यह पुंजीभूत भय अन्त में जाकर बाक़ायदा विधान का रूप धारण कर लेता है, समाज इससे छुटकारा किसी को देना नहीं चाहता। पुरुष के लिये उतनी कठिनाइयाँ नहीं हैं, उसके लिये धोखा देने का रास्ता खुला हुआ है, किन्तु जिसके लिये किसी भी तरह छुटकारे का रास्ता खुला नहीं है वह है स्त्री। एकनिष्ठ प्रेम की मर्यादा को इस युग का साहित्यिक भी मानता है, इसके प्रति उसकी श्रद्धा तथा सन्मान की कोई सीमा नहीं है, किन्तु जिस बात को वह सह नहीं सकता वह है उसके नाम से धोखा। उसे ऐसा प्रतीत होता है इसी धोखे के रास्ते से ही भविष्य सन्तानों की आत्मा में असत्य संक्रामित होता है, और इसी के फलस्वरूप वे कायर, ढोंगी, निष्ठुर होकर पैदा ही होते हैं। सुविधा तथा प्रयोजन के तकाज़े को मानकर कदाचित् लोग अनेकों असत्य को सत्य करके चलाते हैं, किन्तु केवल इसी बहाने से जाति के साहित्य को कलुषित करने की तरह पाप बहुत कम है। सामयिक

ज़रूरत चाहे कुछ भी हो साहित्य को इस संकुचित दायरे से मुक्ति देनी पड़ेगी।"

शरत् बाबू की उपरोक्त उक्ति से उनकी कला बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है। हमने बहुत ही बेढंगे तरीक़े से "चरित्रहीन" उपन्यास का जो संक्षिप्त सार पाठक के सामने पेश किया है, उसी से यह ज़ाहिर हो जाता है कि शरत् बाबू ने समाज-संस्कार की कोई चेष्टा नहीं की, नहीं तो सतीश और सावित्री में विवाह न करवाकर वे सरोजिनी को बीच में लाकर सतीश से शादी नहीं करवाते। सावित्री बालविधवा है, किन्तु इसमें कोई शक नहीं कि वह सतीश को उतने ही गम्भीर रूप से प्रेम करती है जितना कि कोई स्त्री किसी पुरुष से कर सकती है। फिर भी "चरित्रहीन" के उपसंहार में इन दोनों का मिलन न होकर सरोजिनी के रूप में इन दोनों में चिरकाल के लिये एक दुर्लंघ्य व्यवधान की सृष्टि होती है। किरणमयी ज़रूर सामाजिक नियमों से व्यभिचारिणी है, क्योंकि उसने पति के रोग के समय डाक्टर से पति-पत्नी का सम्बन्ध क़ायम किया, इसके बाद वह खेल में ही सही, एक परपुरुष दिवाकर के साथ भाग गई, तथा मन में उसने परपुरुष उपेन्द्र से प्रेम किया, केवल यही नहीं उसे उस पर व्यक्त किया। यह सब कुछ है, किन्तु जैसा कि पहले मैं बतला आया हूँ किरणमयी अपनी विद्वत्ता की अपार गरिमा के बावजूद भी अन्त में चलकर एक भयंकर पगली हो गई। ऐसी हालत में यह तो कभी भी नहीं कहा जा सकता कि शरत् बाबू ने 'चरित्रहीन' में पाप की जय दिखलाई। शरत् बाबू ने किरणमयी को कितनी भी विदुषी करके दिखलाया हो, किन्तु उसके लिये कई बार पापिष्ठा आदि शब्द इस्तेमाल किये हैं इसे हम नहीं भूल सकते। मैं तो समझता हूँ यह एक तरह से किरणमयी के चरित्र को पाठक के सामने गिराना (prejudicial to her character) है। इतना होने पर भी शरत् बाबू ने किरणमयी को सहानुभूति के साथ चित्रित किया है, यह कहा जा सकता है। शरत् बाबू किरणमयी

को पापिष्ठा अवश्य कहते हैं, किन्तु इसके माने यह नहीं कि उन्होंने उसे बिलकुल कंस की तरह काली करके चित्रित किया हो। फ्रेंच में एक जो कहावत है tout comprendre, e'est tout pardonner याने "सब कुछ जान लेने पर मनुष्य सब कुछ क्षमा करने के योग्य हो सकता है" शरत् बाबू ने इसी को सार्थक किया है। शरत् बाबू ने मानो इसी बात को अपने तिरपनवें जन्म-दिवस के उत्सव में बोलते हुए कहा था, "तरह-तरह की परिस्थितियों में पड़कर मैं तरह-तरह के लोगों से मिला। मनुष्य को यदि अच्छी तरह खोजा जाय तो उसमें से तरह-तरह की चीज़ें निकलती हैं, उस परिस्थिति में उसकी भूलचूक में सहानुभूति बिना किये कोई रह ही नहीं सकता।"

"चरित्रहीन" उपन्यास में कोई भी उपसंहार (conclusion) ऐसा नहीं है जिसके कारण शरत् बाबू को हाहाकारी, क्रान्तिकारी, विद्रोही या बुतशिकन का खिताब दिया जा सके। सामाजिक रीतियों को पैरों तले रौंदकर, विधवा विवाह कराकर या पाप की जय वे नहीं कराते, फिर कौन-सी ऐसी बात है जिसे देखकर बंगाल का सड़ातन समाज शरत् बाबू के ऊपर बौखला उठा? इस प्रश्न के उत्तर देने की चेष्टा करने के पूर्व हम पाठकों की दृष्टि इस ओर दिलायेंगे कि 'पल्ली-समाज' की विधवा रमा से वे रमेश का विवाह नहीं कराते व 'देवदास' की पार्वती के साथ देवदास के विवाह का प्रश्न ही नहीं उठता, वह तो विधवा नहीं सधवा है, और तलाक़ का प्रश्न ही उठाना बड़ा विकट है।

उपसंहारों (conclusions) इस प्रकार कोई क्रान्ति-कारित्व न होते हुए भी शरत् बाबू में ऐसी बाते हैं जो सड़ातन समाज की तबीयत को ख़राब कर उसे क्रुद्ध कर देती हैं makes them angry and uncomfortable)। ऐसा वे दो तरह से करते हैं एक तो यों कि नैतिक समतल पर वे जो होना चाहिये उसी की जय

दिखलाते व्यावहारिक (practical) जगत में वह भले ही न हो सके, उदाहरणस्वरूप वे अत्यन्त विरोधी भावापन्न पाठक के दिल में भी सतीश और सावित्री के मिलन की इच्छा उत्पन्न कर देते हैं किन्तु साथ ही वे सामाजिक कारणों से उसे होने नहीं देते। इस प्रकार कहानी के दोनों समतलों में जो सूक्ष्म तथा कहीं-कहीं स्थूल संघर्ष उत्पन्न होता है उससे इसका परिपाक अच्छा होता है, ट्रेजेडी पैनी हो जाती है तथा भावों के संचार के लिये प्रशस्ततर क्षेत्र पैदा होता है। एक शब्द में उनकी कला इससे अधिक शक्तिशाली होती है, साथ ही वे समाज-संस्कार की वर्दी न पहिनने पर भी समाज संस्कार के लिये उनकी पुस्तक एक प्रबल आल्हे का रूप धारण करती है क्योंकि वह हमें हमारे चारों ओर दृष्टि दौड़ाने तथा हृदय टटोलने के लिये मजबूर करती है।

शरत् बाबू में दूसरी बात जो समाज के स्तंभों को तिलमिला देनेवाली है, वह है शरत् बाबू की पुस्तकों में फैले हुए यत्र-तत्र भयंकर क्रान्तिकारी विचार जो पात्रों की परस्पर बातचीत के दौरान में पाठकों के सामने उपस्थित किये जाते हैं। इन क्रान्तिकारी विचारों की जय वे भले ही न दिखलावें, किन्तु उनमें जो सत्य है वह हृदय पर एक अमिट छाप छोड़ जाता है और यही बात समाज के ठेकेदारों को नापसन्द है।

'चरित्रहीन' में बातचीत के छल से इस प्रकार के क्रान्तिकारी विचार बहुत आ गये हैं, अधिकतर ये विचार किरणमयी के मुँह से ही पेश किये गये हैं। ये विचार केवल एक क्रान्तिकारी की अग्निगर्भ वक्तृता ही नहीं है बल्कि उनके व्यक्त करने में शरत् बाबू ने अपनी कला को पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया है। किरणमयी के मुँह से शरत् बाबू केवल कुछ क्रान्तिकारी विचारों को सुन्दर रूप से ही प्रकट नहीं करते, बल्कि वे कहीं-कहीं सृष्टि के रहस्यमय प्रश्नों पर यों ही रोशनी की एक झलक डाल देते हैं। शरत् बाबू इन स्थानों पर कवि हो गये हैं, उन अंशों के कारण पुस्तक को जितनी भी बार पढ़ा जाय नया ही आनन्द प्राप्त होता है। स्मरण रहे शरत् बाबू ने इस प्रकार कवित्व के आवेश में

जो रोशनी डाली है उसमें कविता के अतिरिक्त कुछ भी है ऐसा न मालूम होने पर भी वह आधुनिकतम विज्ञान के अनुसार है।

'चरित्रहीन' का जो संक्षिप्त सार मैंने पाठकों के सामने पेश किया उसमें किरणमयी की इस बातचीत का नमूना न आ सका। अतः उसका कुछ थोड़ा-सा नमूना पाठकों के सन्मुख पेश किया जाता है। किरणमयी अभी बर्मा नहीं भाग गई है, वह उस अवस्था में है जिसको मैंने कहा है कि वह दिवाकर से प्रेम न होने पर भी उसको लेकर खेलती है। वह दिवाकर से कह रही है, "मेरी देह की यह जो चीज़ जिसे लोग रूप कहते हैं यह पुरुषों की ही आँखों में ही नहीं मेरी आँखों में एक विचित्र वस्तु है। इसीलिये मैंने इसके सम्बन्ध में बहुत सोचा है। जो मैंने सोचा है वह शायद ठीक हो, शायद ठीक न हूँगी; किन्तु मैं तुमको लज्जा न कर आज बताऊँगी कि इस सम्बन्ध में मेरे विचार क्या हैं। मैं अपने आपको देखकर क्या सोचती हूँ जानते हो? मैं सोचती हूँ कि सन्तान धारण के लिये जो सब लक्षण सब से उपयोगी हैं नारी का रूप वही है।"

दिवाकर निस्तब्ध होकर घूरता रहा, किरणमयी उसके स्तब्ध चेहरे के ऊपर नवीन यौवन की अभी-अभी जागी हुई भूख की मूर्ति, अकस्मात महसूस कर, संकोच के साथ चुप हो गई, किन्तु ऐसा केवल एक मुहूर्त के लिये। दूसरे ही क्षण स्पर्धा के साथ इसको पारकर बोली, "सचमुच देवरजी, यहीं पर रूप का हमें एक किनारा-सा प्राप्त होता है। तभी तो नारी के बचपन का रूप पुरुष को भले ही आकर्षण करे, किन्तु उसे मतवाला नहीं बनाता। फिर जब वह सन्तानधारण की उम्र पार कर जाती है तब भी यही बात होती है। सोचकर देखो देवरजी, केवल स्त्री का नहीं, पुरुष का भी यही हाल है। तभी तक उसका रूप है जब तक वह सृष्टि कर सकता है। इसी सृष्टि करने की उसकी क्षमता को रूपयौवन, तथा सृष्टि करने की इसी इच्छा को प्रेम कहते हैं।"

दिवाकर ने धीरे से कहा—"किन्तु······"

किरणमयी बात काटती हुई बोली, "इसमें किन्तु-विन्तु की कोई गुञ्जाइश नहीं। चराचर सृष्टि की जिस ओर चाहे देखो, यही बात है। सृष्टितत्व की मूल बात क्या है यह तो तुम लोगों के सृष्टिकर्ता के लिये छोड़ दी जाय, किन्तु इसकी प्रक्रिया की ओर तो ज़रा निगाह डालकर देखो। देखोगे कि इसमें का प्रत्येक अणु तथा परमाणु अपने को नये सिरे से बनाना चाहता है। कैसे वह अपने को विकसित करेगा, कहाँ जाने पर, किससे मिलने पर तथा क्या करने पर वह और भी शक्तिशाली तथा उन्नत होगा यही उसकी अथक चेष्टा है। देखकर या न देखकर अन्दर तथा बाहर इसी कारण प्रकृति का रोज़ परिवर्तन है। इसी कारण नारी में पुरुष ऐसा कुछ देखता है जहां ज्ञान में हो या अज्ञान में वह सोचता है अपने को अधिकतर सार्थक तथा सुन्दर बना लेगा, यह लोभ वह किसी भी तरह रोक नहीं पाता।"

दिवाकर ने आस्ते से कहा—"यदि ऐसा होता तो चारों तरफ़ मारपीट लगी ही रहती।"

किरणमयी ने कहा—"बीच-बीच में ऐसा हो भी तो जाता ही है, किन्तु मनुष्य में लोभ को दमन करने की शक्ति, त्याग की शक्ति, समाज का शासन ये सब विरुद्ध शक्तियाँ हैं तभी तो एक साथ चारों तरफ़ आग नहीं लग जाती है। फिर भी यह स्मरण रहे, इसी सामाजिक प्राणी मनुष्य का एक ज़माना था जब प्रवृत्ति ही उसके लिये सब कुछ थी, और वह उसके अलावा किसी के शासन को नहीं मानता था। रूप के आकर्षण के कारण उस दुर्दान्त प्रवृत्ति की ताड़ना ही उसका प्रेम था, इस प्रकार आश्चर्य में न आइये। इसी को साज पहिनाकर शौकीन कपड़े पहिनाकर खड़ी करने से ही वह उपन्यास का पवित्र प्रेम हो जायगा।"

दिवाकर ने स्तंभित होकर कहा, "कहाँ तो स्वर्गीय प्रेम का आकर्षण, कहाँ तो पाशविक प्रवृत्ति की ताड़ना? जो पाशविक प्रवृत्ति

से परिपूर्ण है, भला वह निर्मल पवित्र प्रेम को क्या जान सकता है। आप किस बात से किस बात की तुलना कर रही हैं?"

"तुलना नहीं कर रही हूँ, केवल कह रही हूँ कि दोनों एक ही चीज़ हैं। एंजिन में जो चीज़ उसे आगे बढ़ाती है, वही चीज़ उसे पीछे ढकेलती है, दूसरी चीज़ नहीं। जो प्रेम कर सकता है वही सुन्दर तरीक़े से कहो, कुत्सित तरीक़े से कहो प्रेम कर सकता है, दूसरे नहीं। × × × × पैदा होने के बाद बच्चा जब तक अपनी जड़ देह में सृष्टि-शक्ति संचय नहीं कर लेता तब तक प्रेम का सिंहद्वार उसके सामने बन्द ही रहता है। उस सिंहद्वार को वह जो इस प्रकार लाँघ जाता है यह भी प्रवृत्ति की ताड़ना से ही है। वह माता-पिता, भाई-बहिन सब को प्यार करता है, किन्तु उसकी पञ्चभौतिक देह जब तक विकास के एक स्तर तक पहुँच नहीं जाती, तब तक उसको तुम्हारे कहे हुए स्वर्गीय प्रेम में अधिकार नहीं होता। उस समय स्वर्गीय आकर्षण उसे तिलभर भी विचलित नहीं कर पाता। पृथिवी का मध्याकर्षण तो सभी समय मौजूद है, किन्तु उस आकर्षण में पेड़ का पक्का फल ही आत्मसमर्पण कर पाता है, कच्चा फल नहीं। उसके भीतर का गुदा पृथिवी के रस से ही पकता है, स्वर्ग के रस से नहीं। सुन्दर कलियाँ रूप से, गन्ध से, शहद से अपनी ओर मधुमक्खियों को आकृष्ट कर पुष्प में परिणत होती हैं, फिर वही पुष्प मिट्टी में गिरकर अंकुर में परिणत होता है, यही उसकी प्रकृति, यही उसकी प्रवृत्ति तथा स्वर्गीय प्रेम है। सारे विश्व में विस्तृत यह जो सृष्टि का तथा रूप का खेल चल रहा है, यह स्वर्गीय नहीं है; इसलिये इसमें दुःख पाने की या लज्जा पाने की बात मैं कुछ भी नहीं देखता। हाँ, अँधेरे में भूत से डरकर यदि आँखें बन्द कर आपको आराम मिले, तो मैं आपको आराम लेने से इनकार नहीं करती।"

दिवाकर ने प्रश्न किया, "दुनिया में फिर पवित्र प्रेम और घृणित प्रेम—दो क्यों माने गये?"

किरणमयी खिलखिला उठी, बोली—"तुम्हारा तर्क ठीक नहीं है। दुनिया में इन दोनों को रहना है इसलिये वे हैं। मनुष्य की प्रवृत्ति युक्ति तो है नहीं, तभी वे हैं। जिसको तुम घृणित बता रहे हो वह असल में सुबुद्धि का अभाव है याने जिससे प्रेम करना उचित नहीं था, उससे प्रेम किया गया, बस। अपनी असावधानी से पेड़ से यदि कोई गिरकर हाथ-पैर तोड़ डाले, और उसका दोष मध्याकर्षण पर थोप दे तो वह भी ऐसे ही है जैसे प्रेम को कुत्सित तथा घृणित कहना। इसी प्रकार दुनिया में एक का दोष दूसरे के सिर मढ़ दिया जाता है। मैंने पहले ही कहा कि जीव का प्रत्येक अणु, परमाणु और प्रत्येक रक्तकण अपने को उत्कृष्ट रूप से विकसित करने के लोभ को किसी प्रकार रोक नहीं पाता। जिस देह में उसका जन्म है, उस देह में जब उसकी परिणति हद दर्जे को पहुँच जाती है, तभी उसका यौवन है। तभी वह दूसरी देह के साथ संयोग से अधिकतर सार्थक होने के लिये शिरा-उपशिरा में क्रांति के जिस तांडव की सृष्टि करता है, उसी को पंडितों के नीतिशास्त्र में पाशविक कहकर ग्लानि प्रकट की गई है। इसका तात्पर्य न समझकर हतबुद्धि विज्ञ-दल इसे घृणित तथा वीभत्स कहकर सान्त्वना प्राप्त करते हैं, किन्तु मैं तुमको निश्चित रूप से कहती हूँ देवरजी, कि इतना महान आकर्षण किसी प्रकार हेय या छोटा नहीं हो सकता। यह सत्य है, सूर्यकिरण की तरह सत्य है, मध्याकर्षण की तरह सत्य है। कोई भी प्रेम कभी घृणा की वस्तु नहीं हो सकता।"

किरणमयी पन्ने के बाद पन्ने इसी प्रकार से गूढ़ से गूढ़ विषय पर, कलामय से कलामय तरीक़े पर नई रोशनी डालती हुई बोलती जाती है। वह कहती है, "मैंने तुममें एक चीज़ पाई है जो सचमुच ही प्रेमिक तथा कवि है।× × × × यह बात कभी न भूलना कि कवि विचारक नहीं है। नीतिशास्त्र की राय के साथ यदि तुम्हारी राय हरफ़-बहरफ़ न मिले तो उससे लज्जित न होना। मैं जानती हूँ मनुष्य दूसरों की अक्षमताओं तथा अपराधों को एक ही तराजू से तौलकर सज़ा देते

है, किन्तु उनके बटखरे को उधार लेकर तुम्हारा काम चलने का नहीं। ×××× हत्या के अपराध में जज साहब जब किसी अभागे को प्राणदंड देते हैं तो वे उस समय जज हैं, किन्तु अपराधी के अन्दर की दुर्बलता का अनुभव कर जब वे हल्की सज़ा देते हैं तो वे कवि हैं। देवरजी, इसी प्रकार दुनिया में सामंजस्य की रक्षा होती है, इसी प्रकार दुनिया की भूल, भ्रांति, अपराध असहनीय नहीं हो जाते। कवि केवल सृष्टि करता है यह बात नहीं, वह सृष्टि की रक्षा भी करता है। जो स्वभाव से सुन्दर है उसको जैसे और भी सुन्दर करके प्रकाश करना कवि का एक काम है, उसी प्रकार जो सुन्दर नहीं है उसको असुन्दर के हाथों से रक्षा करना उसका एक दूसरा काम है।

"सुनती हूँ, बुरे के विरुद्ध अत्यन्त घृणा उत्पन्न कर देना कवि का काम है, किन्तु भले के प्रति और भी लोभ उत्पन्न कर देना क्या उसका उससे भी बढ़कर काम नहीं है? इसके अतिरिक्त पाप को जब तक दुनिया से सम्पूर्ण रूप से विसर्जन न किया जा सके, जब तक न मनुष्य का हृदय पत्थर में परिवर्तित हो जाय, तब तक इस दुनिया में अन्याय तथा भूल रह ही जायगी, और तब तक उसे क्षमा कर प्रश्रय देना ही पड़ेगा। पाप को दूर करने की सामर्थ्य नहीं, साथ ही उसे सहन करने की क्षमता भी न रहे इससे क्या लाभ होगा देवरजी?"

दिवाकर ने कहा, "लाभ ही तो सब कुछ नहीं? ×××"

किरणमयी ने कहा—"अवश्य, किन्तु पाप यदि मनुष्य के रक्त के साथ जड़ित नहीं होता तो तुम्हारी ही बात सत्य होती। इस हालत में न्याय के अलावा संसार में कुछ न रह पाता। दया, ममता, क्षमा आदि हृदय-वृत्तियों का नाम भी किसी को पता नहीं होता।" इत्यादि।

किरणमयी और दिवाकर की बातचीत इस उपन्यास की जान है। इन बातचीतों में शरत् बाबू का बुतशिकन रूप प्रकट होता है। व्यंग को वे जर्जर कर देते हैं, तिलमिला देते हैं, इसी कारण उनकी बातें समाज के ठेकेदारों को पसन्द नहीं।

'चरित्रहीन' के सम्बन्ध में हमने जो कुछ कहा है उसको संक्षेप में फिर से दुहरा दें, वह यह कि 'चरित्रहीन' कोई क्रान्तिकारी उपन्यास इस अर्थ में नहीं है कि उसमें पात्रों के क्रान्तिकारी परिणाम दिखलाये जाते हैं, बल्कि इसके विपरीत उसके उपसंहार सम्पूर्ण रूप से प्रतिक्रियावादी हैं। सतीश सावित्री से विवाह न कर सरोजिनी से करता है, किरणमयी पगली हो जाती है तथा सुरबाला के मुक़ाबले में आकर हार जाती है, इत्यादि। अवश्य उपसंहार प्रतिक्रियावादी होने के कारण पूरी रचना प्रतिक्रियावादी हो गई ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उपसंहार चाहे जो कुछ हो कथानक के दौरान में पाठक का मन बन चुका है, और वह चाहता है कि उपसंहार और ही होता तो ठीक था। उपसंहार आशानुरूप न होने से पाठक के मन में समाज-पद्धति के विरुद्ध और भी अधिक क्रोध आता है, वह और भी क्षुब्ध हो उठता है, इस दृष्टि से क्या ऐसे उपसंहारों को प्रतिक्रियावादी कहा जा सकता है, यह विचार्य है। प्रश्न तो यह है कि लेखक किस धारा के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करने में समर्थ होता है। यदि सावित्री और सतीश का मिलन शरत् बाबू कराते, तो 'चरित्रहीन' की ट्रेजेडी न उतनी चुभती हुई होती, न हम उसकी निविड़ता से तिलमिलाकर अपने चारों तरफ़ देखने को विवश होते। यहाँ तक तो शरत् बाबू वस्तुवादी हैं याने उसी को चित्रित करते हैं जो हमारे चारों तरफ़ मौजूद है; किन्तु यहीं पर उनका वस्तुवाद ख़तम हो जाता है। इस ट्रेजेडी का जो स्वाभाविक नतीजा असन्तोष है, वह हम उनके उन पात्रों में भी नहीं देखते, यही नहीं बल्कि जिनमें असन्तोष का होना अनिवार्य था। मान लिया कि सामाजिक बन्धनों के कारण सतीश।सावित्री में परस्पर गम्भीरतम प्रेम होते हुए भी उनका मिलन न हो सका, यह भी मान लिया कि सशीश—वह सतीश जो सावित्री को उपेन्द्र के साथ जाने देना नहीं चाहता था, सरोजिनी की तरह एक प्रेम करनेवाली कली को पाकर कुछ हद तक बहल गया, किन्तु सावित्री का क्या हुआ ? शरत्

बाबू के अनुसार उसने इस परम हानि को आत्म-समर्पण (resig-natian) के साथ लिया, यहीं पर शरत् बाबू आदर्शवादी हैं। शरत् बाबू एक श्रेष्ठ कलाकार हैं, इसलिये वे अपने इस आदर्शवाद को अनायास ही प्रकट नहीं होने देते, तथा उसको स्वाभाविक रूप से विकसित कर दिखाने के लिये वे लम्बी-चौड़ी बातों की अवतारणा करते हैं। सिसक-सिसककर रोती हुई सावित्री सतीश को सरोजिनी के सिपुर्द कर जाती हुई कहती नज़र आती है, "पूछते हो तुम्हें प्यार करती हूँ कि नहीं, नहीं तो किस बूते पर तुम पर मेरा इतना ज़ोर होता, क्यों मेरा इतना सुख होता, और क्यों मेरा दुःख ही इतना महान् होता। अजी इसी कारण तो मैंने तुम्हें इतना दुःख दिया, किसी भी प्रकार मैं अपनी इस देह को तुम्हारे सिपुर्द नहीं कर सकी। आज मैं तुम्हारे निकट कोई भी बात न छिपाऊँगी। मेरी यह देह आज भी नष्ट नहीं हुई, किन्तु तुम्हारे चरणों में अर्पित होने की मर्यादा भी इसमें न रही। इसी देह की सहायता से, इसे दिखाकर मैंने जान-बूझकर बहुतों को मुग्ध किया है, इस बात को तो मैं किसी भी प्रकार नहीं भूल सकती। इसके द्वारा और चाहे जिसकी सेवा हो सके तुम्हारी पूजा इससे नहीं हो सकती। यदि मैं इतना प्यार न करती तो कदाचित् तुम्हें आज इस प्रकार छोड़कर न जाती।" कहकर वह बार-बार आँसुओं को पोछने लगी।

सतीश कुछ देर तक स्तब्ध होकर पड़ा रहा, फिर बोला—"तो मुझे तुम्हारी देह की ज़रूरत नहीं, किन्तु तुम्हारा मन ? इसके द्वारा तो तुम कभी किसी को भुलाने नहीं गई ? यह तो मेरा ही है न ?"

सावित्री उसी क्षण बोली, "इससे मैंने किसी को कभी भुलाना नहीं चाहा। यह तुम्हारा ही है, यहाँ तुम ही हमेशा प्रभु रहोगे। अन्तर्यामी जानते हैं, जब तक जीऊँगी, चाहे जिस हालत में भी रहूँ, इससे मैं हमेशा तुम्हारी दासी ही रहूँगी।"

इस प्रकार यह दिखलाया गया कि सावित्री ने जान-बूझकर सतीश को सरोजिनी को सौंप दिया, इससे सावित्री का चरित्र जिस गौरवमय

रंग में रँगा जाकर पाठक के सामने आता है, उसकी तुलना नारी-चरित्र-प्रधान शरत्-साहित्य में भी नहीं है, किन्तु साथ ही यह गौरव स्वयं एक (conservative) गौरव है। 'चरित्रहीन' का सुरबाला-चरित्र गतानुगतिक पातिव्रत में अपना सानी नहीं रखता, किन्तु सावित्री के प्रेम के सामने तथा उसके त्याग के सामने वह भी फीका पड़ जाता है। यहीं पर शरत् बाबू आदर्शवादी हैं, और उनके साथ वस्तुवाद का रास्ता जुदा हो जाता है। सावित्री-चरित्र की ओर ध्यान देने पर यह सचमुच समझ में नहीं आता कि शरत् बाबू पर सनातन समाज नाराज़ क्यों हुआ।

शरत् साहित्य में सावित्री कोई अकेली वस्तु नहीं, बल्कि उसकी एक परम्परा (tradition) ही है।। 'देवदास' की पार्वती इसी परम्परा की एक उपज है, अवश्य उसमें और सावित्री में प्रभेद हैं। सावित्री बालविधवा है, पार्वती सधवा है, किन्तु उसकी शादी वह जिसे चाहती है उस देवदास से न होकर एक स्त्रीहीन गतयौवन ज़मींदार से होती है। पार्वती और देवदास का चरित्र शरत्-साहित्य की अनोखी उपजें हैं, इसलिये हम इस उपन्यास का संक्षिप्त सार पाठक के सामने पेश करेंगे जिससे कि इन दोनों चरित्रों की पूरी पश्चाद्भूमि एक बार आँखों के सामने आ जाय।

देवदास

पहले दृश्य में हम देवदास को पाठशाला के एक शरारती बालक के रूप में देखते हैं। वह इतना शरारती है कि जिस समय स्कूल में टिफिन की छुट्टी होती है उस समय भी उसे छुट्टी नहीं दी जाती। पाठशाला के किसी लड़के से उसकी दोस्ती नहीं है, केवल पार्वती से उसका मेल है। पार्वती भी उसी पाठशाला की छात्रा है, पार्वती बेचारी जहाँ तक उससे होता है देवदास का

हुक्म बजाती है, किन्तु देवदास कभी-कभी उस पर नाराज़ हो जाता है तो उसे पीट डालता है, फिर पीटने के बाद उसको प्यार भी करता है।

देवदास जब पाठशाला में कुछ भी शिक्षा हासिल न कर पाया, तो उसे कलकत्ता भेजकर पढ़ाया जाने लगा। उसने बच्चे की तरह पार्वती से कलकत्ता न जाने की जो प्रतिज्ञा की थी उसको पिता की बकझक के सामने न रख पाया। बहुत दिनों बाद देवदास गाँव आया तो उसने पार्वती से कलकत्ते की बातें बताईं, पार्वती की ओर से कोई नई बात नहीं थी, जो थी उसे वह कह न सकी। फिर देवदास कलकत्ता चला गया। पार्वती के घरवालों के मन में यह इच्छा तथा आशा थी कि देवदास के साथ पार्वती का विवाह हो, किन्तु देवदास की माता ने एक दिन पूछे जाने पर यह बात साफ़ कर दी कि ऐसा नहीं हो सकता।

कलकत्ते के छात्र-जीवन में देवदास पार्वती को भूलता जा रहा था, किन्तु पार्वती एकरस ग्राम्य-जीवन में बराबर उसी का ध्यान करती रहती थी। पार्वती की शादी एक विधुर धनी के साथ तय हो गई। देवदास गाँव में आया था, उसने भी सुना। देवदास अपने कमरे में सो रहा था, रात के एक बजा था, पार्वती ने चुपके से उसके कमरे में दाख़िल होकर उसको ढकेलकर जगाया। देवदास पहले तो घबड़ाया कि किसी ने देख तो नहीं लिया, किन्तु पार्वती बोली, "नदी में पानी बहुत है, क्या उतने पानी से भी मेरा कलंक नहीं ढक सकेगा?" अकस्मात् देवदास ने हाथ पकड़ लिया, "पार्वती!" पार्वती ने देवदास के चरणों में सिर रख दिया और बोली, "देवु भैया, इन चरणों में ज़रा स्थान दो।" देवदास देर तक पार्वती की ओर देखता रहा, पार्वती के गरम आँसू उसके पैरों पर गिरते रहे। बड़ी देर के बाद देवदास बोला, "क्यों पारू, क्या मेरे अलावा तुम्हारी कोई गति नहीं है?"

पार्वती कुछ न बोली। देवदास फिर बोला, "जानती हो इसमें घर के लोगों की बिलकुल राय नहीं है!"

पार्वती फिर भी कुछ न बोली, उसी प्रकार देवदास के चरणों में सिर डालकर पड़ी रही। घड़ी में टन् से एक बजा। देवदास ने पुकारा 'पारू!' देवदास ने घर के लोगों की राय न होने की बात कही, किन्तु पार्वती बोली, "मैं कुछ भी नहीं जानना चाहती देवु भैया!" देवदास ने पूछा, "पितामाता का अवाध्य हो जाऊँ?" पार्वती ने उत्तर दिया "हरज क्या है, हो जाओ।"

"फिर तुम कहाँ रहोगी?"

"तुम्हारे चरणों में!" रोकर पार्वती बोली। चार बज गये थे देवदास ने उसे घर पहुँचा दिया।

पिता के साथ देवदास ने अगले दिन बातचीत की, किन्तु वे टस से मस नहीं हुए। तब देवदास उसी दिन कलकत्ता रवाना हो गया। वहाँ से उसने पार्वती को एक पत्र लिखा जिसमें उसने लिखा, "और एक बात, तुम्हें मैंने कभी बहुत प्यार किया ऐसा मुझे मालूम नहीं हुआ, आज भी मन में तुम्हारे लिए बहुत कष्ट नहीं मालूम हो रहा है। मेरा सिर्फ दुःख यही है कि तुम मेरे लिये दुःख पाओगी। कोशिश करके मुझे भूल जाना, और मैं आन्तरिक आशीर्वाद करता हूँ कि तुम इसमें सफल होओ।"

देवदास कलकत्ते में आकर एक वेश्या के घर गया, किन्तु वहाँ जी न लगा। वह दो चार दिन में ही गाँव में लौट आया। यहाँ पोखरे के पास पार्वती से उसकी भेंट हो गई। देवदास ने पार्वती को बुलाया, बोला, "मुझे माफ करो पारू। मैं अपने को समझ नहीं पाया था, जैसे हो पिता-माता को राज़ी करूँगा।"

पार्वती ने देवदास के चेहरे पर तीक्ष्ण दृष्टि डाली। बोली, "तुम्हारे माँ-बाप हैं, मेरे नहीं हैं? उनकी राय की ज़रूरत नहीं है?"

"क्यों नहीं पारू, उनकी राय तो है ही, सिर्फ तुम..."

"कैसे तुमने जाना उनकी राय है, उनकी बिलकुल राय नहीं है।"

देवदास ने बहुत समझाया, किन्तु पार्वती अटल रही। बोली, "मैंने तुमको प्यार नहीं किया, मैं तुमसे केवल डरती ही रही। राह छोड़ दो।"

देवदास इस पर क्रुद्ध हो गया और उठाकर वंशी का डंडा उसको मारा जिससे उसकी भौंहों के नीचे ज़रा कट गया और खून टप-टप से गिरने लगा। पार्वती रो पड़ी "देवु भैया!" देवदास की आँखों में आँसू आ गये। उसने स्नेह से रुँधे हुए गले से कहा, "क्यों पारू!" दोनों में इसी प्रकार कुछ बातचीत शायद और होती किन्तु इतने में किसी की आहट पाकर वे अलग हो गये।

यथासमय पार्वती का विवाह हातीपोता के ज़मींदार श्री भुवनमोहन चौधरी के साथ हुआ। उसी दिन वह पति के घर चली गई। वहाँ वह अपने से अधिक उम्र के पुत्र के साथ बड़े मज़े में गृहस्थी चलाने लगी। उसके घर में आने से भुवनमोहन के घर की हालत ऐसी बदल गई जैसे स्वयं लक्ष्मी आ गई हो। भुवनमोहन की एक सयानी लड़की इस शादी से नाराज़ थी, किन्तु पार्वती ने स्नेह तथा त्याग से उसे भी वश में कर लिया।

देवदास के पिता का देहान्त हो गया। सारी सम्पत्ति का आधा देवदास के हाथ में आया। पार्वती भी पितृगह में आई थी, देवदास के साथ उसकी भेंट तथा कुशलप्रश्न हुआ। पार्वती ने देवदास के साथ कलकत्ता रहनेवाले नौकर धर्मदास से पूछा तो पता चला कि अब सम्पत्ति हाथ में आ जाने से देवदास बिलकुल बिगड़ जायेगा। सच बात तो यह है वह शराब पीता है, और न मालूम "कितने हज़ार रुपयों का गहना बनवाकर उसकी नज़र कर चुका है।" पार्वती सन्न रह गई। आह उसने ही तो अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारी थी किन्तु अब वह कुल्हाड़ी उसी के सिर गिर रही है। वह दूसरे की गृहस्थी सम्हालने

के लिये मरी जा रही है और उसका देवु भैया इस प्रकार नष्ट हो रहा है।

सन्ध्या समय वह देवदास से मिली। देवदास ने कहा—"हम दोनों ने बचपन किया, उसके फलस्वरूप क्या से क्या हो गया। तुमने क्रोध में क्या-क्या कहा और मैंने तुम्हारे ललाट पर वह दाग़ दे दिया!"

देवदास ने ये बातें हँसते हुए कही थीं; किन्तु पार्वती का हृदय जैसे फट गया। वह बोली, "देवु भैया! यही दाग़ तो मेरी सान्त्वना तथा सम्बल है। तुम मुझे प्यार करते थे इसलिए दया कर, बचपन का इतिहास तुमने मेरे माथे पर लिख दिया। यह मेरी लज्जा नहीं है, कलंक नहीं है, मेरे गौरव की सामग्री है।"

देवदास पार्वती की ओर देखता रहा। बोला, "तेरे ऊपर बड़ा क्रोध आता है × × पिताजी गये, आज यदि तुम होती तो फिर मुझे चिन्ता ही क्या होती?" पार्वती रोने लगी। जाते समय पार्वती ने केवल एक बात माँगी, वह यह कि देवदास एक बार उसकी देखरेख में उसके नये घर में आकर रहे। देवदास ने कहा—"हाँ, जाऊँगा, मेरे यत्न करने पर यदि तुम्हारा कष्ट दूर हो, तो जाऊँगा क्यों नहीं? मरने के पहले भी तुम्हारी यह इच्छा मुझे याद रहेगी।"

देवदास अपनी माँ को काशीजी में पहुँचाकर फिर कलकत्ता लौट गया। वहाँ वह जिस वेश्या के पास अधिक जाने लगा था पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि उसने वेश्यावृत्ति छोड़ दी। इसका नाम चन्द्रमुखी था। देवदास के साथ प्रेम हो जाने के कारण ही इसके जीवन में यह कायापलट हो गई थी। चन्द्रमुखी अब जाकर देवदास के गाँव के पास एक शरीफ औरत की तरह कुछ ज़मीन ख़रीदकर रहने लगी।

अपनी सखी मनोरमा से पार्वती को एक पत्र मिला जिसमें पता चला कि देवदास हद दर्जे का उच्छृङ्खल जीवन बिता रहा है, शराब पीता है इत्यादि। मनोरमा ने लिखा था, "वह गाँव में

आया था, मैं सामने पड़ गई, तो मुझसे कहने लगा कि तुम लोगों को देखकर बड़ी खुशी होती है। मैं तो डरी कि कहीं मेरे ऊपर हाथ न डाल दे, किन्तु वह इतना कहकर चला गया। सुनती हूँ बहुत ही भ्रष्ट है।" यह पत्र पाकर पार्वती अपने गाँव के लिए रवाना हुई, किन्तु देवदास गाँव से चल चुका था। पार्वती ने सिर धुन लिया, "क़िस्मत की बात है।" वह मनोरमा से मिली। मनोरमा बोली, "पारू, तुम देवदास को देखने आई थी?"

"नहीं, उनको साथ ले जाने के लिए आई थी। यहाँ उनका अपना आदमी कोई है तो नहीं।"

मनोरमा अवाक् रह गई, बोली—"कहती क्या है, तुम्हें लज्जा नहीं लगती?"

"लज्जा किस बात की? अपनी चीज़ को ले जाऊँगी, इसमें लज्जा की क्या बात है।"

"छिः यह क्या बात कहती हो! एक कोई सम्बन्ध तक तो नहीं है, इस बात को मुँह पर मत लाओ।"

पार्वती म्लान हँसी हँसकर बोली, "मनो बहिन, जब से होश हुआ तब से मन में यह बात बसी है, इसलिए कभी-कभी यह बात मुँह से निकल जाती है। तुम मेरी बहिन हो, इसलिए तुमने यह बात सुनी।"

अगले दिन पार्वती फिर अपने पतिगृह के लिए रवाना हो गई।

चन्द्रमुखी को गाँव में रहते समय ज्ञात हुआ कि देवदास कलकत्ते में बड़े ज़ोरों के साथ फिर वही पुराना रवैया चला रहा है। जाने कितने हज़ार रुपये फूँक डाले। यह सुनकर चन्द्रमुखी कलकत्ते में गई, और गिल्ट के गहने ख़रीदकर फिर झरोखे पर बैठ गई, किन्तु जो आता उसे ही निकलवा देती। वह सब तरह से देवदास का पता लगा रही थी। अन्त में देवदास का पता लगा। वह शराब पीकर सड़क पर

पड़ा था, चन्द्रमुखी उसे उठा लाई। इसी हालत में वह शराब माँगने लगा। चन्द्रमुखी उसे बड़ी कठिनता से सुला पाई। जब वह जगा तो चन्द्रमुखी को पहिचान गया। देवदास के यकृत में दर्द था, डाक्टर बुलाया गया, उसने परीक्षा कर सिर हिला लिया। दो दिन में बुख़ार भी आया। एक महीने से अधिक इलाज हुआ तो देवदास कुछ ठीक हुआ। इसी के बाद देवदास ने चन्द्रमुखी से वे बातें कही हैं जिसमें उसने कहा कि वह समझ नहीं पाता कि वह चन्द्रमुखी को अधिक प्यार करता है या पार्वती को।

स्वास्थ्य सुधारने के लिये देवदास इलाहाबाद गया, किन्तु स्वास्थ्य में कुछ भी उन्नति नहीं हो रही थी। वहाँ से वह बम्बई गया तो कुछ स्वास्थ्य सुधरा। तब देवदास हुगली का टिकट लेकर घर चलने को तैयार हुआ। बनारस के बाद उसे गाड़ी में बुख़ार आया। गाड़ी जब पांडुआ स्टेशन पर पहुँची तो वह चुपके से, साथ के पुराने नौकर धर्मदास को न बताकर रेल से उतर गया, और स्टेशन के बाहर काँपते हुए जाकर घोड़ागाड़ी वाले से कहा, "हातीपोता चलेगा?" गाड़ीवान ने रास्ता ख़राब बताकर चलने से इनकार किया, तब पालकी खोजी गई, वह भी न मिली। वह सन्न रह गया, तो क्या वह पार्वती के यहाँ न पहुँच सकेगा? बड़ी कठिनता से एक बैलगाड़ी मिली। बैलगाड़ी के गाड़ीवान ने कहा, "बाबू रास्ता ख़राब है, हातीपोता पहुँचने में दो दिन लगेंगे।" देवदास मन ही मन हिसाब करने लगा, "दो दिन! दो दिन मैं जीऊँगा?" फिर भी गाड़ी पर वह चढ़ बैठा। गाड़ी पर बैठकर माँ की बात याद आई, फिर चन्द्रमुखी की। जिसको पापिष्ठा करके उसने हमेशा घृणा की थी, आज उसी को जननी के बग़ल में गौरव के साथ प्रकट होते देख उसकी आँखों में आँसू आ गये।

गाड़ी पर चढ़ने के बाद देवदास को ज्वर आ गया। जब अगले दिन दुपहर को गाड़ी ठहरी, तब भी कई कोस बाक़ी थे। गाड़ी ठहरा-

कर बैलों को चारा देते हुए गाड़ीवान ने पूछा, "बाबू तुम कुछ न खाओगे ?"

"नहीं, बड़ी प्यास लगी है, थोड़ा पानी दे सकते हो ?" गाड़ीवान पास ही के तालाब से पानी ले आया। अब तो देवदास की नाक से टप-टप करके साँस के साथ ख़ून निकल रहा था। सन्ध्या समय भी देवदास ने पूछा, "कितना बाक़ी है ?" गाड़ीवान ने कहा, "दो कोस, रात दस बजे पहुँच जाऊँगा।" जब गाड़ी निर्दिष्ट जगह पर पहुँची तो गाड़ीवान ने आवाज़ दी, "बाबू सो गये ?" देवदास के ओठ हिल उठे, किन्तु कुछ बोल न सका। उसने हाथ उठाना चाहा किन्तु हाथ न उठा। गड़ीवान ने तब पीपल की बँधी हुई वेदी के नीचे बिस्तरा लगाकर देवदास को सुला दिया। सबेरे लोग इकट्ठा हुए, पुलिस आई, जो कुछ जानता था गाड़ीवान ने कहा। डाक्टर आया, बोला, "अन्तिम अवस्था है।" ऊपर से पार्वती ने सुनकर आह भरी।

पुलिस ने जेब की तलाशी ली, अँगूठी देखी, चिट्ठियाँ पढ़ीं तो ज्ञात हुआ कि यह तालसोनापुर के देवदास मुखोपाध्याय की लाश है। ब्राह्मण होते हुए भी उसकी लाश को गाँववालों ने छूना न चाहा तो चांडालों के द्वारा उठाकर अधजली करके डाल दी गई। पार्वती ने घर में पूछा—"कौन था जी ?"

उससे उम्र में बड़ा उसके लड़के ने कहा, "देवदास मुखोपाध्याय।"

पार्वती को विश्वास न हुआ, उसने पूरा विवरण पूछा तो मालूम हुआ हाँ वही है। कहकर वह दौड़कर उतरने लगी। उसके पुत्र ने पूछा—"कहाँ चलीं ?" पार्वती बोली, "देवु भैया के पास।"

"वे तो हैं नहीं, उनको डोम ले गये।"

"माँ ! माँ !!" कहती हुई पार्वती दौड़ी।

महेन्द्र दौड़कर सामने आकर बाधा देने को हुआ। वह बोला, "तुम क्या पागल हो गई माँ, कहाँ जा रही हो ?"

पार्वती ने महेन्द्र पर तीक्ष्ण कटाक्ष किया, बोली, "महेन्द्र क्या तुम मुझे सचमुच पागल समझ रहे हो ? रास्ता छोड़ दो।"

महेन्द्र ने रास्ता छोड़ दिया, बाहर उस समय भी कारिन्दे काम कर रहे थे। भुवन बाबू ने आँख पर चश्मा चढ़ाते हुए पूछा "कौन है ?"

महेन्द्र बोला, "छोटी अम्मा जा रही है !"

"क्यों ? कहाँ ?"

महेन्द्र ने कहा, "देवदास को देखने।"

भुवन चौधरी चिल्ला उठे, "तुम लोग सब के सब पागल हो गये क्या ? पकड़ो, पकड़ो, पकड़ लो उसे, पागल हो गई है। ओ महेन्द्र ! ओ छोटी बहू !"

इसके बाद नौकरनियों ने मिलकर पार्वती की मूर्छित देह को मकान के अन्दर किया। दूसरे दिन उसकी मूर्छा जब टूटी, उसने केवल पूछा, "रात में आकर पहुँचे थे न ? ओह सारी रात ?"

× × ×

यही देवदास उपन्यास है। इसमें शरत् बाबू ने विशेष कोई क्रान्ति कराई है ऐसा तो मालूम नहीं होता। देवदास और पार्वती एक दूसरे से प्रेम करते हैं। एक साधारण झगड़े के कारण, अवश्य इस झगड़े की पश्चाद्भूमि में सनातन समाज है, पार्वती का विवाह एक ऐसे व्यक्ति से होता है जिसके विरुद्ध उसे कुछ भी कहना नहीं है, किन्तु फिर भी जिसे वह प्यार करने में असमर्थ है क्योंकि उसका हृदय देवदास से लबरेज़ भरा है। दोनों अर्थात् देवदास और पार्वती अपनी ग़लती को बाद को महसूस करते हैं, किन्तु कुछ कर नहीं पाते क्योंकि पार्वती का विवाह हो चुका है, और वह विवाह किसी भी तरह हट नहीं सकता (is irrevocable) अब यहाँ पर क्रान्ति का तक़ाज़ा तो यह है कि पार्वती अपने विवाहित पति को तलाक़ दे देती, और

हृदय के पति के साथ विवाह कर लेती। ऐसा होने में पहली बाधक बात तो यह है कि हिन्दुओं में तलाक़ नहीं है। जिससे जिसकी शादी हो गई वह मृत्यु तक के लिये हो गई, दूसरी यह कि यदि शरत् बाबू अपने उद्भावनशील मस्तिष्क से और कोई तरीक़ा भी निकालकर पार्वती को देवदास के निकट पहुँचा देते, तो वे साधारण हिन्दू विवाह की भयानक ट्रेजेडी को अपनी कला के मुकुर में कैसे दिखला पाते? इसलिये उन्होंने पार्वती और देवदास के प्रेम को वहीं पहुँचा दिया है, जहाँ पहुँचाने से घर-घर में होने वाली हिन्दू विवाह की ट्रेजेडी को बिलकुल मूर्त कर पाते। इस दृष्टि से देखे जाने पर शरत् बाबू सूक्ष्म रूप से क्रियाशील क्रान्तिकारी के ही रूप में हमारे सामने आते हैं। देवदास और पार्वती शरत् बाबू के दिमाग़ की उपज नहीं है, बल्कि वे भारतवर्ष के घर-घर में मौजूद हैं। इस प्रकार भारतीय विवाह के ढोल के अन्दर की पोल को इस सुन्दरता से उधेड़कर खोल डालने में वे समर्थ हुए हैं। यहाँ तक तो वे वस्तुवादी हैं, किन्तु जब हम देखते हैं कि उन्होंने पार्वती और देवदास की तरह एक दूसरे को निविड़ रूप से प्यार करने वाले व्यक्तियों के अन्दर भूल से भी एक चुम्बन तक होने नहीं देते, केवल यही नहीं इस आत्मत्याग को एक सराहनीय perspective में पेश करते हैं। हमें संदेह होने लगता है कि वैवाहिक क्रान्ति के प्रति उनका जो इशारा है वह कहीं इच्छाकृत नहीं है ऐसा तो नहीं या ऐसी विपत्ति में पड़े हुए दो चाहनेवालों को उनका कथन कहीं यह तो नहीं है कि वे तब तक इसी पद्धति के सामने घुटना टेककर अपने जीवन को तथा दूसरों के जीवन को नष्ट करते रहें जब तक सामूहिक सुधार न हो जाय।

शरत् बाबू चाहें हो या न चाहें हों, 'देवदास' पुस्तक तलाक़ के लिये एक उचित मुकदमा खड़ी करती है, जैसे 'चरित्रहीन' विधवा-विवाह के लिये एक तर्क पेश करता है, यद्यपि उसमें सरोजिनी के बीच में आ जाने से यह तर्क डूब-सा गया है। 'पल्लीसमाज' में विधवा-

विवाह का तर्क (plea) 'चरित्रहीन' से कहीं साफ़ है। 'देवदास' में फिर भी एक समस्या है, वह यह कि यदि मान लिया जाय कि स्त्री-पुरुष के मिलन के क्षेत्र में प्रेमजन्य विवाह ही आख़िरी। शब्द (last word) है, तो देवदास किसका है? चन्द्रमुखी का या पार्वती का? पार्वती भी देवदास को प्रेम करती है, चन्द्रमुखी भी यों तो यही मालूम पड़ता है कि पार्वती देवदास से अधिक प्रेम करती है, इसलिये उसी का पलड़ा भारी होना चाहिये, किन्तु ज़रा गहरी जाँच करने पर पार्वती का यह वज़न टिक नहीं सकता। पार्वती प्रेम करती है, फिर भी दूसरे से शादी कर लेती है, अवश्य इस करने में उसको बहुत कुछ मजबूरी रही है ऐसा कहा जा सकता है; किन्तु चन्द्रमुखी देवदास से प्रेम करने लगती है तो एकदम अपने जीवन की कायापलट कर देती है। वह वेश्यावृत्ति ही छोड़ देती है। चन्द्रमुखी यदि पार्वती की तरह भुवन चौधरी के साथ ब्याही जाती, तो वह इस नियति (destiny) को इस प्रकार मान न लेती, वह भाग जाती, न मालूम क्या करती, शायद वह एक फ्रेंच उपन्यास की नायिका की तरह देवदास के सन्मुख जाकर कहती, "मैं तुमसे अलग नहीं रह सकती, पत्नी की मर्यादा तुम मुझे न दो, समाज न दे किन्तु मैं तुम्हारी उपपत्नी होकर ही रहूँगी, साथ न छोड़ूगी"। इसीलिये यह एक समस्या है और यह एक सामाजिक समस्या है कि यदि एक व्यक्ति को दो स्त्रियाँ चाहें तो हमारे माने हुए सूत्र प्रेमजन्य विवाह के अनुसार वह किससे विवाह करे? इसका उत्तर तो सहज मालूम होता है, वह यह कि प्रेमजन्य विवाह का तक़ाज़ा यह है कि आकर्षण पारस्परिक हों, किंतु यदि यह कहा जाय कि वह व्यक्ति दोनों स्त्रियों को चाहता है तब तो समस्या और भी जटिल हो जाती है। देवदास उपन्यास में परिस्थिति सचमुच इसी हद को पहुँच गई है, किंतु चन्द्रमुखी वेश्या थी इसलिये पाठक की सहानुभूति उसकी ओर उतनी नहीं जाती. इसलिये पार्वती ही पार्वती नज़र आती है।

चन्द्रमुखी जिस प्रकार वेश्या से एक शरीफ औरत हो जाती है, केवल यही नहीं देवदास की आँखों में उसकी माँ तथा पार्वती की समतुल्य मर्यादा पाने को समर्थ होती है, यह इस बात को दिखलाता है शि शरत् बाबू के नज़दीक एक वेश्या हेय नहीं, वह भी उठ सकती है। निखिल शरत्-साहित्य में भी चन्द्रमुखी एक ही चरित्र है जो एक बाज़ारू वेश्या से फिर उठती है। जब वह उठती है तब हम देखते हैं कि वह किसी पतिव्रता से कम प्यार नहीं करती। यदि चन्द्रमुखी अपनी बुद्धिमत्ता से देवदास को ठीक समय पर खोज निकालकर इलाज न कराती तो देवदास पार्वती के दरवाज़े पर न मरकर कलकत्ते की किसी सड़क पर मरा पड़ा मिलता।

हम यहाँ पर इस बात की ओर फिर से पाठकों की दृष्टि आकर्षित करना चाहते हैं कि देवदास का चरित्र मूलतः सतीश से मिलता है। सतीश और देवदास दोनों निकम्मे धनी युवक हैं, दोनों को रुपये पैसे की कोई चिन्ता नहीं है, दोनों जिसके साथ प्रेम में पड़ते हैं उसको पाते नहीं हैं। फिर भी यह एक देखने की बात है कि 'चरित्रहीन' के सतीश के प्रति पाठक की सहानुभूति उतनी नहीं जगती जितनी देवदास के प्रति जगती है, यद्यपि मनुष्यता की दृष्टि से दोनों एक ही समतल पर हैं, बल्कि सच्च बात तो यह है कि सतीश देवदास से कुछ ऊँचे दर्जे का व्यक्ति है। फिर देवदास के प्रति इस सहानुभूति का कारण क्या है यदि हम देखें तो ज्ञात होगा कि इसमें एक बात है, वह यह कि सतीश जो वेश्यागामी तथा शराबी हो जाता है उसका कारण सावित्री से उसका प्रेम व्यर्थ हो जाना नहीं है, कम से कम वही एकमात्र कारण नहीं है; किंतु देवदास के वेश्यागामी तथा शराबी हो जाने का एकमात्र कारण पार्वती के साथ उसके प्रेम का निष्फल हो जाना है। इसी कारण देव-दास बिगड़कर एक साधारण अवारा में परिणत हो जाने पर भी उसके प्रति पाठक की सहानुभूति बराबर बनी रहती है, तथा जब वह मरता है तो उसे एक प्रेम के शहीद की मर्यादा प्राप्त होती है।

यदि गतानुगतिकता का दास सनातन समाज की दृष्टि से देखा जाय तो पार्वती कोई सती नहीं है, यद्यपि अविचलित प्रेम की वह देवी है। प्रेम और गतानुगतिक सतीत्व में इस संभव चिरवैरिता दिखलाकर तथा प्रेम के ही प्रति पाठक की सहानुभूति उत्पन्न कर वर्तमान विवाह-प्रथा के थोथेपन को दर्शाया है। 'देवदास' में यह बात बड़े पैनेपन के साथ साफ हो गई है कि विवाह एक बार हो जाने के बाद जो वह टूट नहीं सकता यह बिलकुल एक ग़लत पद्धति है। इसके बाद "चरित्र-हीन" तथा "देवदास" में की एक और बात की ओर हम दृष्टि आकृष्ट करना चाहते हैं। वह यह कि देवदास के उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि शरत् बाबू की समझ में एक व्यक्ति वेश्यागामी होते हुए भी अपनी प्रेमिका के प्रति विश्वस्त बना रह सकता है। देवदास ऐसा ही है, सतीश ऐसा ही है। इस साध्य को ग़लत या सही बिना बताये हम मान सकते हैं कि यह बात बिलकुल असंभव नहीं है, याने नियम का व्यतिरेक (exceptional) इसमें होते हुए भी ऐसा हो सकता है। बर्ट्रोण्ड रसेल तो यहाँ तक मानते हैं कि यदि स्त्री या पति का एकाध दफे पदस्खलन भी हो जाय तो उसको कुछ न समझना चाहिये क्योंकि इससे उनके सम्बन्ध में कोई फरक़ नहीं आता।

'देवदास' में कोई सुन्दर या क्रान्तिकारी बातचीत हमें नहीं मिलती। उसमें का कोई भी पात्र या पात्री दार्शनिकता प्रकट करती हुई या एक साधारण नियम निकालकर (generalise) बातचीत करती हुई हमें नहीं मिलती। 'देवदास' उपन्यास में इसी कारण बुद्धि की आतशबाज़ी हमें कहीं न दीख पड़ने पर भी उसमें हमें गीतिकविता (lyric) का आनन्द आता है। 'देवदास' में चुभती हुई, फड़कती हुई बातचीत तो कई जगह आती है, ऐसी जो एक दफे पढ़ ले तो याद रहे, किन्तु उनमें तर्क का वैसा प्रकाश या चमत्कार नहीं है जो 'चरित्र-हीन' की किरणमयी की बातचीत में है। पार्वती प्रेम की पगी प्रेममयी है, उसमें मानो बुद्धि की प्रखरता की गुञ्जाइश ही नहीं है। जहाँ वह

कहती है कि "तुमने मेरे माथे पर कृपा कर बचपन का इतिहास लिख दिया" वहाँ पर उसकी बातें कितनी प्रेम से सनी हैं, जो कभी भुलाई नहीं जा सकतीं।

हम पाठक को शरत्-साहित्य का कुछ परिचय दे चुके। हम अब केवल 'बामुनेर मेये' (ब्राह्मण की लड़की) नामक उपन्यास का परिचय देंगे, जिसमें उन्होंने केवल धार्मिक ढोंग को ही नहीं, हिन्दुओं के वर्णाश्रम की जड़ पर सबसे ज़बर्दस्त आघात किया है। उनकी सब पुस्तकों के लिये हिन्दू-समाज उन्हें क्षमा कर सकता है, किंतु 'बामुनेर मेये' में उन्होंने हिन्दुओं की समाज-पद्धति की मौलिक चीज़ों को जो ज़बर्दस्त धक्का दिया है, जो भयानक चोट उसे पहुँचाई है उसकी कोई तुलना नहीं है। 'चरित्रहीन' को मैं पहले ही बहुत अंशों में एक अपरिवर्तनवादी बता चुका हूँ। संदेह नहीं कि 'बामुनेर मेये' की चोट इसके मुक़ाबले में बहुत गहरी है।

बामुनेर मेये (ब्राह्मण की लड़की)

मुहल्ला घूमना ख़तम कर रासमणि सन्ध्या के पहले घर लौट रही थी। साथ में दस-बारह वर्ष की पोती थी। वह अपना फ़ुदकती हुई आगे चल रही थी, सामने रस्सी से बँधा हुआ एक बकरी का बच्चा सो रहा था, वह उस रस्सी को लाँघ गई। बस इस पर दादी रासमणि बहुत बिगड़ गई कि मङ्गलवार की वारवेला में उसने ब्राह्मण की लड़की होकर बकरी की रस्सी कैसे लाँघ ली। सामने ही बारह-तेरह वर्ष की एक चमार (दुले) की लड़की आती दिखाई दी कि वह लगी झड़पने कि कहीं उसने पोती को छू तो नहीं लिया, फिर लगी नाराज़ होने कि चमारों के पुरवे से यहाँ ब्राह्मणों के पुरवे में वह क्योंकर बकरी बाँधने आई। उस लड़की ने बतलाया कि अब वह इसी पुरवे में रहती है। बात यह है कि उसको तथा उसकी माता को उसके पिता के मरते ही बिरादरीवालों ने निकाल दिया था। उस समय रामतनु बन्दोपाध्याय के दामाद ने इनको ज़रा रहने की जगह दी थी।

अब तो रासमणि बकरी की रस्सी को भूल गई। वह पहुँची उसी के घर जिसने इस निराश्रय ही सही किन्तु चमार-परिवार को लाकर ब्रह्मणटोले में बसाया था। वह तो घर पर नहीं था, तो उसकी लड़की सन्ध्या पर ही बरस पड़ी। बोली—'तुम्हारे बाप ससुर की जायदाद भोग रहे हैं, भोगें, किन्तु यह क्या अनाचार कि ब्राह्मणटोले में चमट्टों को लाकर बसावें।' सन्ध्या भी उबल पड़ी, इतने में सन्ध्या की माँ जगद्धात्री शोर सुनकर आ गई। जगद्धात्री को देखकर रासमणि आपे से बाहर होकर चिल्लाती हुई बोली—"सुनती हो लड़की की बात, कहती है गोनोक चट्टो तो हमारे पिता का सिर ही काट लेंगे। कहती है हमारी ज़मीन पर हमने चमार बसाया, किसी के बाप का क्या ?" सन्ध्या ने एक भी बात ऐसी न कही थी फिर भी जगद्धात्री जब उस पर बिगड़ने लगी तो वह क्रोध के मारे भीतर चली गई।

रासमणि आजकल की लड़कियों की साधारण तौर पर बुराई करने लगी, फिर बोली, "अमृत चक्रवर्ती का लड़का तुम्हारे यहाँ आता-जाता है क्या ? मैं तो कल पुलिन की माँ से इसी बात पर लड़ गई कि भला जग्गो के रहते हुए ऐसा भ्रष्टाचार हो सकता है।" इशारा अरुण की ओर था जो समाज के स्तंभों की आवाज़ को ठुकराकर विलायत गया था।

जगद्धात्री गाँव की इस रासमणि मौसी को जानती थी। वह समझ गई कि रासमणि की बात यदि न मानी गई तो वह सन्ध्या के चरित्र के सम्बन्ध में अजीब-अजीब कहानी गढ़ना न छोड़ेगी। इसलिये उसने सहज ही में पति को समझाकर 'चमट्टों' को ब्राह्मणटोले से निकलवा देना क़बूल कर लिया। जगद्धात्री बोली, "ज़रूर मौसी, मैं कल ही उन्हें खड़े-खड़े निकलवा दूँगी, ये रहेंगे तो हमारे ही पोखरे से पानी-वानी लेंगे; फिर उन्हीं का पानी छू-छूकर तो हमें भी चलना-फिरना पड़ेगा।" जाते समय रासमणि कह गई "सुनती हूँ सन्ध्या का बाप उसे

पढ़ा रहा है, सुनकर गोलोक दद्दा तो अवाक् रह गये। उन्होंने कहा, "मना करो इस बात को जल्दी मना करो। पढ़ी कि बस बिगड़ी।"

जगद्धात्री के पति प्रियनाथ को दुनिया की कुछ पर्वाह न थी, वे अपने को होम्योपैथी के अगड़धत्त पंडित समझते थे। उनको बस इसी की धुन लगी रहती थी कि कोई रोगी उनकी दी हुई दवा पीना स्वीकार करे; किन्तु रोगी उनसे ऐसे भागते थे जैसे यमराज से। यदि कोई उनकी दवा फिर भी पीना स्वीकार करता तो वे अपने को कृतकृत्य समझते थे, केवल जी-जान ने उसकी सेवा ही नहीं करते थे, परन्तु उसको पथ्य के लिए अंगूर बेदाना भी पहुँचाते थे। लोग होम्योपैथी में उनके प्रतियोगी पराण से ही चिकित्सा करवाते थे। लुकछिपकर लोग सन्ध्या से भी दवा ले जाते थे; किन्तु प्रियनाथ बाबू से कोई चिकित्सा न करवाता था। प्रियनाथ ने जहाँ सुना कि दस-पाँच गाँव के अन्दर कोई बीमार है तो वे स्वयं ही पहुँचते थे। इस प्रकार रोगियों के शिकार में ही वे दिन बिताते थे, अक्सर वे खाने के समय से देर में पहुँचते। जगद्धात्री नाराज़ होती, किन्तु सन्ध्या चुपचाप प्रतीक्षा करती।

जिस गोलोक चट्टो के नाम से गाँव के शेर-बकरी एक घाट पर पानी पीते थे तथा जिसका नाम लेकर सन्ध्या और जगद्धात्री को डरवाया था, उनकी अभी हाल में स्त्री की मृत्यु हुई थी। उनकी स्त्री की सेवा करने के लिए साली आई थी। वह बाल-विधवा थी, कोई पचीस साल की उम्र थी। वह अब जाना चाहती थी, किन्तु गोलोक चट्टो उसे जाने देना नहीं चाहते थे। वे उसी से अपनी स्त्री का नुकसान भूलना चाहते थे। गोलोक चट्टो छोटे-मोटे खाते-पीते ज़मींदार थे, किन्तु वे इसी पर निर्भर करनेवाले व्यक्ति नहीं थे, वे भीतर ही चोङदार बाबू के साथ साझे में विलायत में बकरी तथा भेड़ चालान देने का कारोबार करते थे।

सन्ध्या कुछ दिन से बीमारी में पड़ी थी। अभी उसने साबूदाना पिया था। वह बैठकर पान खा रही थी, इतने में अरुण आ गया।

वह पसीने से लस्तपस्त था, तथा उसका मुँह सूखा हुआ था। बात यह है कि वह कलकत्ते से अभी घर न जाकर सीधा स्टेशन से आया था। सन्ध्या ने कोई बुनने का पैटर्न मँगाया था, उसी को देने के लिए वह घर न जाकर यहाँ पहले आया था। सन्ध्या उसी पैटर्न की परीक्षा करती हुई उससे कह रही थी, "इतनी जल्दी की क्या ज़रूरत थी? भैया! तुम बाद को आते...!" इतने में जगद्धात्री बाहर से आई तो अरुण को देखकर जल उठी, और सन्ध्या से बोली, "ज़रा पान मुँह से थूक दे फिर जितना चाहे मज़ाक करो।" वह आँधी की तरह आई थी, आँधी की तरह चली गई।

अरुण सन्न से रह गया। सन्ध्या कुछ देर चुप रही, फिर पान थूक कर रुआसी होकर बोली—क्यों तुम इस मकान में आते हो अरुण भैया, क्या तुम हम लोगों का सर्वनाश करके ही मानोगे?"

पहिले तो अरुण से कुछ बोला न गया, फिर धीरे-धीरे बोला—"मुँह का पान तुमने थूक दिया सन्ध्या, मैं क्या सचमुच तुम्हारे लिए अछूत हूँ?"

सन्ध्या आँख पोंछती हुई बोली, "तुम विलायत गये हो म्लेछ हो, इसाई हो, तुम मेरे ही निकट अछूत नहीं सब के निकट हो। तुम्हें याद नहीं, उस दिन तुम्हें पीतल के लोटे में पानी पीने दिया गया था?"

"किन्तु मैंने समझा था..." फिर अरुण कुछ बोल न पाया, एक मिनट के लिए स्थिर रहकर वह बोला—"मैं शायद इस घर में कभी न आऊँ, किन्तु मुझे घृणा न करना सन्ध्या, मैंने कभी कोई घृणित काम नहीं किया।" अरुण चला गया, जगद्धात्री कहीं पास ही खड़ी थी, वह मुस्कराती हुई आकर बोली—"अब शायद न आवे।" किन्तु इतने ही से वह खुश न हुई, सन्ध्या को कपड़ा भी बदलने का हुक्म हुआ। सन्ध्या राज़ी हो गई। इतने में मकान के अन्दर आँगन में किसी ने 'जग्गो' करके पुकारा। जगद्धात्री दौड़ी, अरे! यह तो स्वयं गोलोक चट्टो थे।

गोलोक एकदम सामने आ गया, उसने सन्ध्या की तबियत खराब होने की बात पूछी। जगद्धात्री ने कहा 'अभी तो आज भी साबूदाना ही खाई है।' गोलोक बोले, "कहाँ तो सन्ध्या अब कई लड़के की माँ होकर किसी का घर बसाती, कहाँ तुमने उसकी अभी शादी न की। उसकी इतनी उम्र हो गई।"

जगद्धात्री डरी कि न मालूम अब क्या आनेवाला है, बोली "लड़की के पिता को कुछ फिक्र भी हो, वे तो दवा करने में ही पागल हो रहे हैं।"

गोलोक बोला, "सभी तो मुझे मालूम है, तुमने ही तो प्रण किया है कि कार्तिकेय की तरह दूल्हा न तो शादी न दोगी। तू तो यह जानती है कि हम कुलीनों में तो बहुत से लोगों को मरते-मरते कन्या का दान लेकर दूसरों की कुलीनता की रक्षा करनी पड़ती थी। मधुसूदन तू ही सत्य है।"

थोड़ी देर इधर-उधर के बाद गोलोक सन्ध्या की ओर देखकर बोल उठा—"अच्छा जग्गो तुम्हें यदि कातिकेय न चाहिए तो इसको मेरे ही हाथ क्यों न सौंप दो, क्यों सन्ध्या ? मुझे पसन्द तो करोगी ?"

सन्ध्या शायद दूसरे समय इसे मज़ाक में लेती किन्तु इस समय जली-भुनी थी, बोल उठी 'क्यों नहीं दादा, आप रस्सी के खाट पर चढ़ कर आयेंगे और मैं माला लेकर खड़ी रहूँगी।" यह कहकर वह जल्दी से चली गई।

गोलोक का चेहरा तमतमा गया, किन्तु वह हँसकर बोला—'पोती लगती है, कह भी सकती है, किन्तु मैंने रासमणि से सुना जो मुँह में आता सो कहती है।'

जगद्धात्री ने बहुत समझाया कि ऐसा नहीं। गोलोक अब ज़बर पड़ने लगा, उसने कहा "चमट्टों को तो निकलवा दो!" सन्ध्या कहीं

पास ही से बोल उठी, "उनको पिताजी ने निराश्रय जानकर जगह दी है, उनको कोई कैसे निकाले ?"

गोलोक बोला—"अच्छा निराश्रय ही सही, किन्तु यही तो एक जगह नहीं है। अरुण से कहो अपने घर में ले जाकर बसा दे। उसकी जाति जाने का डर नहीं।"

सन्ध्या सामने आकर बोली—"उनको पर्वाह क्या, चाहे जाति जाय या रहे।"

गोलोक ने चोट करने के लिए कहा, "तो तुम लोगों में यही सलाह होती है ? अच्छा !"

सन्ध्या खिलखिलाकर हँस पड़ी, बोली, "वे तो आप जैसों की सलाह लेना कुत्ते-बिल्ली से सलाह लेना समझते हैं, फिर वे मुझसे क्या सलाह लेते ?" फिर वह चली गई। जगद्धात्री कहने लगी, "कभी अरुण ने ऐसा न कहा होगा, यह अभागी बनाकर कह रही है।" गोलोक इस बात से ख़ुश न हुआ, बोला, "जग्गो, आजकल के लड़के-लड़कियों का यही है। ख़ैर सही, मैं कुत्ता-बिल्ली ही सही, किन्तु एक बात मैं कहे जाता हूँ लड़की की शादी जल्दी कर दो। इस पाप को ख़तम ही कर दो।"

अगले दिन प्रियनाथ ने जल्दी में बसाई चमारिन से कहा—"सुनो, मैं दया नहीं कर सकता, तुम लोग कहीं और जाओ, तुम लोग बड़ी बदमाश हो। क्यों तुमने बकरी को माड़ पिलाया ?"

"लेकिन बकरी को तो माड़ सभी पिलाते हैं दद्दा जी !"

होम्योपैथी की चिन्ता में प्रियनाथ मस्त थे, बोले, "बिलकुल झूटी बात है, कोई बकरी माड़ नहीं खाती, बकरी खाती है घास।"

बात इस पर तय रही कि बकरी माड़ न खाने पायेगी। चमारिन बुढ़िया बोली, "दद्दा जी, बिटिया ने दो दिन से दाना नहीं खाया !"

"दाना नहीं खाया ? पेट फूला है ? कब्ज़ ? अजीर्ण ? दवा दूँ ? सल्फर, एकोनाईट ?" खुश होकर प्रियनाथ बोला।

"नहीं दद्दा जी भूख है, दाना नहीं है, भूख के मारे मरी जा रही है !"

समझकर प्रियनाथ बोले, "ओह !"—फिर सिर खुजलाकर बोले, "जाओ पोखरे के पास खड़ी रहो, सन्ध्या जब आवे तो कहना मेरी दवा के बक्स में एक अठन्नी है दे दे। पंडिताइन न जान पावे, समझी ?"

प्रियनाथ चला गया।

सन्ध्या एक दिन एक दम अरुण के बैठकखाने में पहुँची। बोली, "एक अनुरोध के लिए आई हूँ, तुम आजकल घर से निकलते नहीं ?"

"नहीं, मैं जल्दी ही यहाँ से बूदोबास उठाकर वहाँ जाने की सोच रहा हूँ, जहाँ मनुष्य मनुष्य को बिना किसी दोष के ही हीन नहीं समझते, लांछित नहीं करते। मैं यही बात दिन-रात सोच रहा हूँ।"

सन्ध्या बोली, "जन्भूमि छोड़ जाओगे ?"

"मैं जन्मभूमि को छोड़ रहा हूँ कि जन्मभूमि मुझे छोड़ रही है। मैं आज तुम्हारे निकट भी अछूत हूँ, इतना अपमान सहकर भी तुम मुझे यहाँ रहने कहती हो ?"

सन्ध्या बोली "यह अपमान तुमने स्वयं ही बुलाया ? मैंने तुमको इशारे से कई बार बताया है कि जो तुम चाहते हो वह कभी नहीं हो सकता। तुम्हारे प्रायश्चित करने पर भी नहीं, फिर भी तुमने भिक्षा की ज़बर्दस्ती ख़तम होने नहीं दी। पिताजी राज़ी हो सकते हैं, माताजी भूल सकती हैं, किन्तु मैं तो नहीं भूल सकती कि मैं कितने बड़े कुल के ब्राह्मण की कन्या हूँ।"

अरुण हतबुद्धि होकर बोला—"और मैं ?"

संध्या बोली, "तुम एक ही जाति के हो, किंतु बाघ और बिल्ली एक नहीं है।" संध्या बोलने को तो बोल गई किन्तु ऐसा कह डालने के बाद अपने मन ही मन सिहर उठी। अरुण बोला नहीं, उसने केवल

अपनी व्यथित विस्मित दृष्टि को संध्या के चेहरे पर से हटा लिया।
संध्या बोली, "बहुत दिनों तक तुम मुझे याद रक्खोगे, बार-बार तुमको इस प्रकार अपमान किसी ने किया नहीं होगा।"

अरुण बोला—"खैर यह बताओ तुम किस काम के लिए आई थीं?"

—"हाँ, तो देखो दुनिया में आश्चर्य का कोई अंत नहीं है। देखो न तुम ही यदि हमारी इज्ज़त आज न बचाओ तो वह बचती नहीं दीखती। बात यह है एक्कड़ि चमार की विधवा स्त्री तथा कन्या को एक्कड़ि के बाप ने निकाल दिया है, किन्तु हमने उन्हें आश्रय दिया है हमारे पुराने मवेशियों के बाड़े में। अब प्रश्न यह खड़ा हुआ है कि ब्राह्मणटोले में वे रह नहीं सकतीं। पूछते हो क्यों? वे चमार हैं, वे हमारे पोखरे से पानी लेते हैं, सड़क पर बकरी को माड़ खिलाते हैं, इसलिए समाजपति गोलोक चट्टो के पैर न जानकर उस माड़ पर पड़ गये, इसलिए माताजी ने तय किया है कि कल सबेरे उन्हें झाड़ू मारकर निकालकर तब स्नान करेंगी। तुम उन्हें स्थान दो, वे बिलकुल निराश्रय हैं।"

अरुण ने कहा—"अच्छी बात है, हमारा उड़िया माली घर गया है, उसके कमरे को ख़ली करवा देंगे।"

संध्या ने इसका उत्तर नहीं दिया, शायद वह अपने को सम्हाल रही थी, फिर-धीरे धीरे बोली—"अब मेरे मुंह में पान नहीं है, नहाने भी आई थी। इस समय तुम्हें प्रणाम कर ज़रा पैर छू जाऊँ"—यह कहकर उसने झुककर अरुण को प्रणाम किया और चली गई। अरुण स्तब्ध होकर बैठा रहा, न उसने कुछ पूछा न पीछे से उसे पुकारा।

रासमणि एक दिन जगद्धात्री के यहाँ आई तो लगी कहने, "जग्गो, जल्दी से पंचानन और विशालाक्षी के यहाँ पूजा भेज दे। तेरी क़िस्मत

खुल गई। तेरी उस पगली लड़की ने इतनी तपस्या की थी मैं तो नहीं जानती थी, किन्तु मैं कहे रखती हूँ मेरे लिए एक सोने की पतली कंठी बनवा देना।"

जगद्धात्री ने जब व्याकुल होकर पूछा "बात क्या है यह तो बताओ मौसी?" तब उसने बड़े घुमाव-फिराव से कहा, "कहीं अभी चार कान से छै कान न होने पावे, कहीं लोग कुछ बाधा न दें। गोलोक भैया मेरे अलावा किसी को कुछ बताते तो हैं नहीं, आज उन्होंने मुझे बुलाकर कहा "जाओ बहिन जग्गो से जाकर कहो कि अपनी बेटी के लिए कुछ चिन्ता न करे, उसे मेरे हाथ में सौंपकर राजा की सास बनकर निश्चिन्त बैठी रहे।" इस बात को सुनकर राजा की होनेवाली सास कुछ ख़ुश न हुई। जगद्धात्री ने कहा, "गोलोक मामा ने मज़ाक किया होगा।" रासमणि बोली, "ऊँह, मुझसे मज़ाक, और वे? भाई-बहिन में मज़ाक? यह कभी हो सकता है?"

जगद्धात्री टालती रही, किन्तु रासमणि बोली "मैंने भी पहले सोचा था कि यह असंभव है, किन्तु सन्ध्या भी तो एक ही लक्ष्मी प्रतिमा-सी है, मुनि का मन भी डिग जाय, यह तो गोलोक मनुष्य है।"

जगद्धात्री समझ गई कि बात सही है। रासमणि चली गई तो वह सन्ध्या के पास गई। वह एक चिट्ठी पढ़ रही थी, यह चिट्ठी काशी जी से उसकी दादी के यहाँ से आई थी, उसमें उन्होंने लिखा था कि वे जगद्धात्री की प्रार्थना स्वीकार कर संध्या की शादी देने के लिये तथा स्वयं उपस्थित रहकर कन्यादान करने स्वयं आ रही हैं। इसी समय प्रियनाथ व्यस्तता के साथ दौड़ते हुए आये "हो गया न हाइपोकोन्ड्रिया, मैं दो दिन न गया बस!"

जगद्धात्री ने पूछा—"किसका क्या हुआ?"

प्रियनाथ बोले—"अरुण को हाइपोकोन्ड्रिया हो गया, मैं जैसी डायग्नोसिस करूँगा ऐसा कौन साला कर सकता है? वह साला डाक्टर

का दुम बनता है, वह इस रोग का नाम भी जानता है ?" जगद्धात्री ने जब बहुत पूछा कि यह रोग क्या है ? तो बोले "वही नहीं समझता तुम क्या समझोगी ? उसको मानसिक व्याधि हो गई है । वह अपनी सब जायदाद पानी के दाम पर हारान कुंडु के हाथ बेचकर गाँव छोड़कर चला जा रहा है ।" जगद्धात्री बोली—"अच्छा उसे एक बार मेरा नाम लेकर भेज दो, कहना तुम्हारी चाची बुला रही है ।" संध्या खड़ी होकर सुन रही थी, उसका चेहरा पीला पड़ गया, उसके होंठ काँपने लगे, फिर भी उसने दृढ़ता के साथ कहा "क्यों माँ, तुम बार-बार उनको बुलाकर अपमान करना चाहती हो, उन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा ?"

जगद्धात्री बोली "बुलाकर दो अच्छी बातें कहने में भी हरज है ?"

संध्या बोली "भला हो या बुरा हो, वे रहें या जायें, मकान ज़मीन बेचें या न बेचें, हम लोगों के साथ उनका क्या सम्बन्ध है कि तुम ख़ामख़्वाह बीच में पड़ोगी । इस मकान में यदि तुम उन्हें बुलाकर लाओ तो मैं यह तुम्हारी कसम खाकर कहती हूँ कि मैं जाकर पोखरे में कूद पड़ूँगी"—कहकर वह जल्दी से चली गई । जगद्धात्री आश्चर्य से चुप हो रही, किंतु वह प्रियनाथ से बोली "तुम लड़की की शादी दोगे कि नहीं, रसिकपुर में एक दूल्हा का पता लग रहा है, तुम देखने कब जाओगे ?" प्रियनाथ ने कहा कि उन्हें फ़ुरसत कब है, अरुण का इलाज करना है, फिर गोलोक की साली बीमार है उसे देखना है । जगद्धात्री बोली, "चाहे कुछ हो एक बार रसिकपुर हो आओ ।" प्रियनाथ इस पर बोला जिसको वह दामाद बनाना चाहती है वह तो नशेबाज़ तथा असच्चरित्र है । अब जगद्धात्री बोली "हो असच्चरित्र, लड़की कम से कम कुछ दिन तो सिंदूर पहिनेगी । तुम किस असच्चरित्र से अच्छे हो ? तुम तो पागल हो, जब तुम्हें लड़की दी जा सकती है तो उसे लड़की नहीं दी जा सकती ?" प्रिय अवाक होकर देखते रहे, फिर चले गये ।

इधर ज्ञानदा बीमार थी । गोलोक बार-बार उसकी देख-रेख करते ।

एक दिन ज्ञानदा पूछ बैठी—"क्या तुम प्रियनाथ की लड़की संध्या से शादी करने की ठीक कर चुके हो ?" गोलोक ने इनकार किया तो ज्ञानदा बोली "रासमणि को तुमने भेजा था, अगहन में शादी है, तुम्हें ऐसा करना था तो तुमने मेरा सर्वनाश क्यों किया, तुमने मेरे तो मुँह दिखाने की या खड़ी रहने की कोई गुंजाइश ही नहीं रक्खी ?" इतने में नौकरनी ने आकर खबर दी कि ज्ञानदा के ससुर आये हैं। गोलोक अब ज्ञानदा को भेजना चाहता था, क्योंकि वह गर्भवती हो चुकी थी, किन्तु ज्ञानदा सब के समझाने-बुझाने पर भी जाने को राज़ी न हुई। उसने गोलोक से कहा "तुम्हें लेकर डूबूँगी।"

गोलोक को जब ज्ञात हुआ कि सन्ध्या का विवाह उससे न होगा, कोई नौजवान वीरचन्द्र मुखोपाध्याय के साथ होगा तो वे बहुत नाराज़ हुए और अपने गुप्तचरों को इस बात का पता लगाने के लिए दौड़ाने लगे कि प्रियनाथ की माँ के विषय में एक अफ़वाह जो उसके कान में बीस साल पहले आ चुकी थी कहाँ तक सच है ?

जगद्धात्री तथा उसकी सास कालीतारा संध्या के विवाह के बारे में आजकल व्यस्त रहती थी। जगद्धात्री बराबर कुल की मर्यादा के लिए सतर्क रहती, किन्तु उसकी सास को इन बातों का मोह न था। कालीतारा अपनी पोती को भी यही समझाती थी, जगद्धात्री को यह बहुत बुरा लगता था।

रात अधिक नहीं हुई थी। रासमणि ज्ञानदा से कह रही थी "सुन ज्ञानदा पगली न बन, दवा पी ले, फिर जैसा था वैसा ही सब हो जायगा, कोई जान भी न पायेगा।"

ज्ञानदा बोली "ऐसी बात तुम लोग हमें कैसे कहती हो बहिन ? पाप पर इस प्रकार पाप हम कैसे करें ? नरक में भी तो हमारी जगह न होगी।" रासमणि बोली, "इतने बड़े देशपूज्य व्यक्ति की हेठी करवाओगी, यह बचपन खूब रहा।" ज्ञानदा रोती हुई बोली "तुम लोग

इमें विष देकर मरवा डालोगी, मैं जानती हूँ।" रासमणि बोली "अच्छा केओरा बुढ़िया की दवा न पियो न सही, किन्तु प्रियनाथ की दवा तो पियोगी?" ज्ञानदा बोली "वे देंगे?" रासमणि बोली "क्यों नहीं? गोलोक दद्दा ने कहा तो उसका फरिश्ता देगा वह क्या चीज़ है?"

इतने में प्रियनाथ आये, बड़बड़ा रहे थे "जिधर न जाऊँ उधर ही गड़बड़, कल लड़की की शादी है, इधर इतने रोगी हैं, घर से कल निकल न पाऊँगा, ख़ुदा ही हाफ़िज़ है।" प्रियनाथ ने ज्ञानदा की नाड़ी देखकर कहा—"बस अजीर्ण है, टाइम लगेगा, लेकिन भला मैं दवा करूँ और अच्छी न हो।" रासमणि ने कई बार इशारे से समझाया कि मामला क्या है, किन्तु प्रवीण चिकित्सक प्रियनाथ जब इस पर भी नहीं समझे तो उसने प्रियनाथ को अलग ले जाकर वस्तुस्थिति समझाई। प्रियनाथ तो हक्काबक्का रह गया। रासमणि बोली "गोलोक दद्दा के ऐसे पूजनीय व्यक्ति का ऊँचा सिर नीचा हुआ जा रहा है। वे तो पुरुष हैं, उनका क्या दोष, इसी अभागी ने तो आकर मायाजाल फैला।" प्रियनाथ ने कई बार थूक निगलकर कहा—"मेरे पास यह सब दवा नहीं है, आप बल्कि विपिन डाक्टर या पराण डाक्टर को ख़बर दें।" वे अपनी पुस्तकें तथा दवा का बक्स समेटने लगे। गोलोक भी पहुँच गया, बोला "तुम्हारा मैं ससुर लगता हूँ, मैं कहता हूँ इसका कुछ ढंग करो।" प्रियनाथ यों तो सिलबिल्ला था, किन्तु इस पर तमक कर बोला "ससुर आप हैं तो हुआ करें, किन्तु क्या जीवहत्या करूँ? परलोक में क्या जवाब दूँगा?" गोलोक किवाड़े के पास जाकर खड़ा हो गया, और बिलकुल ही दूसरा आदमी बनकर तेवर बदलकर कठोर स्वर में बोला "इतनी रात में तुम एक भले आदमी के घर में क्या कर रहे हो?"

प्रश्न सुनकर प्रियनाथ आश्चर्य में हो गया, बोला "वाह यह भी खूब तमाशा है! मैं दवा देने आया और क्या, आपने ही तो बुलाया।"

गोलोक चिल्लाकर बोला "साले बदमाश, हरामी ! तू क्या जाने इलाज करना ? किसने तुझे घर में घुसने दिया ? आख़िर तुझे पीछे के दरवाज़े से खोलकर भीतर किसने किया ?" ज्ञानदा की ओर मुड़कर गोलोक बोला "हरामज़ादी, अन्धे ससुर रोकर लौट गये, तू न गई। भीतर-भीतर रात दुपहर को इलाज हो रहा है ! कल यदि सिर मुड़वाकर दही डलवाकर गाँव से न निकलवा दूँ तो मेरा नाम गोलोक नहीं।" रासू की ओर देखकर बोले " देखा इन लोगों का रंग। मैं दस-बीस गाँव का समाजपति हूँ, और ऐन मेरे ही घर में यह पाप ? तू गवाह रही।" रासू भी घबड़ा गई थी, सम्हलकर बोली "ज़रूर गवाह हूँ, मैं ज़रा देखने चली आई कि ज्ञानदा कैसी है, तो यहां देखती क्या हूँ कि दोनों में गुलछर्रे उड़ रहे हैं।" प्रिय का तो यह हाल था कि काटो तो लहू नहीं, गोलोक ने चील की तरह उसके हाथ से सब किताबें छीन लीं—"निकल साले उल्लू के पट्ठे हमारे घर से, तू रामतनु का दामाद है नहीं तो पहले तो मैं तुझे जुतियाकर अधमरा करता, फिर थाने में चालान करता।" यह कहकर गोलोक ने धक्के पर धक्क देकर उसे घर से निकाल दिया। प्रियनाथ कह रहा था "वाह यह तो अच्छा तमाशा रहा," और निकल गया।

अगले दिन सन्ध्या की शादी में अरुण बुलाया तक न गया था। वह घर ही पर था। अधिक रात होने पर भी वह जग रहा था। इतने में किसी ने उसके कमरे के दरवाज़े पर पुकारा। अरुण ने तुरन्त खोल दिया, किन्तु अरे ! यह क्या ? यह तो सन्ध्या थी। वह लाल रेशम की साड़ी पहिने थी, स्त्री का ऐसा रूप अरुण ने कभी नहीं देखा था, वह मुग्ध हो गया। सन्ध्या जैसे तूफ़ान की तरह आई थी वैसे ही तूफ़ान की तरह बोली "तुम्हारे अलावा मेरा आज कोई नहीं है, चलो !" अरुण ने कहा "कहाँ ?" सन्ध्या बोली "जहां से एक व्यक्ति अभी उठ गया, वहीं चलो।" अरुण समझ गया किसी कारण से वरवाले वर को पीढ़े पर से उठा ले गये। ऐसा तो अक्सर होता है। अरुण ने कारण पूछा तो

धीरे-धीरे सन्ध्या ने जो कहा वह यह है "विवाह सभा में माताजी मुझे दान करने के लिये बैठी थीं, दादी चुप बैठी थी। इतने में मृत्युञ्जय घटक दो व्यक्ति को लेकर पहुँचा। उनमें से एक ने दादी की ओर देखकर कहा "दीदी, हमें पहचानती हो?" दूसरे ने दादी को कहा "तुमने लड़के की शादी देकर पहले ही एक ब्राह्मणी की जाति ले ली, अब इस पोती की शादी देकर इन लोगों को जातिभ्रष्ट कर रही हो?" फिर सब को पुकारकर उसने कहा "सब लोग सुनो, यह जिसको तुम सब परम कुलीन समझते हो, ब्राह्मण नहीं, हीरू नाई का लड़का है।" मृत्युञ्जय ने गंगाजल का घड़ा दादी की ओर बढ़ाकर कहा "है यह बात सच कि नहीं, कहिए प्रियनाथ किसका लड़का है, मुकुन्द ब्राह्मण का या हीरू नाई का?" मेरी सन्यासिनी दादी सिर नीचा किये रही, किसी प्रकार झूठ मुँह में न ला सकी। इसके बाद उन दोनों में से एक ने सारी घटना खोलकर बतलाई। वह यह कि आठ साल की उम्र में दादी की शादी हुई थी। जब उनकी पन्द्रह-सोलह साल की उम्र हुई तो एक व्यक्ति ने अपने को मुकुन्द ब्राह्मण बताया, दो रात रहकर पाँच रुपया तथा एक कपड़ा लेकर चला गया। इसके बाद से ही वह अक्सर आता था, अब वह कुछ न लेता था। बात यह है दादी बड़ी ख़ूबसूरत थी। इसके बाद जब एक दिन उसकी असली हक़ीक़त खुली तो पिताजी पैदा हो चुके थे। मैं माँ होती तो गला दबा देती, लड़के को बढ़ने न देती। हाँ, जब वह पकड़ा गया तो उसने कहा यह कुकृत्य उसने अपने दिल से नहीं; बल्कि मुकुन्द ब्राह्मण की अनुमति तथा अनुरोध से किया। एक तो मुकुन्द बुड्ढे आदमी थे, दूसरे कई साल से गठिया से परेशान थे। इसलिए अपनी अपरिचित स्त्रियों से रुपया वसूल करने का भार उन्होंने हीरू के ऊपर देकर कहा—'हीरू! तू ब्राह्मण का परिचय याद कर ले और एक जनेऊ रख ले, जो कुछ तू पैदा करेगा उसका आधा तेरा रहा।' इस प्रकार उसने दस बारह जगह पर किया था। उसने कहा 'यह काम उसके मालिक ने ही नहीं किया, ऐसेही बहुत से कुलीन ब्राह्मण

अपने से दूर रहनेवाली स्त्रियों से पैदा करने के लिए दूसरों की मदद लेते हैं।"

अरुण क्रोध से गरजकर बोला "ज़रूर सच होगा, नहीं तो ब्राह्मणों में गोलोक ऐसा कसाई कैसे पैदा होता। और ये ही हिन्दू समाज के शीर्षस्थान पर बैठें हैं।"

सन्ध्या बोलती गई "हीरू ने, सुनती हूँ, मुकुन्द से पूछा था कि पंडित जी ! ईश्वर के यहाँ क्या जवाब देंगे ? तो उन्होंने कहा था पाप सब हमारा है, मैं उसका जवाब दूँगा। हीरू ने फिर पूछा था, पंडितजी ! आखिर उनकी क्या गति होगी ? हँसकर पंडित जी ने कहा था उनकी गति क्या होगी न होगी यह चिन्ता हमारी है, वे हमारी स्त्रियाँ हैं न कि तुम्हारी ?' दादी ने मुझसे तुम्हारी बाबत कहा था 'कौन छोटा कौन बड़ा है यह केवल ईश्वर जानते हैं, मनुष्य किसी को कभी घृणा न करे। किंतु उस समय मैंने नहीं सोचा था कि इसका क्या अर्थ है, आज मुझे इसे समझना पड़ेगा। रात अधिक हो रही है। चलो अरुण भैया ! तुम मुझसे कभी दुःख न पाओगे, तुम्हारे महत्व तथा त्याग को मैं चिरकाल तक न भूलूँगी।"

अरुण ने सकुचाते हुए कहा "किंतु तुम्हारे साथ तो मैं नहीं जा सकता सन्ध्या !" सन्ध्या बोली "फिर मैं खड़ी किसके यहाँ हूँगी, जीऊँगी कैसे ?" अरुण अकस्मात् न बोल सका, किंतु सोचकर बोला "मुझे आज क्षमा करो सन्ध्या, मुझे ज़रा सोचने दो।"

"सोचने दूँ ? अवश्य, ज़रा क्यों, ख़ूब सोच लो। शायद सोचने का समय आजीवन ही मिले। इतने दिनों तक मैं भी सोचा करती थी, दिनरात। जब तुमको अपनी तुलना में मैं छोटा सोचा करती थी, उस समय मैं सोचती थी, अब तुम्हारे सोच-विचार का समय आया है। अच्छा मैं जाती हूँ।" कहकर वह चली गई। अरुण उसी प्रकार निश्चेष्ट बैठा रहा।

दूसरे दिन सन्ध्या और प्रियनाथ वृन्दावन या काशी कहीं जा रहे हैं—सुनकर अरुण उनके घर पहुँचा। अरुण बोला—"आप जा रहे हैं और सन्ध्या भी ?" प्रियनाथ बोले "सन्ध्या मानती नहीं, वह कहती है मेरी भलाई के लिए उसका मेरे साथ जाना ज़रूरी है।"

अरुण अवाक होकर बोला—"सन्ध्या तुम भी जा रही हो ? मैं उस दिन अपना चित्त स्थिर नहीं कर पाया था, किंतु मैंने निश्चय किया है मैं तुम्हारी बात में ही राज़ी हो जाऊँगा।" प्रियनाथ न समझकर केवल देखने लगे। सन्ध्या बोली "उस दिन मेरा भी चित्त स्थिर न था अरुण जी, किंतु आज मेरा चित्त स्थिर हो गया है। मैं पिताजी के साथ यही बात जानने जा रही हूँ कि औरत के लिए शादी करने के अतिरिक्त कोई काम है भी कि नहीं ? इसलिये क्षमा करना, हमें देर हो रही है, हम चले।"

अरुण ने कहा "ऐसे दुःख के समय अपनी माँ को छोड़ चलीं ?" सन्ध्या बोली "क्या करूँ अरुण भैया, अब तक बाप-माँ दोनों में हिस्सा था, अब एक को छोड़ना ही पड़ेगा। माँ के लिए फिर भी कोई तरीक़ा शायद निकले। लोगों ने कहा है कि उनके लिए शायद प्रायश्चित है। हो तो अच्छी बात है। फिर तो उन्हें देखने सुननेवालों की कमी न रहेगी, किंतु पिताजी को सम्हालने का भार मेरे अतिरिक्त कोई नहीं ले सकता।" अरुण को छोड़कर वह चलने लगी। अरुण रास्ते में निकला तो मालूम हुआ कि गोलोक की शादी से लोग न्यौता खाकर लौट रहे हैं।

पिता को लेकर सन्ध्या जब स्टेशन पहुँची तो उस समय गाड़ी को कुछ देर थी। एक औरत चुपचाप एक पेड़ के नीचे बैठी थी। सन्ध्या पहिचान गई यह ज्ञानदा थी। सन्ध्या ने पूछा वह कहाँ जा रही है तो वह कुछ बता न सकी और रोने लगी। ज्ञानदा को टिकट लेते समय प्रियनाथ ने पूछा "आप कहाँ जायेंगी ?" इसके उत्तर में ज्ञानदा ने पूछा—"आप कहाँ जायेंगे ?" "हम लोग वृन्दावन जा रहे हैं।" प्रियनाथ

बोला। ज्ञानदा ने अपना कुल धन पचास रुपया देकर कहा "मेरे लिए भी वृन्दावन का एक टिकट ख़रीद दें, सन्ध्या तो चल ही रही है न ? सिर्फ रास्ते भर पहुँचा दीजिये।"

प्रिय कुछ देर चुप रहा, फिर बोला—"अच्छा चलो हम लोगों के साथ।"

× × ×

इस पुस्तक में पहिली द्रष्टव्य बात तो यह कि इसमें शरत् बाबू देवदास परम्परा (tradition) को निभाते हैं। सन्ध्या अरुण में प्रेम है; किंतु वह उतना स्पष्ट नहीं है, जितना देवदास और पार्वती में है। पहले ही दृश्य में हम देखते हैं कि समाज के पत्थर से प्रेम का यह उत्समुख दब जाता है, सन्ध्या एक प्रकार से अरुण को अपमानित कर घर से निकाल देती है। सन्ध्या और अरुण में भी देवदास और पार्वती की तरह मिलन नहीं होता, समाज का दुर्भेद्य प्राचीर उनके अन्दर खड़ा रहता है। पहले यह दीवार सन्ध्या की ओर से है, फिर जब सन्ध्या के पिता के जन्म की असलियत खुल जाती है तो सन्ध्या इसे तोड़ देती है बल्कि यह दीवार सन्ध्या की पीठ पर अररररधम से गिर जाती है, किंतु अब अरुण की बारी आती है ; उसकी ओर से दीवार खड़ी होती है। सन्ध्या की दीवार तो समझ में आती है कि किस चीज़ की बनी हुई थी, यह जातिभेद की दीवार थी, किन्तु अरुण जब सन्ध्या से कहता है "मुझे सोचने दो" तो साफ़ समझ में नहीं आता कि वह किस बात की सोच में पड़ता है। शायद उसकी तरफ़ से आपत्ति यह है कि वह एक नाई की पोती और सो भी इस प्रकार उत्पन्न सन्ध्या से विवाह नहीं करना चाहता। सन्देह नहीं कि अरुण की आपत्ति सन्ध्या की आपत्ति से कहीं अधिक उचित तथा समीचीन है, एक सामाजिक क्रान्तिकारी भी कहा जाता है एक दोगली को पत्नी रूप में लेने के पहले तीन दफे सोचेगा। फिर अरुण कोई क्रान्तिकारी न था, उसका अपराध केवल इतना ही था कि वह विलायत

गया था, और वहाँ से लौटकर उसने प्रायश्चित करने से इनकार किया था। अरुण सब कुछ जानते हुए भी दो एक दिन सोच-विचार के बाद सन्ध्या से विवाह करने को तैयार हो जाता है, किन्तु सन्ध्या एक शहीद की तरह कहती नज़र आती है "मैं पिताजी के साथ यही बात जानने जा रही हूँ कि औरत के लिए शादी करने के अलावा भी कोई काम है या नहीं?"

सन्ध्या की यह बात बड़ी करुण है, किन्तु यहाँ हम साधारण पाठक की तरह बह न जाकर यह पूछना चाहेंगे कि क्या सन्ध्या सच-मुच उसी प्रकार शहीद बनने की हक़दार है जैसे वह बोलती है! वह तो ऐसे बात करती है जैसे उस पर बड़ा भारी ज़ुल्म किया गया है, किन्तु क्या यह बात सच है? आख़िर उस पर यह अत्याचार करने-वाला कौन है, समाज याने उसका वह पति जो विवाह-मण्डप के पीढ़े पर से उठ गया, या अरुण? वह स्वयं जातिभेद को तब तक अखंड सत्य समझती है जब तक उसके सामने यह बात बड़े भयानक तरीक़े से खुल नहीं जाती कि इसी जातिभेद के नियम के अनुसार न वह ब्राह्मण है न नाई, यहाँ तक कि वह एक दोगले की लड़की मात्र है। अपने ही विचारों के अनुसार वह नीच से नीच है, उसकी कोई जाति नहीं है। उसी के विचारों के अनुसार इस बात के खुल जाने के बाद एक नाई युवक भी उसके लिए उच्च कुल का वर था, इसलिए सब बातें जानने के बाद यदि ब्राह्मण और सो भी कुलीन वर यदि पीढ़े पर से उठ गया तो इसमें मैं समझता हूँ सन्ध्या को शहीद की तरह मुँह बनाने का अधिकार न था। अरुण तो बेचारा ब्राह्मण ही था, हाँ कुलीन ब्राह्मण से ज़रा नीचे दर्जे का चक्रवर्ती ब्राह्मण था, किन्तु उसके विवाह प्रस्ताव को तथा प्रेम को सन्ध्या ने यह कहकर ठुकरा दिया था कि बाघ और बिल्ली में विवाह कैसा? फिर यदि वह विवाह के मंडप में बैठी होती और बजाय यह खुलने के कि वह दोगले की लड़की थी यह खुलता कि जिसके साथ उसकी शादी अभी होनेवाली है वह

कुलीन ब्राह्मण नहीं, बल्कि उसका पिता नाई की औरत से पैदा था, तो क्या वह उस वर से शादी करने के बजाय किसी भी ऐरे-ग़ैरे ब्राह्मण से शादी करने को तैयार न हो जाती ? फिर जब उसी के साथ यह व्यवहार हुआ तो वह शहीद क्यों बनती है, बढ़-बढ़कर दार्शनिकता क्यों छाँटती है, जैसे उस पर बड़ा भारी अत्याचार हुआ ! हमें तो यह रम्याँ रोलाँ की वह बात याद आती है कि प्रत्येक अत्याचारित एक असफल अत्याचारी है। सन्ध्या को यह कहने का कोई हक़ नहीं कि "मैं यह जानने जा रही हूँ कि विवाह करने के अलावा स्त्रियों का कोई काम है कि नहीं ?" वह स्त्रियों की कोई प्रतिनिधि नहीं है, यदि सन्ध्या में कोई विशेषता है कि उसके तर्ज़ पर सोचनेवाली हज़ारों स्त्रियाँ भारतवर्ष में हैं, उसी की तरह जाति का अभिमान रखने वाली, उसी की तरह जातिभेद के पत्थर पर प्रेम को भी पटक देनेवाली, किन्तु सज़ा केवल उसी को मिली। यदि यह कोई महत्त्व है तो यही उसका महत्व है।

अरुण के व्याकुल प्रेम को वह दो कौड़ी का क़रार देकर एक अपरिचित को तरजीह इसलिए देती है कि वह कुलीन है, ऐसे तो उसके तरीक़े हैं। प्रेम उसके लिए कोई मूल्य नहीं रखता, जाति की रक्षा तथा कुलीनता की रक्षा उसके निकट कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। अरुण के प्रेम को ठुकराकर कुलीनता की रक्षा के लिए सन्ध्या का व्यग्र होना हमें इसलिए और भी नीचतापूर्ण तथा वीभत्स मालूम देता है क्योंकि सन्ध्या जानती है कि मनुष्यता की दृष्टि से अरुण उसके समाजपतियों तथा उससे बड़ा है, तभी तो वह उसके प्रेम को ठुकराते हुए भी हमेशा उस पर विश्वास रखती है और जब उसके यहाँ से एक बार लौटती है तो कहती है "अब मेरे मुँह में पान नहीं है, नहाने भी आई थी, इस समय ज़रा प्रणाम कर तुम्हारा पैर छू जाऊँ ?" सन्ध्या का अपराध इस सज्ञानता (consciousness) के कारण हमारी आँखों में और भी बड़ा हो जाता है।

अरुण ने कितने मार्मिक ढंग से कहा था "मैं शायद इस घर में कभी न आऊँ; किन्तु मुझे घृणा न करना सन्ध्या, मैंने कभी कोई घृणित काम नहीं किया", किन्तु इस पर सन्ध्या का दिल न पिघला था। इन्हीं बातों के कारण सन्ध्या और पार्वती के जीवन में सामंजस्य होते हुए भी एक मौलिक असामंजस्य आ गया है, और इसी असामंजस्य के कारण सन्ध्या के ऊपर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ने पर भी हमें सिसक-सिसक कर रोने की इच्छा नहीं होती, जैसे देवदास के मर जाने के बाद पार्वती की इस बात पर होती है "रात में आकर पहुँचे थे न? ओह सारी रात?" 'देवदास' उपन्यास इसी कारण से प्रेमियों के चिर आदर की वस्तु रहेगी, किन्तु 'बामुनेर मेये' उपन्यास एक भयंकर हाहाकारी रोमांचकारी उपन्यास होने पर भी उसका कोई चरित्र हमें हमेशा स्मरण न रहे। 'देवदास' उपन्यास एक सुन्कर गीतिकाव्य है, तो 'बामुनेर मेये'। वास्तविकतामय गद्य है। 'देवदास' उपन्यास में भी समाज पर आघात है, किन्तु वह आघात मृदु है, उसको समझने के लिए तर्क करना पड़ता है, किन्तु 'बामुनेर मेये' के आघात से तो समाज चारों खाने चित् गिरा है। जातिभेद का यदि कोई उसूल है तो वह जन्म की पवित्रता (purity of birth) पर निर्भर है, किन्तु इस पर कोई भी भरोसा नहीं है, यही शरत् बाबू का वक्तव्य है। सन्ध्या ही नहीं, बड़े से बड़ा तार्किक तथा पवित्रतावादी अपनी वंशावली की पवित्रता (purity of the stock) का दो ही तीन पुश्त तक की गारंटी कर सकता है कि उसमें कुछ मिलावट (adulteration) नहीं हुआ, याने यही कह सकता है कि उसकी माँ, दादी, परदादी, लकड़दादी सती-साध्वी थीं, किन्तु यह दावा करना कि आब्रह्मस्तम्ब पर्यन्त सभी क्षेत्रों में नस्ल क़ायम रही यह केवल अवैज्ञानिक ही नहीं रोज़मर्रे के तजर्बे के विरुद्ध है। और इस बात को जहाँ मान लिया तहाँ जातिभेद चाहे वह मुग़ल, पठान नाम से हो चाहे कुलीन कैवर्त नाम से हो वह कहीं का नहीं रहता।

शरत् बाबू ने इस उपन्यास की पश्चाद्भूमि को भी इस परिणाम का अनुयायी बनाया है। गोलोक हिन्दू समाज का देशपूज्य व्यक्ति है, किन्तु वह अपनी साली को उपपत्नी के रूप में रखता है (शरत् बाबू ने नहीं लिखा; किन्तु रासमणि भी कदाचित् उसकी उपपत्नी या कम से कम दलाल थी), उपपत्नी के गर्भ रह जाने पर वह उसे भ्रूणहत्या करने के लिये प्रेरित करता है, किन्तु वह राज़ी नहीं होती तो प्रियनाथ के साथ उसको बदनाम करने को तैयार होता है। गोलोक की ही तरह के लोग हिन्दू समाज के माथे के मणि हैं, मुकुन्द ब्राह्मण की तरह लोग इस समाज की नस्ल को शुद्ध रखने के इनचार्ज हैं, फिर यह समाज रसातल को क्यों न जाय? इसी में उसके सदस्यों का भला है।

अब इस उपन्यास के सम्बन्ध में एक बात रह गई, वह यह कि हमने सन्ध्या के विरुद्ध प्रेम पर जातिभेद को तरजीह देने के लिये बिगड़े हैं, किन्तु हम इसके साथ इस बात को पाठक को याद दिलाना चाहते हैं कि सन्ध्या को हमने ऐसा बुरा-भला समाज की एक औसत दर्जे की उपज समझकर किया है। सन्ध्या के पीछे हिन्दू समाज खड़ा है, इसको हम भूल नहीं सकते। सन्ध्या ने जो कुछ किया वह सब समाज के दबाव के ही कारण बहुत कुछ किया, सच बात तो यह है कि जब उसके पिता के जन्म का रहस्य खुल जाता है तब भी वह स्वाधीन नहीं हुई है, वह जिस समय अरुण के पास विवाह का अनुरोध लेकर जाती है उस समय वह खूँटे से तो खुल चुकी है, किन्तु उसकी आदत अभी नहीं गई, वह दूसरा खूँटा ढूँढ़ने अरुण के पास गई। ऐसा उसने प्रेमवश नहीं खूँटा की भक्ति के वश किया, समाज ने उसको ऐसा ही बनाया कि वह कभी स्वाधीन न हो, हमेशा समाज तथा गुलामी के गँदले और छिछले पानी में बुलबुला काटती रहे और कभी नदी के ताजे जीवन का आस्वाद न पावे। जब अरुण भी तत्क्षण उसे खूँटा देने से इनकार करता है, उसी मुहूर्त से वह सचमुच स्वतन्त्र

होती है, उसी मुहूर्त से उसे उसके कामों तथा विचारों की सोलहों आने ज़िम्मेदार हम मान सकते हैं। हम एक बात साथ ही और कह दें कि अरुण को हम आदर्श नहीं समझते। हम उसे केवल एक औसत दर्जे से अच्छा व्यक्ति ही समझते हैं। यह तो ठीक ही है कि सब कुछ खुल जाने के बाद वह एकाएक सन्ध्या के विषय में अपनी राय निश्चित नहीं कर पाता और समय लेता है, तत्क्षण अपना मत इस विषय में एक व्यावहारिक क्रान्तिकारी ही कर सकता है और हम कई बार कह चुके हैं कि अरुण कोई क्रान्तिकारी नहीं है।

ऊपर जिन पुस्तकों का विशद परिचय दिया गया उनसे प्रकट है कि सभी पुस्तकों में पुरुष और स्त्री के सम्बन्ध में जो धींगाधींगी तथा पोंगापन्थी है, उसी पर शरत् बाबू ने फौजकशी की है। मैं पहिले ही स्वयं शरत् बाबू के वचन उद्धृत कर चुका हूँ। वे कहते हैं "समाज नामक वस्तु को मैं मानता हूँ, किन्तु देवता करके नहीं। पुरुष तथा स्त्रियों के बहुत दिनों की पूंजीभूत मिथ्या, अनेकों कुसंस्कार तथा उपद्रव इसमें सम्मिलित हैं। हमारे खान-पान तथा रहन में उसका शासनदंड विशेष सतर्क नहीं है, किन्तु नर-नारी के प्रेम में उसकी निर्दय मूर्ति दिखाई दे जाती है।" इत्यादि (देखिए पृ० १८८)

शरत् बाबू को मध्यवित्त श्रेणी की इसी समस्या ने सब से अधिक व्यथित तथा क्षुब्ध किया, सन्देह नहीं यह एक बहुत ही बड़ी समस्या है। इस समस्या पर शरत् बाबू के ऐसे एक परम प्रतिभावान लेखक के लिखने की ज़रूरत थी, शरत् बाबू के उपन्यासों ने बंगाल के युवकों को इस समस्या की ओर सचेतकर तथा यह दिखलाकर कि प्राचीनों का अनुसरण फलदायक नहीं हो सकता, प्रगति की एक बड़ी सेवा की है। शरत् बाबू इस समस्या को वस्तुवाद के अनुरूप तफसील के साथ अपनी पुस्तकों में पेश करते हैं; किन्तु समाधान बताने की चेष्टा वे अवसर नहीं करते और जहाँ करते भी हैं वहाँ वे बहुत ही अस्पष्ट हैं। वे केवल इतना ही महसूस कराकर छोड़ देते हैं कि जो कुछ है उसमें

असन्तोष के यथेष्ट कारण हैं। इससे आगे वे अक्सर नहीं जाते। यह मैं मानता हूँ कि कलाकार केवल प्रचारक नहीं है, किन्तु जिन समस्याओं के समाधानों के अभाव के कारण समाज में हाहाकार मचा हुआ है उन पर कला की निस्पृहता की दुहाई देकर बिलकुल ही उदासीन रह जाना मैं समझता हूँ किसी प्रकार उचित नहीं हो सकता।

स्त्री-पुरुष समस्या के आगे शरत् बाबू शायद ही गये हैं। यही उनकी सीमा है, इसका अर्थ यह नहीं है कि उनकी रचनायें इकरस हैं। सच बात तो यह है कि उनकी रचनाओं में इकरसता का कहीं नाम भी नहीं है। यह समस्या इतनी बड़ी है कि इस समस्या के अन्दर बहुत-सी समस्याएँ आ जाती हैं। विवाह-समस्या के साथ धर्म, जाति-भेद, धन की बिगाड़नेवाली ताक़त कई समस्याओं का तो सीधा सम्बन्ध है। शरत् बाबू ने इसी कारण धर्म तथा जातिभेद के ऊपर भी अपनी तोप का मुँह कर दिया है। धन की बिगाड़नेवाली ताक़त का कुछ दिग्दर्शन 'गृहदाह' में है जहाँ मध्यवित्त महिम को अचला के मामले में धनी सुरेश के सामने बहुत कुछ धनाभाव के कारण पीछे हटना पड़ा है। 'गृहदाह' में भी शरत् बाबू ने इस पहलू पर ज़ोर नहीं दिया है, मालूम होता है वह यों ही बहुत ही गौण रूप से आ गया है।

'पल्ली-समाज' में ग़रीबी का अच्छा चित्रण है; किन्तु उसमें गाँव की ख़राबियों के लिए सब ज़िम्मेदारी गाँव के ग़रीबों पर डालने की जो मनोवृत्ति इस पुस्तक में स्पष्ट है वह ग़लत तथा गुमराहकुन है। जैसे गाँव के लोगों की इच्छा करते ही सब आप से आप सुधर जायगा। यह बात सच है कि यदि ग़रीब अच्छा होना चाहें तो एकाध मामले में अपनी थोड़ी बहुत उन्नति कर सकते हैं, किन्तु जिस कई प्रकार के शोषण के कारण वे निरन्तर डूबे जा रहे हैं उसकी ओर शरत् बाबू ने अपने उपन्यासों में कहीं संकेत नहीं किया। मध्यवित्त श्रेणी की बेकारी की ओर भी उनकी दृष्टि नहीं है, उनके क़रीब-क़रीब सब पात्र

धनी नहीं तो कम से कम उन्हें रोटी-दाल की कोई फिक्र नहीं है। 'पल्लीसमाज' के रमेश की तरह शरत् बाबू के विचार सुधारवादी हैं; वे एक स्त्री-पुरुष समस्या के तथा द्वितीय धर्म के अतिरिक्त किसी भी समस्या के विषय में क्रान्तिकारी विचार नहीं रखते।

यों तो शरत् बाबू ने अपने साहित्यिक जीवन के दौरान में बहुत सी कहानियों की रचना की है किन्तु उनकी प्रतिभा मुख्यतः उपन्याकार की प्रतिभा थी। उनकी कहानियों को पढ़ने से अक्सर यह धारणा होती है कि उन्होंने उपन्यास को संक्षिप्त करके लिखा है तथा कहानी के छोटे दायरे में उनकी प्रतिभा कुण्ठित हुई है। हमारे लिये यह संभव नहीं है कि हम उनकी सब कहानियों की आलोचना करें। हम केवल उनकी कहानियों के विषय में कुछ साधारण मन्तव्य करके आगे बढ़ जायेंगे। छोटी कहानी में एक पहलू ही पर रोशनी डाली जा सकती है; किन्तु शरत् बाबू ने अपनी कहानियों में भी द्वन्द तथा जीवन की बहुमुखिता दिखाने की चेष्टा की है और चूँकि छोटे दायरे में ऐसा सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता, इस कारण वे कम सफल रहे। इससे एक बात और ज्ञात होती है कि शरत् बाबू के पास कथानकों की कमी नहीं थी नहीं तो वे इस प्रकार उपान्यास के लायक कथानकों को कहानियों में ख़र्च न कर देते। 'आँधारे आलो' नामक कहानी में बिजली के प्रति सत्येन्द्र के प्रेम का अच्छा चित्रण है। यह कहानी मध्यवित्त श्रेणी की है। इसमें भी वेश्या है। 'पथनिर्देश' कहानी भी मध्यवित्त श्रेणी की प्रेमकहानी है। इसका कथानक दायरे की ह्रस्वता के कारण परिस्फुट नहीं हो पाया। 'आलो ओ छाया', 'मन्दिर' और 'अनुपमार प्रेम' इन तीनों कहानियों में निषिद्ध प्रेम का चित्र है समाज और हृदय का द्वन्द। 'आलो ओ छाया' में यज्ञदत्त और बाल-विधवा सुरमा के समाज-निषिद्ध प्रेम का चित्र खींचा गया है। यदि यह कहानी न होकर उपन्यास के रूप में रचित होता, तो इसका पूरा सौंदर्य प्रस्फुरित होता। यज्ञदत्त का सुरमा के प्रति साथ ही प्रतुलकुमारी के प्रति पहले कर्त्तव्य

और प्रेम का द्वन्द एक उपन्यास के लिये ही उपयुक्त कथानक होता। 'मन्दिर' गल्प बहुत सफल है, किन्तु यह भी मध्यवित्त श्रेणी का ही चित्र है। 'अनुपमार प्रेम' के चरित्र सुस्पष्ट है। 'छवि' कहानी बहुत सुन्दर है। इसका वातावरण काव्यमय है। 'विलासी' कहानी में घटना की कमी नहीं; किन्तु लेखक ने इस बहाने हृदयहीन सनातन समाज को गालियाँ ही दी हैं। 'अनुराधा' कहानी में 'दत्ता' का कथानक कुछ आ गया है। 'काशीनाथ', 'बोझा', 'दर्पचूर्ण' तथा 'सती' मध्यवित्त श्रेणी के दाम्पत्यजीवन को लेकर लिखे गये हैं। 'सती' गल्प को डाक्टर सेन ने 'शरत्प्रतिभा का एक श्रेष्ठ दान' बताया है साथ ही यह कहा है कि सर्वदेश और सर्वकाल की श्रेष्ठ कहानियों में इसका स्थान है; किन्तु इसमें निर्मला चरित्र में हम मध्यवित्त श्रेणी की एक स्त्री विमला को पाते हैं। वह सती भी है। साथ- साथ हर बात में शक करती है। इसी प्रकार 'बाल्यस्मृति' और 'हरिचरण' 'एकादशी बैरागी' 'मामलार फल" 'परेश' मध्यवित्तवर्ग के पारिवारिक और सामाजिक जीवन के चित्र हैं।

'अभागीर स्वर्ग', 'बाल्यस्मृति' और 'हरिचरण' ग़रीबों के जीवन को लेकर लिखा गया है, किन्तु इनमें वह बात नहीं जो 'महेश' में है। वह तो शरत् बाबू की रचनाओं में एक निराला ही स्थान रखता है।

शरत् बाबू की रचनाओं में एक यह 'महेश' ही ऐसी कहानी है, जिसमें ग़रीब की आह का स्वरूप शोषण स्पष्ट हुआ है। यदि इस गल्प का शीर्षक 'प्रोलेटारियट का जन्म' होता तो शायद यह एक सोवियट गल्प हो जाता। हम संक्षेप में इस गल्प का सार देते हैं।

महेश

गाँव छोटा है, ज़मींदार भी छोटे हैं, किन्तु उनका दबदबा गाँव पर बैठा हुआ है। तर्करत्न उनके पुरोहित हैं, वे ज़मींदार साहब से भी अधिक रोब रखते हैं। वे लौटते हुए ग़फ़ूर किसान के गिरे हुए घर के सामने पुकारने लगे " ग़फ़ूरा, अबे, घर में है ?" उसकी दस वर्ष की

लड़की बोली "अब्बा बुख़ार में पड़े हैं, क्या काम है ?" तर्करत्न क्रोध में बोल उठे "बुला हरामजादे को।" ख़ैर 'हरामज़ादा' आया, तो तर्करत्न बोले "सबेरे मैं देख गया तेरा बैल बँधा है, अब लौटती बार देख रहा हूँ, अब भी बँधा है, यदि ज़मींदार साहब ने सुन लिया कि तू गोहत्या कर रहा है तो याद रहे तेरी ख़ैर नहीं।" किसान बोला "हजूर बीमार हूँ, ज़रा पकड़कर कुछ घास ही खिला लाऊँ, इसकी हिम्मत नहीं।" तर्करत्न गरम/ होकर बोले "तो कुछ कटिया ही डाल दे, अच्छा साले वह भी सब बेच डाला ? साले कसाई।" ग़फ़ूर की आँखों में आँसू आ गये "तो हजूर, इस साल कुट्टी काटता तो किस चीज़ की ? ज़मींदार तो सब कटवा ले गये। महेश को जिलाऊँ तो कैसे जिलाऊँ।" तर्करत्न ने कहा "ओह ! उसका नाम महेश रक्खा है ? तो साले ज़मींदार का बाक़ी रहा होगा, उन्होंने ले लिया होगा। साले रामराज्य में रहते हो, किन्तु फिर भी मालिक की निंदा करते हो। नीच हो न।" ग़फ़ूर समझाने लगा। निन्दा वह नहीं करता, दो साल से अकाल-सा पड़ा है यही कह रहा था। अकस्मात् वह तर्करत्न के पैरों पर गिर पड़ा, "पंडितजी, कुछ दो चार पसेरी कटिया उधार ही दे दीजिए।" तर्करत्न ने तड़ाक से पैर हटा लिया, बोले "साले छू देगा क्या ?" ग़फ़ूर गिड़गिड़ाता हुआ कहता रहा "पंडितजी इतना तुम दोगे, तो तुम्हें कुछ जान भी न पड़ेगा, हम न खाकर रहें कोई बात नहीं, लेकिन यह गूँगा जानवर है, सिर्फ ताकता रहता है" और उसकी आँखों से टपटप आँसू गिरते हैं। तर्करत्न चले गये। ग़फ़ूर बैल की ओर गया, उसका गला खुजआया और धीरे-धीरे बोला "तू मेरा बेटा है, आठ साल तक हमें कमाकर खिलाने के बाद बूढ़ा हो गया, तुझे हम पेटभर खिला नहीं पाते महेश, लेकिन तू तो जानता है तुझे मैं कितना प्यार करता हूँ। ज़मींदार ने जो थोड़ा चरागाह था उसे भी पैसे के लोभ से बेच दिया अब हम ऐसे साल में तुझे क्या खिलाकर जिलायेंगे ?" उसके आँसू बैल की पीठ पर गिरने लगे। आँसू पोंछकर ग़फ़ूर ने इधर-उधर

ताककर जल्दी से टूटे घर की नीची छत से थोड़ा सा 'खर' खींचकर महेश के सामने डाल दिया, और बोला "जल्दी खाले नहीं तो......"

इतने में अमीना ने पुकारा "अब्बा !" ग़फ़ूर बोला "क्यों बेटी ?" "आओ खाना खाओ" कहकर वह कमरे से निकल आई, और सामने देखकर बोली "फिर तुमने महेश को छत से 'खर' लेकर दिया।" ठीक यही डर उसे था। उसने कहा "बेटी पुराना खर है, खुद बखुद गिर पड़ता है।" अमीना बोली "मैंने तो भीतर से सुना अब्बा तुमने 'खर' खींचा।" वह फिर भी इधर-उधर करने लगा। अमीना बोली "ऐसा करोगे तो यह भी दीवार गिर जायगी।" इस बात को ग़फ़ूर से अधिक और कौन जानता था ? खैर अमीना ने कहा "हाथ-मुँह धोकर चलो खाने।" ग़फ़ूर ने कहा "अच्छा ज़रा माड़ तो दे, महेश को पिला दें अमीना बोली "अब्बा आज तो माड़ भात में ही सूख गया।" सुनकर ग़फ़ूर सन्न हो रहा, ऐसे दुःख के दिन में माड़ भी खराब नहीं किया जा जा सकता, यह दस वर्ष की अमीना समझती थी। खाते समय ग़फ़ूर ने कहा "बुख़ार है।" फिर सोचकर बोला "इस भात को महेश को न दे दो।"

सात दिन बाद अमीना खबर लाई कि महेश को कांजीहौज पहुँचाया गया, क्योंकि उसने किसी के बाग़ के पौधों को खाया था। अमीना बोली "छुड़ाने न जाओगे ?" वह संक्षिप्त रूप से बोला "नहीं।" "लेकिन अब्बा कहते हैं, तीन दिन तक छुड़ाया नहीं गया तो कसाइयों के हाथ बेच दिया जायगा।" अमीना बोली। ग़फ़ूर बोला "बेचने दो।" रात को वह चुपचाप उठा और बनिये के पास पीतल का लोटा गिरवी रखकर एक रुपया लिया, अगले दिन महेश अपनी जगह पर दिखाई पड़ा।

एक बूढ़ा मुसलमान महेश को ध्यान से देख रहा था। ग़फ़ूर पास ही चुपचाप बैठा था। बुड्ढे ने बड़ी देर तक महेश को घूरने के बाद

एक दस रुपये का नोट गफ़ूर के हाथ में देकर बोला "अच्छा लो पूरे दस लो।" फिर वह महेश की ओर जाकर रस्सी खोलने लगा, तो गफूर एकदम लपककर उठा, और नोट तथा पेशगी के दो रुपये भी वापस कर दिये, और बोला "जाओ मैं नहीं बेचता।" कसाई बोला, "मियाँ उड़ो मत, दबाव डालकर दो रुपये और चाहते हो न? सो ले लो, चमड़े का जो कुछ दाम है, नहीं तो इसमें माल क्या है!" यह सुनकर गफ़ूर तोबा तोबा करके कमरे में घुस गया, और वहां से कसाइयों को उसने कहा कि यदि वे सीधे से नहीं गये, तो ज़मींदार के आदमियों को बुलाकर जूतों से पिटवाकर उन्हें निकलवा देगा। वे चले गये।

यह ख़बर ज़मींदार के यहाँ पहुँची कि गफ़ूर बैल को कसाई के हाथ बेच रहा था, बस ज़मींदार ने बुलाकर सैकड़ों झाड़ बताई। गफ़ूर ने कसूर मान लिया, कान पकड़ कर उठा-बैठा तब कहीं उसकी जान बची। सबने कहा "ज़मीन्दार साहब के प्रताप के कारण इतना बड़ा पाप होते-होते बच गया।"

किसी तरह दिन बीतता गया। गफ़ूर ने कभी मज़दूरी नहीं की थी, किंतु अब वह खेत में मज़दूरी की तलाश में फिरता। मजदूरी कहाँ लगती, वह झुँझलाकर लौट आता, और लड़की पर नाहक बिगड़ता। एक दफे आकर उसने भात माँगा तो लड़की ने कहा कि भात नहीं बना क्योंकि चावल न था। इस पर उसने कहा "हराम-ज़ादी! तू सब खा डालती है, बूढ़ा बाप चाहे न खाकर मरे।" इत्यादि। उसने कहा "पानी ला।" पानी भी न था, क्योंकि शायद अमीना को कुएँ से पानी लाने का मौका न लगा था, ज़मींदार के कुएँ पर वह चढ़ नहीं सकती थी, किंतु गफ़ूर ने उसे एक थप्पड़ जमा दिया। फिर वह स्वयं भी कन्या को पकड़कर रोने लगा, इस मातृहीन लड़की को उसने कितने प्यार से पालन किया था। इतने में ज़मींदार के यहाँ से एक सिपाही आया कि चलो। गफ़ूर ने कहा "अभी खाया-पिया नहीं, बाद को जाऊँगा।" इस पर सिपाही ने गाली

देकर कहा "जूतों से पीटते हुए ले चलूँगा।" ग़फ़ूर को क्रोध आ गया, उसने कहा "मल्का के राज में कोई किसी का गुलाम नहीं है, लगान देकर रहता हूँ न जाऊँगा।" किन्तु उसकी बात न चली। एक घंटे बाद जब वह ज़मींदार के यहाँ से लौटा तो उसका मुँह सूजा हुआ था। बात यह थी कि महेश ने छूटकर ज़मींदार के बाग़ में फूलों के पौधे खाये थे तथा जो धान सूख रहा था उस पर मुँह मारा था। इसी की सज़ा ग़फ़ूर को मिली थी। ग़फ़ूर इस हालत में घर आया तो देखा कि अमीना खड़ी रो रही है, सामने फूटा घड़ा पड़ा है और मुँह लगाकर महेश मरुभूमि की तरह उसमें से निकले हुए पानी को पी रहा है। ग़फ़ूर क्रोध के मारे न आव देखा न ताव और सामने जो हल रक्खा था उसे महेश के सिर पर ज़ोर से पटक दिया। केवल एक बार महेश ने सिर उठाने की चेष्टा की, किन्तु न उठ सका। उसका भेजा खुल गया था उसकी आँखों में आँसू आये, शायद कुछ रक्तविन्दु भी। इसके बाद उसने हाथ-पैर फैला दिये और मर गया।

अमीना रो पड़ी "अब्बा! तुमने क्या किया, हमारा महेश मर जो गया।" गफ़ूर न हिला न डुला न कुछ बोला। वह अपने खाट पर लेटा रहा। दो घंटे के अन्दर दूसरे गाँव से मोची आकर महेश को टाँगकर ले गये। उनके हाथों में पैनी छूरी देखकर ग़फ़ूर ने सिहरकर आँखें बन्द कर लीं। पड़ोसियों ने कहा "ज़मींदार ने प्रायश्चित की व्यवस्था के लिए तर्करत्न के पास आदमी भेजा है, प्रायश्चित के ख़र्च में तुझे घर का एक-एक बाँस बेच डालना पड़ेगा।"

ग़फ़ूर ने इन बातों का उत्तर नहीं दिया, दो घुटनों पर सिर रखकर बैठा रहा। बड़ी रात गये ग़फ़ूर ने लड़की को जगाकर कहा—"चलो अमीना हम चलें।" अमीना बोली "कहाँ?" ग़फ़ूर बोला "चटकल में काम करने।" लड़की आश्चर्य से चकित होकर घूरने लगी। इसके पहले बड़े-बड़े दुःख पड़े, लेकिन वह चटकल में काम करने को यह कहकर राज़ी न हुआ था कि वहाँ मज़हब नहीं रहता, लड़कियों की

इज्ज़त-आबरू नहीं रहती। अमीना पानी पीने का पीतल का लोटा तथा पीतल की थाली साथ में ले रही थी, किन्तु वह बोला "इन सब को रहने दो बेटी, उनसे मेरे महेश का प्रायश्चित किया जायगा।" अँधेरी रात में वह लड़की का हाथ पकड़कर बाहर हो गया, इस गाँव में उसका न कोई रिश्तेदार था न मिलनेवाला। आँगन पार कर सड़क के किनारे उस बबूल के नीचे आकर जहाँ महेश मरा था एकाएक रोने लगा। वह नक्षत्रखचित काले आकाश की ओर मुँह उठाकर बोला "अल्लाह, मुझे जितनी खुशी हो सज़ा देना, लेकिन मेरा महेश प्यास से मरा है। उसके चरने के लिए इतनी-सी ज़मीन भी न रक्खी, जो तुम्हारी दी हुई घास, तुम्हारा दिया हुआ प्यास का पानी उसे न पीने दिया, उसका क़सूर तुम कभी माफ़ न करना।"

× × ×

यह कहानी "बंगवाणी" में प्रकाशित हुई थी, स्पष्ट है कि इस कहानी में शरत् बाबू ने एक दूसरे ही मार्ग पर चलने की कोशिश की थी, किन्तु दुख है कि ढर्रे पर वे अधिक दूर तक नहीं गये। शरत् बाबू अपनी प्रतिभा को यदि इस ढर्रे पर ले जाते तो सन्देह नहीं कि भारत के शरत् मात्र न रहकर यहाँ के गोर्की भी हो सकते। शरत् बाबू ने इस कहानी में ग़रीबी के साथ जो सहानुभूति दिखाई है तथा उसका जो निदान (diagnosis) किया है वह बहुत ही वस्तुवादी है। समाज में धनी दरिद्रों का जो शोषण कर रहे हैं, उसका ऐसा चित्र न 'पल्ली-समाज' में है न 'अरक्षणीया' में यद्यपि इन दोनों पुस्तकों के बहुत से पात्र ग़रीब हैं।

इस कहानी में शरत् बाबू ने वर्गयुद्ध का अच्छा दिग्दर्शन कराया है। यह द्रष्टव्य है कि किसान मुसलमान है और ज़मींदार तथा उसके पिछलगुए हिन्दू हैं। इस प्रकार सारे बङ्गाल की समस्या सामने आ गई। पृष्ठभूमि में साम्प्रदायिकता का निदान है। कथा का प्रारम्भ इस

प्रकार होता है कि तर्करत्न ग़फ़ूर पर दोष लगाते हैं कि वह बैल को कुछ खाने को नहीं देता। गल्प का अन्त इस प्रकार होता है कि ग़फ़ूर आवेश में आकर बैल को मार डालता है, और हिन्दू ज़मींदार की ओर से कहा जाता है कि उसे इसका ख़र्चीला प्रायश्चित करना पड़ेगा। नतीजा यह है कि वह घर छोड़कर भाग जाता है और चटकल में मज़दूर हो जाता है। इस प्रकार शोषक का धर्म शोषित को लूटने का एक अच्छा साधन सिद्ध होता है। कैसे किसान सर्वहारा होता है, इसका इस गल्प में सुन्दर चित्रण है। डाक्टर सुबोध सेन भी यह मानते हैं कि "महेश, शरत्चन्द्र की श्रेष्ठ कहानी है। विश्वसाहित्य में बहुत कम कहानियाँ ऐसी होंगी, जिनमें इस कहानी की तरह विस्तृति और निविड़ता है। ......वर्णन में बाहुल्य नहीं है, वर्ण की प्रचुरता नहीं है, फिर भी चित्र सर्वांग सुन्दर है।......इस कहानी की एक और विशेषता यह है कि गूँगा प्राणी महेश तक मनुष्य की कहानियों का अंगीभूत होकर दृष्टिगोचर होता है। ऐसा ज्ञात होता है जैसे वह सब कुछ समझ रहा है, वह चुपचाप सभी अन्यायों तथा अत्याचारों को सहन कर रहा है, और जब वे असहनीय हो जाते हैं, तब वह जैसे अन्याय के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए निकल पड़ा है।"

हमने शरत् बाबू का यथासंभव परिचय दिया। शरत्चन्द्र वस्तुवादी हैं भी; क्योंकि वास्तविक जीवन से ही वे अपना ताना-बाना ग्रहण करते हैं; किन्तु वे जैसा कि मैं कह चुका हूँ, वास्तविक का वास्तविक रूप न दिखाकर भावुकतामय रूप दिखाते हैं। सुप्रसिद्ध समालोचक मोहितकुमार मजूमदार* के अनुसार "बँगला कथा-साहित्य में अब तक आदर्शवाद की ही विजय रही। बङ्किम की कल्पना में एक बड़े आदर्श (ideal) का sentiment याने उच्छ्वास है, रवीन्द्रनाथ की कल्पना में Real और ideal के समन्वय की चेष्टा है. शरत-

* आधुनिक बाँगला साहित्य पृ० २७०।

चन्द्र की कल्पना में real का एक emotional रूप है। बङ्किम की कल्पना में वस्तु कोई बाधा न हो सकी, वह कल्पना सम्पूर्ण रूप से निरङ्कुश और निरापद थी, रवीन्द्रनाथ की कल्पना में वस्तु का रूपान्तर हो गया है, जैसे वस्तु की वास्तविकता ही लुप्त हो गई हो। शरत्चन्द्र की कल्पना में वस्तु (real) की समस्या जटिल हो गई है, वस्तु के लिये एक प्रबल आवेग की सृष्टि हुई है। इस त्रिधारा में ही हमारे साहित्य का आदर्शवाद (idealism) शायद खतम हो गया। अब इसके बाद जिस साहित्य की सृष्टि होगी उसमें सादी आँखों से समझना ही उसकी एकमात्र प्रेरणा होगी।"

पथेर दावी

अपूर्व अपने परिवार का सब से छोटा लड़का है। उसके और सब भाई अच्छी नौकरियों में हैं और आधुनिक है, किन्तु वह अपनी माँ की तरह गोब्राह्मण में भक्तिवान् है। उसके सिर पर शिखा है तथा वह एकदशी पूर्णिमा भी रखता है, पूजा-पाठ भी करता है। उसने शुरू से लेकर आख़ीर तक कालेज की सब परीक्षाएँ योग्यता से पास की हैं। उसकी माता करुणामयी घर में अपने अन्य पुत्रों के साथ रहती है, किन्तु वह स्वयंपाक करके खाती है। वह अपनी दूसरी पतो-हुओं के आधुनिक रंग-ढंग को पसन्द नहीं करती थी, और उसने निश्चय किया था कि अपूर्व की शादी किसी निष्ठावती लड़की से करेगी।

अपूर्व अभी परीक्षा के बाद बहुत दिनों से बेकार था। एकाएक एक दिन उसने माँ से कहा—'माँ मुझे एक अच्छी-सी नौकरी मिली है।' बात यह थी कि उसके कालेज के प्रिन्सिपल साहब ने ही इस नौकरी का बन्दोबस्त कर दिया था। बोथा कम्पनी ने बर्मा के रंगून शहर में एक नया दफ़्तर खोला था, वे चाहते थे किसी विद्वान, बुद्धि-मान, सच्चरित्र युवक को वहाँ का भार देकर भेजा जाय। अपूर्व ने

कहा—'मकान के किराये के अतिरिक्त चार सौ रुपये तनख्वाह रहेगी, और कोशिश करने पर भी यदि छै महीने के अन्दर कम्पनी का टाट न उलटवा सकूँ तो तनख्वाह और भी दो सौ बढ़ेगी।' यह कहकर वह हँसने लगा।

किन्तु बर्मा का नाम सुनकर माँ का चेहरा फक पड़ गया। वह निरुत्सुक कंठ में बोली—'तू क्या पागल हो गया अपु, क्या उस देश में कोई कभी जाता है? सुना है वहाँ जातपाँत, आचार-विचार कुछ नहीं है। वहाँ मैं तुझे भेज सकती हूँ? ऐसे रुपये से मुझे कोई मतलब नहीं।'

अपूर्व ने कहा 'रुपयों की उन्हें ज़रूरत भले ही न हो, उसे है—तुम्हारी आज्ञा से मैं भिखमंगा होकर भी रह सकता हूँ किन्तु सारी ज़िन्दगी में भी ऐसी सुविधा क्या फिर आयेगी? बोथा कम्पनी का कुछ अटकेगा तो है नहीं, उसको सैकड़ों व्यक्ति मिल जायेंगे।'

माँ फिर भी राज़ी नहीं होती, वह कहती है—'मैंने तो सुना है वह एकदम म्लेच्छ देश है?' जब माँ का कुछ भी नहीं चला तो बोली—'आगामी बैशाख में मैंने तुम्हारी शादी का निश्चय किया है।' अपूर्व बोला—'एकदम तुम निश्चय कर चुकी हो, अच्छी बात है। जभी तुम बुला भेजोगी तभी आकर तुम्हारी आज्ञा का पालन कर जाऊँगा।'

करुणामयी का जब अपूर्व से इस प्रकार कुछ कहते न बना तो वह अपने बड़े लड़के विनोदकुमार के पास गई कि शायद उधर से कुछ रोक-थाम हो, किन्तु वहाँ और भी सूखा जवाब मिला।

अन्त में अपूर्व को माँ ने घर के पुराने नौकर तिवारी के साथ रवाना किया। करुणामयी ने तिवारी को इसलिए चुना कि वह छूत-छात के मामले में बहुत कट्टर था, और इस प्रकार वह करुणामयी का श्रद्धाभाजन हो चुका था। उनको पूर्ण विश्वास था कि ऐसे रसोइया की देख-रेख में रहने पर अपूर्व म्लेच्छ देश में रहकर भी धर्म से च्युत

नहीं होगा। जहाज़ पर चूड़ा चबाते हुए, सन्देश खाते हुए तथा हरे नारियल का पानी पीते हुए अर्धमृत हालत में ये दोनों जाकर रंगून के घाट पर पहुँचे। वहाँ बोथा कम्पनी के दो दरवान तथा एक मद्रासी मुन्शी ने उनका स्वागत किया। उनके लिये एक मकान तीस रुपये भाड़े पर लिया गया था। वहाँ उनको ले जाया गया। मकान का चेहरा देखकर अपूर्व सन्नाटे में हो गया। न तो उसमें कोई श्री थी, न कोई ढंग था। एक पतली-सी लकड़ी की सीढ़ी ऊपर उठ गई थी। इस सीढ़ी से मकान के छै किरायेदार काम लेते हैं। यह किसी की निजी नहीं थी। अगर इससे कहीं किसी का पैर फिसलता तो वह पहले पत्थर जड़े हुए राजा के राजपथ में गिरता, फिर उसके बाद उन्हीं के अस्पताल में जाना पड़ता, आगे जो तृतीय गति हो सकती है उसे न सोचना ही अच्छा है।

दरवान ने दाहिनी ओर के दोमंज़िले के एक दरवाज़े को खोलकर कहा—'साहब यह आपका मकान है।' इसी के सामनेवाले बाईं ओर के बन्द किवाड़े को देखकर अपूर्व ने पूछा—'इसमें कौन रहता है?'

दरवान ने कहा—'सुना है एक चीनी साहब इसमें रहते हैं।' अपूर्व ने जब पूछा कि सिर के ऊपर तिमंज़िले पर कौन रहता है? तो उसने कहा—'कोई काले साहब रहते हैं, शायद कोई मद्रासवाले होंगे।' अपूर्व फिर एक बार सन्नाटे में हो गया। चारों तरफ़ अपने घनिष्ट पड़ोसियों का इस प्रकार परिचय पाकर उसने गहरी साँस ली। जिधर देखो उधर म्लेच्छ ही म्लेच्छ थे। वह अपने कमरे में घुसा तो उसका दिल और भी बैठ गया।

तिवारी को रसोई करते छोड़कर अपूर्व तारघर के लिए रवाना हो गया। पकाने के सब सामान साथ ही में थे। करुणामयी ने सभी चीज़ें थोड़ी-थोड़ी गठिया दी थीं। मकान के बाहर निकलते ही अपूर्व को पता चल गया कि यह देशी तथा विलायती मेम तथा साहबों का मुहल्ला था। उस दिन ईसाइयों का कोई त्योहार था, प्रत्येक मकान

पर उसका कोई न कोई चिह्न था। अपूर्व ने जब दरवान से पूछा कि रंगून में बहुत से बंगाली भी तो रहते हैं, उनके मुहल्ले में मकान न चुनकर यह मुहल्ला क्यों चुना गया, तो इसके उत्तर में उसने कहा 'अफ़सर लोग इसी गली को ज़्यादा पसन्द करते हैं।' इस बात पर क्या कहा जाता। अपूर्व तारघर पहुँचा तो मालूम हुआ कि मद्रासी तारबाबू टिफिन करने गये हैं। घंटा भर बाद जब वे आये तो वे घड़ी की तरफ़ देखकर बोले—आज छुट्टी का दिन है, दो बजे के बाद दफ़्तर बन्द हो चुका है; क्योंकि इस समय दो बजकर पन्द्रह मिनट हो चुका है।

अपूर्व ने बिलकुल झुँझलाकर कहा—'इसका दोष तुम्हारा है, मेरा नहीं। मैं तो यहाँ एक घंटे से डटा हूँ।' इसपर उसने अपूर्व के मुँह की ओर ताककर बिना किसी हिचकिचाहट के कहा—'नहीं मैं तो सिर्फ दस मिनट के लिये ग़ायब था।' अपूर्व ने इस पर उसके साथ तर्क किया, झगड़ा किया, यहाँ तक कि रिपोर्ट करने का डर दिखाया, किन्तु असर कुछ भी नहीं। वह निर्विकार चित्त से अपने काग़ज़ात को दुरुस्त करने लगा। और समय नष्ट करना निष्फल समझकर वह बड़े डाकघर को रवाना हो गया, और वहाँ से किसी प्रकार माँ को तार भेज सका। माँ ने यह बार-बार वादा करवा लिया था, इस कारण यह तार उसी दिन भेजना ज़रूरी था।

जब वह थका-माँदा झल्लाया हुआ अपने किराये के मकान पर पहुँचा तो सीढ़ी पर पैर रखते ही उसने किवाड़े के अन्दर से देखा कि तिवारी एक बड़ी लाठी बार-बार ठोक रहा है और अनर्गल रूप से बकता जा रहा है, और उसका प्रतिपक्षी खाली बदन पतलून डाटे हुए तिमंजिले के कोठे से अपने खुले दरवाज़े के सन्मुख खड़ा रहकर हिन्दी और अँग्रेज़ी में उसका जवाब दे रहा है, और एक घोड़े का चाबुक उठाकर बीच-बीच में हवा में झटकारता जा रहा है। तिवारी

उसको नीचे बुला रहा है, और वह तिवारी को ऊपर बुला रहा है, और यह सौजन्य का आदान-प्रदान जिस भाषा में हो रहा है उसको न कहना ही अच्छा है।

अपूर्व की समझ में नहीं आया कि इतनी ही देर के अन्दर तिवारी ने ऊपर के साहब से इतनी घनिष्टता कर ली। उसको देखकर दोनों पक्ष में नई जान सी आ गई। तिवारी ने उसे देखकर लाठी और भी ज़ोर से ठोककर एक मधुर संभाषण किया, साहब ने उसका जवाब देते हुए चाबुक को ज़ोरों से फटकारा। अपूर्व बीच में पड़कर तिवारी को कमरे के अन्दर घसीट ले गया, तो कमरे के अन्दर जो हाल हुआ था उसे दिखाते हुए तिवारी ने कहा—यह देखिये हरामज़ादे साहब ने क्या कांड किया है। सचमुच जब अपूर्व ने देखा खिचड़ी की हाँड़ी से अभी तक मसाले की खुशबू निकल रही है, किन्तु उसके ऊपर-नीचे, आस-पास पानी बह रहा है। अभी के बिछे हुए साफ बिस्तरे पर मैला काला पानी तैर रहा है। कुर्सी पर पानी, मेज़ पर पानी, किताबें भींगी हुई, अजीब हालत थी। उसके क़ीमती नये सूट पर कई दाग़ लगे हैं।

अपूर्व ने पूछा—यह सब क्या हुआ? तिवारी ने ऊँगली से ऊपर छत की ओर दिखाकर कहा—यह उस साहब साले का काम है, वह देखिए!

सचमुच लकड़ी के छत के दरार से तब तक पानी टपटप करके गिर रहा था। तिवारी ने जो बताया वह संक्षेप में यों है। अपूर्व के तारघर के लिये रवाना होने के कुछ ही मिनट बाद ऊपर के साहब नशे में चूर होकर लौटे। पहले तो गीत, फिर नृत्य शुरू हुआ। क्रमशः इस संगीत ने ऐसा दुर्दान्त रूप धारण किया कि तिवारी को आशंका हुई कि यह लकड़ी का छत साहब के इतने बड़े आनन्द को वहन न कर सकेगा! जो कुछ भी हो, इसके बाद ऊपर से पानी गिरने लगा, तब तिवारी ने मना किया। इस पर दोनों में झगड़ा शुरू हुआ, जिसका कुछ कुछ रूप अपूर्व के सामने आया था। अपूर्व ने कहा—क्या साहब के साथ और कोई है? तिवारी ने कहा—शायद है, कोई उसे रोक रही थी।

अपूर्व ने कुछ देर सोचकर कहा—ईश्वर न दिलाने पर ऐसे ही होता है, मुँह से ग्रास छिन जाता है। चलो हम लोग समझें जहाज़ में ही हैं, चूड़ा वगैरह खाकर ही गुज़र कर लें। तिवारी इसका बन्दोबस्त करते-करते रसोई के कमरे से बोला—बाबू, यहाँ रहना न चलेगा। फिर तिवारी ने कुछ सोचकर कहा—क्रोध के मारे अच्छा काम नहीं किया, साहब को मैंने बहुत गालियाँ दीं। अपूर्व ने कहा—हाँ, गालियाँ देकर उसको पीटना उचित था। तिवारी के दिमाग़ में इस समय क्रोध के बदले सुबुद्धि का उदय हो रहा था, उसने प्रतिवाद करते हुए कहा—नहीं बाबू नहीं, हज़ार हो, वे लोग साहब हैं हम लोग बंगाली हैं। तिवारी ने रुककर फिर कहा—कल सबेरे ही न, दरवान जी को कहकर यहाँ से उठकर न चल दिया जाय।

तिवारी तो अपने काम में लग गया, किन्तु उसी की बात का सूत्र पकड़कर तथा ऊपर रहनेवाले उस फिरंगी के व्यवहार का स्मरण कर अकस्मात् अपूर्व का समस्त चित्त क्रोध से तिलमिला उठा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि यह केवल व्यक्तिगत रूप से उसकी तथा उस शराबी की ही बात नहीं है। सब मिलकर हम रोज़बरोज अपमान को सहते जाते हैं, तभी तो इन लोगों का हौसला दिन-बदिन बढ़ता ही गया है। नीरव रहकर सब कुछ सहते-सहते ही हम लोगों ने इनको सिर चढ़ा दिया है। इसी का ग्लानियुक्त प्रकाश इस बात में हो रहा है कि आज हमारे नौकर ने ही मुझे यह उपदेश दे दिया कि भागकर हम जान बचावें। ऐसा करने में उसे ज़रा भी लज्जा नहीं आई। यह सब बात सोचते-सोचते अपूर्व का दिमाग़ इतना गरम हो गया कि वह तिवारी की छोड़ी हुई लाठी को उठाकर एक ही छलाँग में ऊपर की मंजिल में पहुँचा और साहब के बन्द कमरे के किवाड़ों पर ज़ोर से धक्का देने लगा। थोड़ी देर में डरे हुए स्त्रीकंठ से आवाज़ आई—कौन है? अपूर्व ने कहा—मैं नीचे, मुझे उस आदमी से काम है। उस आवाज़ ने कहा—क्या? अपूर्व ने कहा—मैं उसे दिखाना चाहता हूँ कि उसने

मेरा क्या नुकसान किया है। उस आवाज ने कहा—वे सो गये। अपूर्व ने फिर भी जगाने की कोशिश की, किन्तु सब व्यर्थ। अन्त में उसे बक-झककर लौट आना पड़ा। हाँ, उस आवाज़ ने शराबी की ओर से माफी माँगी, कहा—आप विश्वास रक्खें जो नुक़सान आपका हुआ है वह सब कल पूरा कर दूँगी।—लड़की की इस नरम बातचीत से अपूर्व नरम पड़ गया, किन्तु उसका क्रोध नहीं घटा। लौटकर अपूर्व जो कुछ भी तिवारी ने दिया, उसे खाकर फिर से नये सिरे से बिस्तरा लगाकर सोने लगा। उसके दिमाग़ में यह ख़्याल दौड़ रहा था कि इस प्रकार प्रवास में पैर रखते ही आफ़तों का सामना होने लगा! न मालूम आगे क्या-क्या हो? साथ ही साथ वह उस लड़की के विषय में सोचने लगा कि खुदा जाने वह कौन है, शायद मद्रासी हो, किन्तु अपने बाप कि तरह गुस्ताख़ नहीं है। उसके डरे हुए विनयी कंठ का उसके दिमाग़ पर काफी असर पड़ गया।

तिवारी उधर बर्तन माँज रहा था, अकस्मात उसका माँजना रुक गया, और दूसरे ही क्षण सुना गया—कौन है?—अपूर्व चौंक पड़ा, किन्तु कुछ सुनाई नहीं पड़ा। थोड़ी देर में तिवारी बोलता हुआ मालूम पड़ा—नहीं नहीं, मेम साहब, वह सब तुम ले जाओ। बाबू खा चुके हैं, हम लोग वह सब नहीं छूते।—अपूर्व ने पहचान लिया, यह उसी इसाई लड़की का कंठस्वर था। तिवारी फिर कह रहा था—किसने कहा हम लोगों ने नहीं खाया? खाया है, वह सब तुम ले जाओ, बाबू यदि सुनें तो बहुत गुस्सा करेंगे। अपूर्व आगे बढ़ गया और तिवारी से बोला—उनको सहस्रों धन्यवाद, किन्तु सचमुच हम लोग खा चुके हैं।—लड़की एक मुहूर्त तक मौन रही, फिर बोली—हाँ जरूर, किन्तु वह अच्छी तरह न हुआ होगा। और यह सब तो बाज़ार के फल हैं, इसमें क्या हर्ज है।—अपूर्व थोड़ा नरमा गया, उसने सदय कंठ से कहा—नहीं कोई दोष नहीं है। फिर तिवारी की ओर मुँह करके कहा—इसे लेने में क्या दोष है महाराज?—किन्तु तिवारी

महाराज इस बात से खुश नहीं हुए, वह बोला—बाज़ार का फल है तो बाज़ार से लाने से ही चलेगा, फिर आज रात को इनकी क्या ज़रूरत है !—फिर उसने ईसाइन की तरफ़ रुख करके कहा—मेम साहब यह सब तुम ले जाओ, हमें न चाहिए। लड़की थोड़ी देर तक चुपचाप खड़ी रही, फिर हाँथ बढ़ाकर फलों की टोकरी उठाकर धीरे-धीरे चली गई। जब वह चली गई तो अपूर्व ने कुछ दबी हुई रुखाई के साथ कहा—खाते चाहे न खाते, उनको ले तो सकते ही थे। बाद को चाहे उन्हें चुपचाप फेंक ही देते। तिवारी ने कहा, इससे क्या फायदा था ? इस पर अपूर्व ने कहा—फायदा ? मूरख, गँवार कहीं का— और वह वहाँ से चला गया।

अपूर्व को यह उम्मीद थी कि जब साहब का नशा उतर जायगा, तब वह अवश्य ही माँफी माँगने आयेगा। फिर यह सुशील औरतें उसे अवश्य ही मजबूर करेंगी। इस नाते वह उस लड़की से कुछ एकात्मता का अनुभव कर रहा था, किन्तु सबेरा हुआ, दिन भी चढ़ गया, लेकिन मांफी माँगने का कहीं नाम नहीं था। बड़ी देर में साहब आये। वे तिवारी से बोले—ए, तुम्हारा साहब किढर ? अपूर्व दूर से सुन रहा था, उसने मन ही मन कहा—पश्चात्तापवाले का यह कौन-सा लहजा है ? अपूर्व धीरे-धीरे पास जाकर खड़ा हो गया। साहब ने उसको सिर से पैर तक देखकर कहा —तुम अंग्रेज़ी जानते हो ?—उसने कहा—हाँ जानता हूँ। साहब बोले, मेरे सो जाने के बाद कल तुम ऊपर गये थे ? अपूर्व ने कहा—हाँ। साहब ने कहा—ठीक, तुमने लाठी ठोंकी थीं ? अनधिकार प्रवेश के लिए चेष्टा की थी ?—अपूर्व के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। साहब ने कहा—अगर कहीं हमारे किवाड़े खुले रहते तो तुम शायद हमारी बीबी या लड़की पर आक्रमण करते ! तभी, जब तक हम जगते रहे, तुम नहीं आये ? अपूर्व ने पूछा—तुम तो सो रहे थे, तुमने यह सब कैसे जाना ? साहब ने कहा—सब मैंने अपनी लड़की से सुना। इस बात से अपूर्व को बड़ा धक्का पहुँचा। साहब ने कहा—

.ख़ैर मैं अगर जगता होता, तुम्हें लात मारकर रास्ते में डाल देता और तुम्हारे मुँह में एक भी दाँत बिना तोड़े नहीं छोड़ता, किन्तु जब उस मौके को मैंने खो ही दिया, तब मुझे अब पुलिस की शरण लेनी पड़ेगी कि जो कुछ भी इन्साफ मिल जाय। हम जा रहे हैं, तुम इसके लिए तैयार रहो। अपूर्व ने सिर हिलाकर कहा—अच्छा—किन्तु उसका चेहरा उतर गया। साहब ने लड़की का हाथ पकड़कर कहा—आओ, और उतरते-उतरते कहा, कावार्ड! अरक्षित स्त्री के बदन पर हाथ डालने की चेष्टा, मैं तुम्हें ऐसा सबक़ सिखाऊँगा कि कभी भूलोगे नहीं।

साहब तो चले गये, किन्तु तिवारी का बुरा हाल हुआ। उसने कहा—उसी वक्त तो मैंने कहा था जो कुछ हुआ सो हुआ, अब उनको और छेड़ने से फायदा नहीं है। वे साहब-मेम हैं न! अपूर्व ने कहा—साहब हैं तो क्या? तिवारी ने कहा—पुलिस में गये न? अपूर्व ने कहा—गये तो क्या? तिवारी ने घबड़ाकर कहा—बड़े बाबू को एक तार भेज दें? अपूर्व ने इस बात को स्वीकार नहीं किया।

खाते समय अपूर्व ने कहा—पुलिस में गये तो क्या, आख़िर साहब मेमों को कुछ गवाही भी लगेगी कि ऐसे ही? तुम्हारा कोई गवाह है? तिवारी ने कहा—साहब मेमों को कोई गवाही भी लगती है? उनका कहना ही काफी है।—अपूर्व ने कहा—देखा उस लड़की को, कैसी भीगी बिल्ली बनकर फल देने आई थी, और ऊपर जाकर ही कितनी झूठी शिकायतें कर डालीं। तिवारी ने कहा—ताज्जुब क्या है, ईसाइन जो है।—अपूर्व को फौरन स्मरण हो आया कि इनको खाद्याखाद्य का कोई ज्ञान नहीं, सामाजिक हिताहित का फिर क्या हो। उसने कहा—अभागे, दुष्ट! इनको असली साहब कितनी घृणा करते हैं, एक मेज़ पर बैठकर खाना नहीं खाते। किन्तु तिवारी इतना घबड़ाया हुआ था कि अब आड़ में बैठकर गालियाँ देने की हिम्मत भी नहीं रह गई थी, न उसमें यह दिलचस्पी ही थी कि असली साहब उसे क्या समझते हैं।

अपूर्व खा-पीकर दफ़्र गया। वहाँ रामदास तलवरकर नामक कम्पनी के एक कर्मचारी के साथ उसका परिचय हुआ। वे पायजामा तथा लम्बा कोट पहने हुए थे, माथे पर लाल चन्दन का टीका था। अंग्रेज़ी का उच्चारण सुंदर था, किंतु वह बोलता हिंदी ही था। दोनों बात कर रहे थे तब तक डच मैनेजर स्वयं आ गये। आदमी अच्छा था और अपूर्व पर पूरा भरोसा करने के लिए तैयार था। वे काम समझाकर चले गये। तलवरकर शहर में नहीं रहते थे, कोई दस मील पश्चिम में इनसिन में अपनी बीवी तथा नन्हीं-सी लड़की के साथ रहते थे। जिस समय अपूर्व ने अपने मकान पर तिवारी को सही-सलामत पाया, तो उसके दिल पर से जैसे एक पत्थर-सा उतर गया। हाँ, तिवारी ने यह शिकायत की कि ऊपर का साहब एक जगह पर खड़े होकर बराबर जूता पीटता रहा। अपूर्व के साथ तलवरकर आज टहलते-टहलते आ गया था, अपूर्व ने उसको अपनी परेशानी का सारा हाल कह सुनाया। उसी समय वह लड़की जा रही थी। रामदास ने उसका रास्ता अटकाकर कहा—मुझे एक मिनट के लिए माफ करें, मैं इन बाबू साहब का मित्र हूँ, इनके प्रति व्यर्थ का उपद्रव करने के लिये आपको दुखित होना चाहिये। लड़की ने क्रोध में कहा—इच्छा हो, यह बातें आप पिताजी से कह सकते हैं।—रामदास ने कहा—आपके पिता घर पर हैं ? लड़की ने कहा—नहीं। रामदास बोला—तो मैं अब इन्तज़ार नहीं कर सकता, मेरी ओर से उनको कहिएगा कि उनके उपद्रव के कारण मेरे मित्र का यहाँ रहना आफत हो रहा है।—लड़की ने पहले की तरह कड़वे लहजे में कहा—तो ये चले न जायें। रामदास ज़रा हँसा, फिर बोला—इससे कुछ भी भला नहीं होगा, क्योंकि ये यदि गये तो मैं उनकी जगह पर आ जाऊँगा। मेरा नाम रामदास तलवरकर है, मैं महाराष्ट्री ब्राह्मण हूँ। तलवार शब्द का एक अर्थ है। गुड इवनिङ्ग।

अपूर्व रामदास को स्टेशन तक पहुँचाकर लौट आया, तो उसने

सोचा कि रास्ते में एक लकड़ी के बेंच पर बैठा जाय, किन्तु ज्यों ही वह बैठा पीछे से किसी ने ज़ोर का धक्का दिया, और वह ज़मीन पर मुँह के बल गिर पड़ा। जब वह किसी प्रकार सम्हलकर उठा तो उसने देखा चारों तरफ़ एंग्लो-इंडियन छोकरे खड़े हँस रहे हैं, किसी के मुँह पाइप है तो किसी के मुँह में सिगरेट। बेंच पर कुछ लिखा था, उसकी ओर ध्यान दिलाते हुए उनमें से एक ने कहा—देखता नहीं साले, यह साहब लोग के वास्ते है।—क्रोध, क्षोम तथा लज्जा से अपूर्व बिलकुल बेकाबू हो रहा था, वह शायद एकदम हिताहित ज्ञान भुलाकर इस झुंड पर कूद पड़ता; किन्तु कुछ हिन्दुस्तानियों ने जो वहा मौजूद थे उसे पकड़ लिया। वह इन लोगों के हाथ से छुटकारा पाने के लिए छटपटाने लगा तो इस पर एक ने उसे धकिया कर कहा—अरे बंगाली बाबू है, आप हैं किस होश में? अगर आपने साहबों का बदन छूआ कि गये जेलखाना।—वहाँ से अपूर्व स्टेशन मास्टर के पास शिकायत लेकर पहुँचा किन्तु वहाँ कोई सुनवाई नहीं हुई। उसने उलटा यह कहा—तुम दूसरों के बेंच पर बैठ कैसे गये?—क्या करता अपूर्व दिल मसोसकर घर लौट आया। रात को उसने खाना नहीं खाया। बिस्तरे पर पड़े-पड़े वह सोचता रहा, वहाँ इतने हिन्दुस्तानी मौजूद थे, किसीने उसकी ग्लानि में हिस्सा नहीं लिया। बल्कि उन लोगों ने अपमान की मात्रा बढ़ा ही दी। देशवासियों के विरुद्ध देशवासियों का यह रुख? क्यों ऐसा हुआ? कैसे यह संभव हुआ? यही वह सोचता रहा।

दो तीन दिन तक कोई नया गुल नहीं खिला तो अपूर्व ने समझा कि अब मामला सुलझ गया। एक दिन अपूर्व दफ़्तर से लौटा तो तिवारी ने रोते हुए कुछ काग़ज़ात उसके हाथ में दिये। ये अदालत के सम्मन के काग़ज़ थे। रोते हुए तिवारी ने कहा—बाबू मैं तो कभी भी अदालत में नहीं गया! अपूर्व ने कहा—तो मैं ही कब गया हूँ? ऐसे हर बात में रोना ही था तो विदेश में क्यों आये?

जो कुछ भी हो, यथासमय अदालत में मुक़दमा हुआ, तिवारी का कुछ नहीं हुआ, किन्तु अपूर्व को बीस रुपये का जुर्माना हुआ। रामदास भी अदालत में था। अपूर्व को यह जुर्माना बहुत अखरा, उसने कहा—बीस जुर्माना हुआ रामदास, क्या किया जाय ? अपील ? क्यों ? —रामदास ने कहा—नहीं बीस रुपये के बदले दो हज़ार रुपये का ख़र्च उठाया जायगा, नहीं कभी नहीं। फिर भी अपूर्व नहीं मान रहा था। तब दोनों टहलने चले गये। रामदास ने कहा—आप बदनामी की बात कह रहे थे, सो बदनामी क्या ? यह सभी जानते हैं कि जोसेफ़ के साथ हालदार की लड़ाई होने पर अंग्रेज़ों की अदालत में क्या होता है ! रहा बेकसूर क्या ? इसी प्रकार बेकसूर होते हुए भी मैंने दो साल की सज़ा काटी और बेंत खाये—यह कहकर उसने कहा, यदि मैं पीठ पर से कपड़ा हटा सकता तो आप अभी दाग़ देख लेते। रामदास ने फिर भी पूरी कहानी नहीं कही। जब अपूर्व घर पहुँचा तो देखा कि मुक़दमा हो जाने पर भी तिवारी अभी तक जैसे डरा हुआ है। उसने कहा—बाबू जल्दी में दो नोट आप फ़र्श पर डाल गये थे। अपूर्व को बड़ा आश्चर्य हुआ, किन्तु ऐसा होना कोई असंभव नहीं है समझकर उसने उन नोटों को जेब में डाल लिया।

फिर भी रोज़ तिवारी यही कहता रहा कि यह मकान छोड़ दिया जाय। मुक़दमे के हफ़्ते भर बाद एक दिन अपूर्व को तिवारी से पता लगा कि ऊपर के साहब टाँग तोड़कर अस्पताल में पड़े हैं। मकानवाला भाड़ा माँगने आया था, उससे लड़ गया, और सीढ़ी पर से गिर पड़ा।

एक दिन शाम को अपूर्व घर आया तो अपने किवाड़े को बन्द पाया। बात यह है कि तिवारी को अपने जिले का एक आदमी मिल गया था, वह उसी के साथ तमाशे में गया था। पाकेट से चाभी निकाली तो वह नहीं लगी। यह तो कोई नया ताला था। वह दो मिनट तक इसी उधेड़बुन में पड़ा था कि क्या करे,

इतने में ऊपर की उस लड़की ने सिर निकाल कर कहा—ठहरिए, मैं खोजती हूँ। —अपूर्व को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह चाभी उसके पास कैसे पहुँची ! वह लड़की आ पहुँची; और उसने चाभी खोल दी। वह बोली—मेरी माँ बड़ी डरपोक है, वह तबसे मुझसे लड़ रही है कि कहीं आपने मेरा एतबार न किया तो मुझे चोरी के जुर्म में जेल जाना पड़ेगा। मुझको लेकिन यह डर क़तई नहीं है। —अपूर्व ने पूछा कि मामला क्या है ? तब लड़की ने कहा कि भीतर जाकर देखिए। भीतर जाकर देखा कि कमरे का सारा सामान अस्तव्यस्त पड़ा था। अपूर्व ने पूछा कि यह कैसे हुआ ? तो मालूम हुआ कि तिवारी के जाने के बाद कमरे से एक प्रकार का सन्देहजनक शब्द निकलता सुनकर लड़की ने ऊपर के छेद से देखा कि चोर लोग बाक्स तोड़ रहे थे। तब वह ज़ोर से चिल्लाई। इस पर चोर भाग गये। तब इसने कमरे में अपना ताला लगा दिया, और कहीं चोर फिर से लौट न आवें इसलिए पहरा दे रही है। उस लड़की का नाम भारती था। वह अपूर्व की इजाज़त से कमरे में दाखिल हुई। फिर दोनों मिल-मिलाकर देखने लगे कि क्या-क्या चोरी हो गया। मालूम हुआ कि कुछ-कुछ चीजें गई ज़रूर हैं, यद्यपि अधिक नहीं। जब रूपयों का हिसाब होने लगा अपूर्व को यह पता नहीं था कि उसके कमरे में रूपये कितने थे। तब भारती ने कहा कि घर से कितने रूपये लेकर चले थे, उसका हिसाब किया जाय। तदनुसार अपूर्व गिनाने लगा। इसी दौरान में वह बीस रूपये जुर्माने का गिना गया। इस पर भारती बोली—नहीं, उन बीस रूपयों को मैं गिनने न दूँगी, यह जुर्माना तो अन्यायपूर्ण था, मैं इसे न घटाऊँगी। —इस पर अपूर्व ने ताज्जुब करते हुए कहा—जुर्माना अन्यायपूर्ण हो सकता है, किन्तु मैंने रुपये दिये यह तो झूठ नहीं है। —भारती ने इस पर फिर कहा—वह रूपये आपने दिये क्यों, मैं उन रूपयों को नहीं गिनूँगी, दो सौ अस्सी रूपये चोरी हो गये। — जाते समय भारती ने कहा—मामले को पुलिस में न

दीजिए, पुलिस का तजर्बा आपको तो हो चुका। मैं ऐसा आपको कभी भी करने नहीं दूँगी। क़ानून तो उस दिन भी था जिस दिन आपने जुर्माना दिया था। —अपूर्व ने कहा—लोग यदि झूठ बोलें, मुक़दमा बनावें तो इसमें क़ानून का क्या दोष है ?

इस प्रकार चोरी को दबा देने की सलाह अपूर्व को अच्छी नहीं लगी। बिना माँगी यह जो सहायता उसने की वह भी उसे अब अच्छी नहीं लगी और उसके मन में कुछ अजानित शठता की शंका हुई। यह सभी शायद अभिनय है। अपूर्व ने तड़ से कह दिया—चोर को हम उत्साह नहीं दे सकते, पुलिस को ख़बर करनी ही पड़ेगी। —भारती डरकर बोली—यह क्या बात है! चोर भी पकड़ा नहीं जायगा रुपये भी नहीं लौटेंगे, बीच में मैं खींची-खींची फिरूँगी। मैंने देखा, ताला लगाया, फिर अब आकर सब चीज़ों को ढंग से रक्खा, मैं तो कहीं की न रहूँगी। —अपूर्व ने कहा—इसमें क्या है जो कुछ जैसा हुआ साफ़-साफ़ कह दीजियेगा। भारती ने व्याकुल होकर कहा—कहने से क्या होता है ? अभी-अभी उस दिन वह झगड़ा हुआ, बातचीत बन्द, एकाएक आपके लिए मेरी मुहब्बत उमड़ पड़ी, यह पुलिस क्यों एतबार करने लगी।—अपूर्व के मन में सन्देह और भी दृढ़ हो गया। उसने कहा—लेकिन मैं चोर को सज़ा बिना दिलाये न छोड़ूँगा। उसके मुँह की ओर हतबुद्धि की तरह ताकती हुई भारती बोली—आप क्या कह रहे हैं अपूर्व बाबू ? पिताजी अच्छे आदमी नहीं हैं, उन्होंने अकारण ही आपके साथ अन्याय किया, मैंने उनका साथ दिया यह भी माना, किन्तु इस कारण बक्स तोड़कर चोरी करूँगी? इस बदनामी के बाद मैं जी नहीं सकती—इतना कहकर वह आँधी की तरह निकल गई, उसके होठ फड़क रहे थे।

थाने में रिपोर्ट करने के लिए अपूर्व चल पड़ा। तिवारी की तरह उसको ध्रुव विश्वास तो नहीं था कि भारती ने ही चोरी की है, किन्तु

भारती के अद्भुत चरित्र से उसको घोर सन्देह हो रहा था। थाने में घुसने ही जा रहा था कि इतने में निमाई बाबू से भेंट हो गई। ये महाशय पुलिस में काम करते थे। अपूर्व के पिता ने इन्हें नौकरी दिलाई थी। इस नाते निमाई अपूर्व के पिता को भैया कहता था और अपूर्व आदि उसको निमाई चाचा कहते थे। बातचीत से मालूम हुआ कि वे किसी क्रान्तिकारी दल की खोज में बर्मा आये हैं। इस समय जहाज़ घाट पर जा रहे थे सव्यसाची नामक एक भयंकर क्रान्तिकारी के आने की खबर थी। अपूर्व को इतना कौतूहल हुआ कि वह भी उनके साथ हो लिया। निमाई बाबू ने आपत्ति नहीं की। बन्दरघाट पर भीड़ थी। अपूर्व ने सोचा—ऊपर-नीचे जल में स्थल में इतने लोग खड़े हैं किसी के हृदय में कोई शंका नहीं है, केवल जिसने अपने तरुण हृदय का सारा सुख, सारा स्वार्थ तथा सब आशाओं का विसर्जन किया है, जेल तथा फाँसी का पथ उसी के लिए निमाई बाबू के रूप में यहाँ खड़ा है। निमाई बाबू अपने छलबल सहित ऐसी जगह खड़े हुए जिससे कि हरेक आने-जाने वाले को वे ध्यान से देख सकें। अपूर्व वहाँ एक निश्चल बुत की तरह खड़े होकर मन ही मन कहने लगा, अभी तुम्हारे हाथों में हथकड़ियाँ डाली जायेंगी, तमाशे के भूखे लोग तुम्हारे अपमान को आँख खोलकर देखेंगे, वे जान भी नहीं पायेंगे कि उन्हीं के लिए तुमने अपना सर्वस्व चढ़ा दिया है। × × × किस विस्मृत भूतकाल में तुम्हारे ही लिए पहली ज़ंजीर बनाई गई थी, तथा कारागार का निर्माण तुमको ध्यान में रखकर हुआ था, यही तो तुम्हारा गौरव है। तुमको कोई अवज्ञा नहीं कर सकता, यह विपुल सेना तथा पहरा तुम्हारे ही लिए है। दुःख का विपुल बोझ तुम ही उठा सकते हो तभी भगवान ने यह भारी बोझा तुम पर डाल दिया है। हे मुक्तिपथ के अग्रदूत, पराधीन देश के राजविद्रोही तुम्हें सैकड़ों नमस्कार है। निमाई बाबू ने एकाएक आकर कहा—जिस बात का डर था, वही होकर रहा, चिड़िया भाग गई अपूर्व ने पूछा—कैसे?' निमाई ने कहा—

यही अगर जानता तो भाग कैसे जाता। न मालूम किसकी भाषा बोलता हुआ किस भेष में निकल गया!

कुछ आदमी फिर भी सन्देह में गिरफ़्तार कर लिये गये थे। इन में से एक के सिवा सभी जाँच-पड़ताल के बाद छोड़ दिये गये। आख़िरी व्यक्ति को निमाई बाबू के सामने हाज़िर किया गया। अद्भुत व्यक्ति था। यह आदमी खाँसते-खाँसते आया। उम्र तीस-बत्तीस से अधिक नहीं होगी, किन्तु जितना ही दुबला था उतना ही कमज़ोर था। मालूम नहीं होता था कि अब कोई आयु की अधिक मियाद बाक़ी है। भीतर कोई दुरारोग्य रोग है। फिर भी उस क्षीण शरीर की दोनों आँखों की दृष्टि अद्भुत थी। वह आँख लम्बी थी कि गोल, कुछ पता नहीं चलता था। गहरे तालाब की तरह उसमें फिर भी कुछ था, बस। उसके कपड़ों की ओर देखकर हँसी आती थी। सामने बड़े-बड़े बाल थे, पीछे की ओर के बाल छोटे करके छँटे हुए थे। बीच में माँग कढ़ी हुई थी, तेल से बाल ख़ूब लबरेज़ थे। नींबू के तेल की बू से कमरा महक रहा था, बदन पर इन्द्रधनु के रंग के जापानी रेशम की चूड़ीदार पंजाबी थी, उसके बुक-पाकेट पर बाघ का चेहरा बना हुआ एक रूमाल का कुछ हिस्सा दिखाई दे रहा था। अपूर्व ने इस अजीब आदमी को जब देखा तो उसने कहा—चाचा जी, यह व्यक्ति हर्गिज़ वह नहीं है जिसकी आपको तलाश है।—उसका नाम पूछा गया तो मालूम हुआ गिरीश महापात्र है। जामा तलाशी लेने पर पाकेट से एक लोहे का कम्पास, एक लकड़ी का स्केल, कुछ बीड़ियाँ, एक दियासलाई तथा एक गाँजे का चिलम निकला। पूछने पर आदमी ने कहा—वह गाँजा नहीं पीता, किन्तु यह चिलम कहीं मिल गया, इसलिए रख दिया कि शायद किसी के काम आवे। हाथ देखने पर गाँजे का चिन्ह मिला। कुछ भी हो, गिरीश महापात्र छोड़ दिया गया।

लड़कपन से ही अपूर्व स्त्रियों के प्रति श्रद्धाशील नहीं था; बल्कि कुछ वितृष्णा का ही भाव उनके प्रति था। भाभियाँ यदि उससे परिहास

करतीं तो वह मन ही मन क्रुद्ध होता था, यदि वे घनिष्ठता करने आतीं थीं तो वह दूर हट जाता था। माँ के अतिरिक्त किसी स्त्री की सेवा उसे अच्छी नहीं लगती थी। किसी लड़की ने कालेज में पढ़कर परीक्षा पास की इस बात से उसको खुशी नहीं होती थी, और अख़बारों में यह पढ़-कर कि विलायत की औरतें राजनैतिक अधिकारों के लिए लड़ रही हैं उसके बदन में आग लग जाती थी। फिर भी उसका हृदय बड़ा भद्र तथा कोमल था। इस नाते वह स्त्री-पुरुष सभी प्राणी से प्रेम करता था, किसी को कष्ट देने में हिचकता था। इसी कमज़ोरी के कारण वह भारती को अपराधी समझकर भी सज़ा दिला नहीं सका था। किन्तु पुरुष के यौवन-हृदय के नीचे और भी बहुत-सी दुर्बलतायें एकान्त गुप्त रूप से अवस्थान करती हैं इसका उसे अभी पता नहीं था।

दफ़तर के काम के सिलसिले में अपूर्व कई हफ़्ते तक रंगून के बाहर दौरा करता रहा। जब वह रंगून लौटा तो देखा कि मकान के सामने गाड़ी ठहरी फिर भी तिवारी का कहीं पता नहीं। कमरे के किवाड़े पर ज़ोरों से धक्का देता रहा तो धीरे से किवाड़ा खुला, और उसके सामने—अरे! यह कौन है? भारती। उसकी यह क्या मूर्ति थी। पैर में जूते नहीं, पहिनने में काले रंग की साड़ी थी, बाल सूखे तथा बिखरे हुए थे, मुँह पर शान्त गम्भीर विषाद की छाया थी, यह जैसे बहुत दूर से आई हुई तीर्थयात्री थी, धूप में सिककर, पानी में भींगकर, अनाहार अनिद्रा में दिनरात चलकर यहाँ आई थी, किसी भी मुहूर्त में रास्ते पर गिर कर मर सकती है। इस पर कोई कभी क्रोध कर सकता है अपूर्व इसकी कल्पना ही नहीं कर सकता था। भारती ने सिर नवाँकर ज़रा-सा नमस्कार कर धीरे से कहा—आप आये हैं, अब तिवारी जी जायेगा।—पूछने पर अपूर्व को मालूम हुआ कि इधर चेचक फैल रहा है, तिवारी को वही हुआ है। भारती फिर बोली—चलिए ऊपर के कमरे में, यहाँ आपका घुसना ठीक न होगा। अपूर्व ने आश्चर्य के साथ कहा—ऊपर के कमरे में? भारती ने कहा—कमरा अभी हमीं

लोगों के क़ब्जे में है, किन्तु मैं अब यहाँ से चली गई हूँ। साफ है, नल में पानी है, आपको कोई कष्ट न होगा। साथ का सामान वहीं ले चलिए। अपूर्व राजी हो गया। इसके बाद सामान रखवाकर नहाने गया, फिर वहाँ से लौटा तो भारती ने उसको सामने रक्खा हुआ गिलास दिखाकर कहा—लीजिए वह गिलास, जँगले के ऊपर काग़ज़ की पुड़िया में शक्कर है, उसे लेकर मेरे साथ नल पर आइए, और इस प्रकार से शरबत बनाइए—कहकर उसने इशारे से अपूर्व को शरबत बनाने का तरीका बतलाया। इसके बाद उसने उसी के हाथ से खिचड़ी चढ़वाई। जब अपूर्व इस प्रकार पका रहा था तो वह चौखट के बाहर से उसे पकाने की शिक्षा दे रही थी। अपूर्व ने पूछा—आप कब खायेंगी, कहाँ खायेंगी—तो उस बात को टाल दिया कि हम लोगों के खाने में क्या झंझट है। अपूर्व पकाने में बराबर ग़लती कर रहा था। खाना ख़तम हो जाने पर अपूर्व ने पूछा कि तिवारी तक तो मैं समझ गया, किन्तु आपके पिता ने उसमें आपकी कि इस दिलचस्पी पर आपत्ति नहीं की ? भारती ने कहा—ओह, हाँ, उनका तो देहान्त हो गया, वे अस्पताल ही में मर गये। अपूर्व कुछ देर तक चुप रहा, फिर उसने कहा—आप के काले कपड़े देखकर मुझे ऐसी ही भयानक दुर्घटना का अनुमान कर लेना चाहिए था। भारती ने उसी साँस में कह डाला—इससे भी बड़ी दुर्घटना तब हुई जब माता जी अचानक मर गईं। माँ मर गईं ! सुनकर अपूर्व स्तब्ध हो रहा। भारती ने आँखें दूसरी ओर कर लीं। जब दो मिनट बाद उसने अपूर्व की ओर मुँह फेरा तो देखा कि उसकी आँखों में भी आँसू छलक रहे हैं और वह एकटक भारती की ओर देख रहा है। भारती ने फिर मुँह फेरा, किन्तु थोड़ी ही देर में शान्त होकर बोली—तिवारी बड़ा अच्छा आदमी है। उसने विपत्ति के समय बड़ा उपकार किया। जब मैं इस मकान को छोड़कर जाने लगी तो वह रोने लगा, किन्तु इतना किराया मैं देती कैसे ?—फिर कुछ ठहरकर बोली—आपकी

चोरी का सब माल पकड़ गया है, पुलिस में जमा है। तिवारी को जो लोग उस दिन तमाशा दिखाने ले गये, यह उन्हीं के गिरोह का काम है। धीरे-धीरे उसने यह भी बता दिया कि कैसे वह एक दिन तिवारी को देखने आई तो उसको बुख़ार में बेसुध पाया, और तब से वह दिन-रात यहीं रहकर उसकी परिचर्या करती है।

अपूर्व इस पर अफ़सोस करता रहा कि उसे खबर क्यों नहीं दी गई। उसने शिकायत के स्वर में कहा—आप नहीं देख रही हैं आपका चेहरा कितना बिगड़ गया है?

भारती ज़रा हँसकर बोली—अर्थात् पहले इससे बहुत अच्छा था?

अपूर्व को इसका कोई उत्तर न सूझ पड़ा, किन्तु उसकी आँखों की मुग्ध दृष्टि श्रद्धा और कृतज्ञता के गंगाजल से जैसे इस तरुणी के सर्वांग की सब ग्लानि तथा क्लान्ति को धो दे रही थी। तिवारी के लिए उसने जो कुछ किया था, उससे अपूर्व के मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा था, वह इस बात के लिए तैयार नहीं था कि भारती का स्वास्थ्य एकदम ही ख़राब हो जाय। अतः यह तय हुआ कि उसे अब छुट्टी दी जाय, किंतु जब रोगी के पास जाकर अपूर्व खड़ा हुआ तो रोगी की हालत देखकर उसकी सिट्टी-पिट्टी भूल गई। वह बिलकुल बच्चे की तरह व्याकुल होकर बोल उठा—मुझसे न होगा! भारती कुछ देर तक मौन रही, फिर बोली—आपसे न होगा? अच्छा! उसके कंठस्वर में विस्मय के आभास के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था, किंतु यह कैसा उत्तर था। क्या यही उसने उसके निकट आशा की थी? अकस्मात् जैसे मार खाकर अपूर्व की नींद छूट गई। उधर तिवारी बेहोश पड़ा था। भारती ने कहा—दिन रहते-रहते कुछ करना चाहिए, आप कहें तो मैं जाते वक्त अस्पताल में टेलीफोन कर दूँ। अपूर्व बोला—आपने कहा था, वहाँ जानेवाले सब मर जाते हैं?

भारती बोली—कोई नहीं जीता, ऐसा तो मैंने नहीं कहा था।

अपूर्व बोला—याने अधिकतर ही तो मर जाते हैं। हाँ तभी तो

होश रहते हुए वहाँ कोई जाना स्वीकार नहीं करता। अपूर्व ने पूछा—क्या तिवारी हमेशा बेहोश ही रहता है ? भारती बोली—नहीं, अक्सर होश में आ जाता है।—इतने में तिवारी एकाएक चीख़ पड़ा। इस पर अपूर्व कैसा चौंक पड़ा, भारती से यह छिपा नहीं रहा। तिवारी ने इसके बाद गिड़गिड़ाकर कुछ कहा। अपूर्व नहीं समझा, किंतु भारती समझ गई, और उसने फौरन पानी का लोटा उठाकर उसे स्नेह के साथ पानी पिला दिया। भारती ने तिवारी से कहा—तुम्हारे बाबू आ गये। इस पर तिवारी हाथ उठाना चाहता था, किन्तु न उठा पाया। उसकी आँखों में आँसू उमड़ पड़े। अपूर्व की आँखों से भी झड़ी लग गई, कई बार इसे उसने रोका, किन्तु न रुकी। उसने आँखों पर धोती का लटकता हुआ हिस्सा रख लिया। भारती पास आकर बोली—तो भेज दीजिए अस्पताल ही में। अपूर्व ने आँख बिना खोले ही सिर हिलाकर कह दिया, नहीं। भारती ने कहा—अच्छी बात है, मैं जाती हूँ, कल समय मिला तो आऊँगी। जब भारती जाने लगी तो अपूर्व एकाएक बोल उठा—यदि तिवारी पानी माँगे तो ? भारती बोली—पानी दीजियेगा। अपूर्व ने कहा—यदि करवट बदलना चाहे तो ? भारती बोली—करवट बदल दीजियेगा। अपूर्व फिर भी बोला—मैं सोऊँगा कहाँ ? भारती बोली—क्यों, तिवारी के कमरे में एक बिस्तरा है उस पर। फिर भी अपूर्व बोला—मेरे खाने-पीने का क्या बन्दोबस्त होगा ? भारती ने ध्यान से उसके मुँह की ओर देखा, और धीरे से बोली—याने आपको इस प्रकार दूसरी बातें न कहकर मुझे कहना चाहिए कि कृपा कर मेरा सारा बन्दोबस्त कर दीजिये। अपूर्व ने कहा—ऐसा कहने में कोई हर्ज नहीं। भारती बोली—तो फिर कहिए। अपूर्व किसी तरफ न ताककर बोल उठा—वही कह रहा हूँ—यह कहकर उसने मुँह बना लिया। थोड़ी देर ठहरकर भारती बोली—किन्तु तिवारी ने तो मेरे हाथ का पानी पी लिया। अपूर्व ने कहा—ज्ञान रहते नहीं खाया, मृत्युशय्या पर खाया, न खाने पर शायद मर जाता। ऐसी हालत में शायद नहीं होता। इससे जाति नहीं जाती,

शायद कोई प्रायश्चित्त करने से काम चल जाय। भारती भौंहें तानकर बोली—और शायद उसका खर्चा आपको ही देना पड़े। नहीं तो फिर आप उसके हाथ से खायेंगे कैसे? अपूर्व ने कहा—ज़रूर दूँगा, ईश्वर उसको अच्छा तो कर दे। भारती बोली—और मैं ही उसकी सेवाकर उसे अच्छा करूँ? क्यों? म्लेच्छ यदि प्राणदान करे तो कुछ नहीं, किन्तु यदि उसने मुँह में पानी दे दिया तो बस प्रायश्चित की ज़रूरत हो गई, क्यों? यह कहकर जाने लगी। किन्तु जाने के पहले लौटकर बोली—कल मैं आऊँगी, और यदि मैं न आऊँ तो तिवारी के अच्छा हो जाने पर उससे कह दीजियेगा कि यदि आप न आते तो मैं न जाती। म्लेच्छ लोगों का एक समाज है, आपके साथ एक कमरे में रात काटने पर वे भी अच्छा नहीं कहेंगे। कल सबेरे तलवरकर बाबू को बुला लीजियेगा, वे सब व्यवस्था कर देंगे। यह कहकर जब भारती निकल गई, तो एकाएक अपूर्व सम्हाल न सका, उसकी तबीयत जाने कैसी हो गई, वह बाहर निकला और ज़ोर से पुकारा—भारती! भारती ने जब पीछे मुँह फेरा तो उसने इशारे से कहा—एक बार आइये। और उससे कुछ कहा न गया। जब भारती ने लौटकर अपूर्व को कमरे में नहीं पाया, तो कुछ मिनट ठहरकर गुसलखाने की ओर झाँकी तो देखा अपूर्व ज़मीन पर लेटकर उलटी कर रहा है और उसका सारा शरीर पसीने से तरबतर हो रहा है। भारती ने एक मिनट के लिये हिचकिचाई, फिर वह अपूर्व के पास बैठकर उसके सिर पर हाथ रखकर बोली—उठ बैठिये। नतीजा यह है भारती का उस समय जाना न हो सका।

इस घटना के बाद एक महीना बीत चुका है। तिवारी अच्छा हो गया, किन्तु उसमें ताक़त अभी नहीं आई। भारती उस दिन जो चली गई थी, तब से लौटकर नहीं आई थी। तलवरकर की देखरेख में तिवारी तथा अपूर्व की सेवा हुई थी। तिवारी के लिये यह तय हुआ था कि वह ज़रा अच्छा होते ही देश लौट जायगा। ऐसा वह एक सप्ताह में हो सकेगा ऐसा प्रतीत होता था। तिवारी के मन में यह विचार आता

था कि कहीं ऐसा न हो कि म्लेच्छ लड़की के हाथ से पानी पीने की बात देश तक पहुँच न जाय और उसकी नौकरी न चली जाय। साथ ही उसके विचारों की एक दूसरी भी दिशा थी। दुपहर के समय मोढ़ा डालकर सड़क की उसी ओर ताकता रहता था जिधर से भारती आ सकती थी। एक दिन दफ़्र से लौटकर अपूर्व ने अकस्मात् पूछा—भारती का नया मकान कहाँ है तिवारी?

तिवारी कह उठा—मैं क्या जानूँ? अपूर्व ने बात को साफ करते हुए कहा कि उसके पते की ज़रूरत इसलिये थी कि चोरी का पता लग गया, किन्तु पुलिस तभी सब माल वापस करने को कह रही है जब भारती का भी एक दस्तख्त मिले।—तिवारी के मन में इतने दिनों से एक भारी उत्कंठा थी, वह जानना चाहता था भारती कब और कैसे यहाँ से चली गई, और फिर क्यों नहीं आई। इतने दिनों तक न मालूम क्यों उसने उसके सम्बन्ध में नहीं पूछा था, किन्तु आज वह एकाएक पूछ बैठा—वे कब से नहीं आईं? अपूर्व ने कहा—मेरे आने के बाद के रोज वह 'मैं जाती हूँ' कह कर एकदम चली गई, तब से नहीं आई। तिवारी ने फिर पूछा—क्या गुस्सा करके गई? अपूर्व ज़रा सोचने लगा—फिर, बोला क्या पता हो भी सकता है! नहीं तो तुम पर इतना यत्न ले रही थी, अब ख़बर भी नहीं लेती, क्या बात है। यह बात तिवारी को अच्छी नहीं लगी, उसने कहा—संभव है स्वयं ही बीमार पड़ गई हो। —अपूर्व चौंक उठा, किन्तु कुछ बोला नहीं किन्तु अपूर्व एक दिन पुराना पता याद कर भारती की तलाश में निकल पड़ा। वह मिल भी गई, पहले ही बोल पड़ी—इतने दिन तक हमारी कोई ख़बर नहीं ली।

अपूर्व ने कहा—आपने भी तो हम लोगों की कोई ख़बर नहीं ली? —फिर अपूर्व ने कहा किस कारण वह आया। मालूम हुआ कि भारती शिक्षयित्री का काम करती है। सामने ही दीवार पर लिखा था—"पथ के दावेदार" अपूर्व ने पूछा, यह क्या तो भारती ने कहा—

यह हम लोगों की समिति का नाम है। हम सभी पथिक हैं। मनुष्य के मनुष्यत्व के रास्ते में चलने के सब तरह के प्रण को स्वीकार कर हम सब बाधाओं को तोड़कर चलेंगे। जिससे हमारे बाद के आनेवाले निरुपद्रव होकर राह तय कर सकें, तथा उनकी अबाध मुक्त गति को कोई रोध न कर सके इसी से हमारा यह प्रण है। आप आयेंगे हमारे दल में ?

अपूर्व बोला—हम पराधीन जाति के हैं, अंग्रेज़ नहीं, फ्रेञ्च नहीं अमेरिकन नहीं, कहाँ से लायें हम अप्रतिहत गति ? स्टेशन के एक बेंच तक पर हमें बैठने का अधिकार नहीं, अपमानित होकर नालिश करने का रास्ता नहीं है—कहते-कहते उसने अपने अपमान की सारी कहानियाँ सुना डालीं, फिर बोला—हम तो जैसे आदमी ही नहीं हैं। हममें जेसे मनुष्य का प्राण या रक्त ही नहीं है। यदि यही आपकी साधना है तो हम आपके दल में हैं।

भारती बोली—क्या अपूर्व बाबू, आपको सचमुच ही पता है कि मनुष्यता की ज्वाला क्या होती है ? क्या सचमुच ही मनुष्य के स्पर्श से मनुष्य को बचने का कोई कारण नहीं है, क्या एक मनुष्य के बदन की हवा से दूसरे के घर की हवा अपवित्र नहीं हो जाती ? अपूर्व ने जोश में आकर कुछ उत्तर तो दे डाला, किन्तु धीरे-धीरे भारती के ये प्रश्म अग्निरेखा की तरह उसके दिमाग़ के अन्दर से ज़ोर के साथ दौड़कर उसे एकदम वाक्यहीन कर दिया। थोड़ी देर बाद भारती ने उससे कहा—आज रविवार है, आज स्कूल में कोई काम न होगा। नीचे चलिये न, आपको डाक्टर से परिचित कराकर दल का सदस्य बना लें। अपूर्व ने कहा—क्या वे सभापति हैं ?

भारती बोली—नहीं, वे सभापति नहीं हैं। वे हमारी समिति के जड़ हैं। अपूर्व ने कहा—मुझे कुछ और भी स्त्रीकंठ सुनाई पड़ रहे हैं, क्या इस दल में आपके अतिरिक्त और भी पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ हैं ?

भारती ने उत्तर दिया—हम लोगों की जो प्रेसिडेन्ट हैं उनका नाम सुमित्रा है। वह अकेली सारी दुनिया घूम चुकी है। एक डाक्टर के अलावा उनसे बढ़कर विद्वान व्यक्ति शायद इस देश में नहीं है।

अन्त में भारती ने ले जाकर अपूर्व को उस गोष्ठी में बिठा दिया। फिर एक स्त्री की ओर दिखाकर धीरे से बोली—यही सुमित्रा जी हैं, हम लोगों की प्रेसिडेन्ट। कहने की ज़रूरत नहीं थी, अपूर्व ने देखकर ही पहचान लिया था। यदि नारी से ही किसी समिति की परिचालना करवानी है तो यही नारी उसके लिये उपयुक्त है। उम्र शायद तीस के पास पहुँची है, किन्तु देखने में जैसे राजरानी है। रंग कच्चे सोने की तरह, दक्षिण की तरह बाल शिथिल करके बँधे थे, हाथ में मात्र कई एक सोने की चूड़ियाँ थीं, गर्दन के पास सोने की एक पतली हार का कुछ अंश चमक रहा है, कान में हरे पत्थर के तैयार कर्नफूल पर रोशनी पड़कर साँप की आँख की तरह जल रहे थे। उस समय जो बातचीत चल रही थी, उससे जब लोगों की छुट्टी हुई तो सुमित्रा ने अपूर्व की तरफ ध्यान दिया। वह बोल उठी —अपूर्व बाबू! अपूर्व ने चौंककर सिर उठाया। सुमित्रा बोली—आप हम लोगों को नहीं जानते किन्तु भारती की बदौलत हम सभी आपको जानते हैं। सुना कि आप हम लोगों की समिति का सदस्य होना चाहते हैं। अपूर्व से ना नहीं कहा गया। जो आदमी कोने में बैठकर लिख रहा था, उसकी तरफ मुँह करके सुमित्रा बोली—डाक्टर साहब, ज़रा अपूर्व बाबू का नाम तो लिख लीजिये।

पलक मारने के पहले ही उसका नाम एक मोटी कापी पर चढ़ गया देखकर वह मन ही मन बेचैनी का अनुभव करने लगा। उससे अब रुका न गया, वह बोल उठा—लेकिन, लेकिन समिति का उद्देश्य कुछ मालूम नहीं हुआ। सुमित्रा बोली, "तो क्या भारती ने आपको नहीं बताया?" अपूर्व ने कुछ देर सोचकर कहा—कुछ बताया है, किन्तु मैं पूछना यह चाहता हूँ कि अभी-अभी नवतारा के पति त्याग

कर आप लोगों में आकर काम करने पर बातचीत हो रही थी, तो क्या सचमुच आप लोग उसके आचरण को अन्यायपूर्ण नहीं समझतीं ?

सुमित्रा बोली—कम से कम मैं तो नहीं समझती, क्योंकि मेरी आँखों में देश से बढ़कर कुछ नहीं है। अपूर्व ने श्रद्धा के साथ कहा—ख़ैर, देश को तो मैं भी प्राणों से अधिक प्यार करता हूँ। यह भी मानता हूँ कि देश-सेवा करने का अधिकार स्त्री-पुरुष दोनों का बराबर है, फिर भी दोनों के कर्मक्षेत्र तो अलग-अलग हैं ही। हम पुरुषगण बाहर आकर काम करेंगे, किन्तु स्त्री घर के अन्दर अन्तःपुर में रहकर ही पति-पुत्र की सेवा से ही अपने को सार्थक करेगी। वहाँ रहकर वह संसार का वास्तविक कल्याण जितना कर सकती, बाहर आकर पुरुषों की भीड़ में तो उसमें बाधा ही पहुँचेगी।

सुमित्रा हँसी, फिर बोली—अपूर्व बाबू, यह धोखे की बात है। जिन्होंने कभी देश का कोई काम नहीं किया है ऐसी बात वे ही कह सकते हैं, जिनके निकट अपना स्वार्थ देश के स्वार्थ से कहीं बढ़कर है वे ही ऐसी बात कह सकते हैं। यदि आप स्वयं कभी देश-सेवा करें तो आपको यह अनुभव होगा कि आप आज पुरुषों की भीड़ में खड़ी होना कहते हैं वही जब होगा तभी देश का काम संभव होगा।

अपूर्व ने फिर भी कहा—किन्तु क्या इससे दुर्नीति नहीं बढ़ेगी ? क्या चरित्र कलुषित होने का भय न रहेगा।

सुमित्रा बोली—क्या भीतर ही भय कम रहता है ?

अपूर्व बोला—आप मुझे क्षमा करें, नारीत्व का जहाँ परम उत्कर्ष है उसी सतीत्व तथा पातिव्रत्य धर्म को आप लोग अवहेलना की दृष्टि से देखती हैं, क्या इससे देश का कोई कल्याण होगा ?

सुमित्रा बोली—जो बात मैंने कही थी, वह कुछ और थी। ख़ैर, जिसे आप सतीत्व कह रहे हैं वह तो केवल शरीर तक ही सीमित नहीं है, उसमें मन की भी तो ज़रूरत है अपूर्व बाबू! शरीर और मन दोनों

से जब प्रेम हो तभी न प्रेम है ? मन्त्र पढ़कर शादी करा देने से ही क्या कोई किसी को प्रेम कर सकता है ? क्या यह पोखरे का पानी है कि चाहे जिस पात्र में डाल दो बस काम चल जायगा।

अपूर्व को कुछ जवाब न सूझ न पड़ा तो वह बोल उठा—हमेशा से चला तो जा रहा है।

सुमित्रा फिर हँसकर सिर हिलाते हुए बोली—हाँ, सो तो चल रहा है। प्राणनाथ कहकर वह पत्र भी लिखती है, और श्रद्धाभक्ति भी करती है। किन्तु यह वैसे ही है जैसे कोई ऋषिपुत्र चावल की पीठी का पानी दूध के बदले पीते थे। चाहे जो कुछ भी हो नक़ल को असल कहकर कोई गर्व नहीं कर सकता।

अपूर्व को यह आलोचना बहुत बुरी लगी, उसने कहा—क्या इससे अधिक किसी को नहीं मिलता ?

सुमित्रा बोली—नहीं, ऐसा तो मैं नहीं कहती। अकस्मात भी तो शब्द है।

इस प्रकार जब यह बहस खूब ज़ोर पकड़ रही थी, उस समय वह आदमी जो अब तक कोने में बैठकर लिख रहा था, एकाएक उठा। सभी साथ-साथ खड़े हो गये। अपूर्व ने देखा अरे यह तो वही गिरीश महापात्र है। गिरीश अपूर्व के पास आकर बोले—हमें आप भूल तो न गये होंगे, हमको यहाँ सब डाक्टर कहते हैं ! यह कहकर वे हँसे। अपूर्व ने कहा—मेरे चाचाजी के नोटबुक में कोई दूसरा ही भयंकर-सा नाम लिखा है...

गिरीश ने उसके दोनों हाथ अपने हाथ में ले लिये, और कहा—सव्यसाची न ? इतना कहकर फिर वह हँसे। फिर वे अपूर्व को कुछ दूर तक पहुँचाने के लिये घर से निकल पड़े। रात अधिक हो रही थी।

डाक्टर ने अपूर्व को भारती के घर पहुँचा दिया। रास्ते में कुछ-कुछ बातचीत हुई जिससे अपूर्व अस्पष्ट रूप से समझ गया कि जिन

लोगों के संस्पर्श में वह आ चुका है, वे सब के सब रहस्य से आवृत हैं। सुमित्रा का पति है कि नहीं आदि प्रश्नों का डाक्टर से उसे कोई उत्तर नहीं मिला। डाक्टर अजीब आदमी था कि किसी फालतू प्रश्न का उत्तर ही नहीं देता था, साथ ही उसका व्यवहार खुला हुआ था। भारती के यहाँ पहुँचकर ही डाक्टर को भारती से मालूम हुआ एक परिचित परिवार किसी भयंकर आफत में फँसा है, बस वे अंधकार में जैसे छू मन्तर हो गये। भारती ने छूत बचाकर उसके खाने-पीने की व्यवस्था कर दी। खाने-पीने के बाद अपूर्व ने जब भारती को उसके कष्ट के लिये धन्यवाद दिया, तो वह बोल पड़ी—जब ईश्वर ने बोझा दिया है तो उसे ढोना ही पड़ता है, इसकी शिकायत मैं किससे करूँ?

अपूर्व ने आश्चर्य के साथ कहा—इसका अर्थ?

भारती कुछ काम कर रही थी, उसी प्रकार काम करते-करते बोली —इसका अर्थ क्या ख़ाक है, क्या मैं खुद ही जानती हूँ? किन्तु देख रही हूँ कि जब से आप बर्मा आये हैं तब से बराबर आपका बोझा मैं किसी न किसी रूप में ढो रही हूँ। पिताजी के साथ झगड़ा आपका हुआ, किन्तु जुर्माना अदा मैंने किया। घर पर पहरे के लिये छोड़ गये आप तिवारी को, वह बीमार पड़ा, उसकी सेवा मुझे करनी पड़ी। बुलाकर आपको डाक्टरजी लाये, और तमाम टंटे मुझे करने पड़ रहे हैं। अब डर यह हो रहा है कि कहीं सारी ज़िन्दगी आपका बोझा मुझे न उठाना पड़े। ख़ैर अब रात अधिक हो चुकी है, अब आप सोयेंगे कहाँ यह कहिये?

अपूर्व ने कहा—वाह, इसका मैं क्या जानूँ?—भारती बोली —होटल में डाक्टर बाबू के कमरे में आपके सोने की व्यवस्था हो जायगी।

अपूर्व तैयार तो हो गया किन्तु उसने ज़रा संकोच के साथ कहा —ठीक है, लेकिन आपकी तकिया और बिस्तरे की चादर मैं ले जाऊँगा, मर जाने पर भी मैं दूसरे के बिस्तरे पर सो नहीं सकता।

भारती का मलिन गंभीर चेहरा स्निग्ध हँसी से भर गया, बोली —यह भी तो दूसरे का ही बिस्तरा है अपूर्व बाबू ! इससे घृणा नहीं होती, बड़े आश्चर्य की बात है ! जो कुछ भी हो आप इसी खाट पर सो सकते हैं—यह बात उसने इच्छा-पूर्वक ही नहीं कही कि अभी कुछ देर पहले उसके दिये हुए वस्त्र को पहनकर भगवान की उपासना करने में भी उसे घृणा हो रही थी।

अपूर्व अधिकतर संकुचित होकर बोला—आप कहाँ सोयेंगी ? आपको तो कष्ट होगा ?

भारती ने उँगली से इशारा करते हुए कहा—उस छोटे से कमरे के एक कोने में जो चाहे सो बिछाकर मैं मजे में सो जाऊँगी। तिवारी के बग़ल में कितनी रातें हाथ को तकिया बनाकर मैंने काट दीं, यह आप भूल गये ?

अपूर्व कुछ देर तक सोचकर बोला—उस समय तिवारी कठिन रोग में था, किन्तु इस समय लोग क्या समझेंगे ?

—कुछ भी नहीं, क्योंकि दूसरों की बात लेकर व्यर्थ ही मन को कष्ट देने की यहाँ लोगों को आदत नहीं है।

अपूर्व बोला—नीचे के बेंच पर भी तो मैं मज़े में सो सकता हूँ ?

भारती बोली—हाँ, किन्तु ऐसा मैं करने न दूँगी, क्योंकि उसकी ज़रूरत ही न रहेगी, मैं आपके लिये अस्पृश्या हूँ, आपसे मेरी कोई क्षति हो सकती है ऐसा मैं नहीं समझती।

अपूर्व ने आवेग के साथ कहा—यह भय मुझमें भी नहीं है किन्तु आप जब अपने को अस्पृष्या कहती हैं तो दुःख होता है क्योंकि इसमें घृणा है, किन्तु मैं आपको घृणा तो करता नहीं। हमारी जाति अलग है, आपका छूआ नहीं खाता, किन्तु उसका कारण घृणा नहीं है। यहीं पर बातचीत ख़तम हो गई, और भारती दो कम्बल रैक से खींचकर उस छोटे कमरे की ओर बढ़ गई।

सबेरे भारती की पुकार से अपूर्व की नींद खुली। वह बोली—आपको दफ़्तर जाना है न? जल्दी तैयार हो जाइये। कल अतिथि-सत्कार में त्रुटि रह गई थी सो आज पूरी करनी है।

अपूर्व ने हँसते हुए कहा—डाक्टर बाबू कहाँ हैं? वे तो शायद अभी तक पड़े-पड़े सोते होंगे?

इस पर भारती उस हँसी में भाग न लेकर बोली—अभी तो वे अस्पताल से लौटे, सोने न सोने का उनके निकट कोई मूल्य नहीं है। अपूर्व ने इस पर आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—इससे वे बीमार नहीं पड़ते?

भारती ने कहा—कभी देखा तो नहीं, उनके निकट से सुख तथा असुख दोनों हार मानकर भाग गये हैं, मनुष्य के साथ उनकी तुलना नहीं होती।

जाने के पहले अपूर्व एक बार डाक्टर से मिलने गया। देखा तो डाक्टर एक ऐसे कमरे में हैं जो बहुत ही छोटा है, महीने में केवल दस आने किराये का कमरा था। सुमित्रा भी वहाँ थी, किन्तु अस्पष्ट रोशनी के कारण पहले-पहल वह देखने में नहीं आई। डाक्टर पगड़ी डाटे हुए एक अजीब भेष में थे। सुमित्रा के स्वर से ज्ञात हुआ वह कुछ विचलित थी, किन्तु डाक्टर का स्वर वैसा ही दृढ़ था। डाक्टर बोले—अब मैं चलता हूँ, यह लोग रहे, आप देखिएगा।

अपूर्व पूछ बैठा—आप कहाँ जा रहे हैं! तो इसके उत्तर में डाक्टर ने कहा वे मामों और उसके उत्तर में जा रहे हैं—इस पर सुमित्रा एकाएक बोल पड़ी—तुम।जानते हो, तुम्हें वहाँ बहुत से लोग पहचानते हैं, वहाँ तुम किसी की आँख में धूल नहीं झोंक सकते, अब कुछ दिन उस तरफ नहीं गये तो क्या? अन्त की ओर सुमित्रा का स्वर जाने कैसा मालूम हुआ। डाक्टर ने केवल मुस्कराते हुए कहा—तुम तो

जानती हो, न जाऊँ तो सारा खेल ही बिगड़ जाय। सुमित्रा आगे न बोली। डाक्टर ने कहा—अब समय हो रहा है, मैं चलता हूँ। अपूर्व का तलुआ सूख रहा था क्योंकि डाक्टर किस विपत्ति का सामना कर रहा है वह यही सोच रहा था। उसने झट से पैर छूकर डाक्टर को प्रणाम किया, डाक्टर ने उसके सिर पर हाथ दिया, उसके बाद स्वयं ही जल्दी से निकल गया। अपूर्व जब उठकर खड़ा हुआ तो उसने देखा कि वह भारती के बग़ल में अकेला खड़ा है, और पीछे उस टूटे कमरे के बन्द किवाड़ों की आड़ में कर्तव्य-कठिन, अशेष-बुद्धि-शालिनी पथ के दावे की भयलेशहीना तेजस्विनी समानेत्री क्या कर रही है यह पता नहीं लगा।

कुछ दिनों के बाद सुमित्रा के नेतृत्व में फयार-मैदान में जो सभा बुलाई गई उसमें अधिक भीड़ नहीं हुई और जिन लोगों ने वक्तृता देने का वादा किया था उनमें से बहुतेरे आ नहीं पाये। सुमित्रा की वक्तृता ही एक उल्लेख योग्य बात रही, और रोशनी का बन्दोबस्त न रहने के कारण इस सभा को भी जल्दी ख़तम कर देना पड़ा। फिर भी इस प्रथम प्रयास को व्यर्थ नहीं कहा जा सकता। अपूर्व की तरह अनाड़ी को भी अनुरोध के कारण खड़ा होकर दो-चार शब्द कहना पड़ा। फिर एक दिन अपूर्व को एक सभा में वक्तृता के लिये बुलाया गया। अपूर्व ने पहुँचकर देखा कि सभा में बड़ी भीड़ है। विपुल जनता के बीच में मंच बना हुआ था। मंच के सामने खड़े होकर कोई पंजाबी बड़े ज़ोर से बोल रहे थे। शायद वह कोई बरख़ास्त किया हुआ मिस्त्री या और कोई था। वक्ता ज़ोरों के साथ बोलते ही गये। लोग भी जोश में हो रहे थे, इतने में कोई भयानक विघ्न हुआ। बात यह थी कोई बीस-पचीस गोरा पुलिस घुड़सवार लोगों की बिना परवाह किये ही भीड़ के अन्दर घुस रहे थे। बात की बात में लोग तितर-बितर हो गये और वक्तृता बन्द हो गई।

गोरों का जो सर्दार था, वह मंच के पास आकर बोला—मीटिङ्ग बन्द करो !

सुमित्रा बीमारी से हाल ही में उठी थी, किन्तु उसने तड़पकर कहा—क्यों ?

गोरे ने कहा—हुक्म। सुमित्रा बोली—किसका हुक्म ? गोरा बोला—सरकार का हुक्म। सुमित्रा बोली—ऐसा क्यों ? गोरे ने कहा—ऐसा इसलिये कि मजदूरों को हड़ताल करने के लिये भड़काना निषिद्ध है।

सुमित्रा बोली—व्यर्थ में किसी को भड़काना हमारा उद्देश्य नहीं है, किन्तु यूरोप की तरह संगठित होने के लिये समझाना हमारा उद्देश्य है।

गोरे ने कहा—संगठित करना ? मालिक के विरुद्ध ! इससे तो शान्ति भंग हो सकती है, यह बिलकुल ही ग़ैरक़ानूनी है। सुमित्रा बोली—शान्तिभंग हो क्यों नहीं सकती, जिस देश में सरकार का अर्थ ही अंग्रेज़ व्यापारी है, और समस्त देश के रक्त-शोषण के लिये ही जहाँ यह विराट यंत्र खड़ा है···। वह अपना वक्तव्य समाप्त कर भी नहीं पाई कि गोरे की आँखें लाल हो गईं और वह तड़पकर बोला—फिर यह बात कहा कि मैंने गिरफ़्तार किया। सुमित्रा के आचरण में ज़रा भी चंचलता नहीं व्यक्त हुई। सुमित्रा को आज ज्वर था, कई दिन से लंघन हो रहा था। सुमित्रा फिर भी तैयार थी। गोरे ने उसकी दृढ़ता से सहमकर घड़ी देखते हुए कहा—दस मिनट समय देता हूँ, इस बीच में बचेखुचे लोगों को समझाकर अलग कर दीजिये। सुमित्रा स्वयं बोलने में असमर्थ थी। उसने चिल्लाकर अपूर्व बाबू से कहा—अपूर्व बाबू, चिल्लाकर सबसे कह दीजिये संघबद्ध हुए। बग़ैर इनका त्राण नहीं है। मालिकों ने हमारा जो अपमान किया है, यदि वे मनुष्य हों तो इसका बदला लें। आगे वह कुछ बोल न सकी। सभानेत्री का आदेश सुनकर अपूर्व का चेहरा फक पड़ गया। विह्वल नेत्रों से सुमित्रा

की ओर देखकर वह बोल पड़ा—क्या इस प्रकार भड़काना ग़ैरक़ानूनी न होगा ? सुमित्रा विस्मित मृदुकंठ से बोली—क्या पिस्तौल के ज़ोर से सभा को तोड़ देना ही क़ानूनी है ? व्यर्थ का रक्तपात मैं नहीं चाहती, फिर भी सारी ताक़त से इस बात को समझा दीजिये कि इस अपमान को वे न भूलें। अपूर्व ने शुष्क कंठ से कहा—मैं तो अच्छी हिन्दी जानता नहीं। सुमित्रा को बोलना नहीं पड़ा, फिर भी उसने कहा—जो कुछ आती है उसी में दो चार शब्द कह दीजिये। क्या करता अपूर्व खड़ा हो गया, किन्तु उसके मुँह से बोल ही नहीं निकल रही थी। तब रामदास तलवरकर उठकर खड़ा हो गया। उसने पुलिस के घुड़सवारों की ओर उँगली से दिखाते हुए बची हुई जनता से कहा—इन कुत्तों को जिन्होंने हमारे, तुम्हारे, सब के ऊपर छोड़ दिया है, वे तुम्हारे ही कारखानों के मालिक हैं। वे किसी भी प्रकार नहीं चाहते कि तुम्हारी दुःख-दुर्दशा की ओर कोई तुम्हारी आँख खोल दे। फिर भी तुम उन्हीं की तरह आदमी हो, वैसे ही पेट भरकर खाने का तथा दिल खोलकर चैन करने का जन्मगत अधिकार तुमने भी ईश्वर के पास से पाया है इस बात को वे सारी शक्ति तथा बदमाशी का उपयोग कर तुमसे बचाना चाहते हैं। क्या इस सत्य को तुम नहीं समझोगे ? यह केवल शोषकों के विरुद्ध शोषितों की आत्मरक्षा की लड़ाई है, इसमें न देश है, न जाति है, न धर्म है, न मतवाद है, इसमें केवल दो ही पक्ष हैं, एक तरफ धनोन्मत्त मालिक है और उसके अशेष प्रवंचित अभुक्त मज़दूर है। इत्यादि।

गोरे ने जितनी हिन्दी सीखी थी उससे वह समझ न पाया कि क्या कहा जा रहा है, किन्तु जनता के मुँह पर उत्तेजना के लक्षण देखकर वह स्वयं भी उत्तेजित हो गया। वक्तृता चलती रही, इतने में एक पंजाबी ने गोरे के कान में कुछ कहा जिससे उसका चेहरा तमतमा गया। वह गरजकर बोला—शट्अप, यह सब न चलेगा, इससे शान्तिभंग होगा। अपूर्व चौंक उठा, वह रामदास के कुर्ते का किनारा पकड़कर खींचने

लगा। बोला—याद रक्खो कि इस मित्रहीन देश में तुम्हारी स्त्री तथा नन्हीं सी लड़की है। किन्तु रामदास बोलता ही गया। गोरे के पलक मारते ही पाँच-छै घुड़सवार कूद पड़े और रामदास घसीट कर गिरफ़ार कर लिया गया। बात की बात में सभा-स्थल में घोड़े दौड़ने लगे, हंटर चलने लगे और कौन किसके पैरों तले आ गया इसका पता नहीं लगा। कुछ चोट खाये हुए लोग वहाँ पड़े रहे। सुमित्रा एकटक ताकती हुई स्तब्ध हो रही। उसके पास ही अपूर्व विमूढ़ की तरह स्थिर होकर बैठा रहा। थोड़ी देर में गाड़ी बुलाई गई, सब लोग उसमें चढ़ गये, किन्तु अपूर्व ने उसमें चढ़ने से इनकार किया, कहा पथ के दावेदारों में अब मेरा स्थान नहीं है।

भारती बाहर खड़ी थी, उसने कहा—पथ के दावेदारों में आपका स्थान न भी रहे पर एक दावे से आपको स्थानच्युत कर सकता है ऐसा कोई नहीं है।

गाड़ी से सुमित्रा ने फिर भी असहिष्णु कंठ से प्रश्न किया, क्या तुम लोगों के आने में देर होगी भारती? भारती ने इस पर गाड़ीवान को हाथ का इशारा करते हुए कहा, आप लोग जायँ, इतना हम पैदल ही जायेंगे। वे चले गये।

अपूर्व ने कहा—तलवरकर की स्त्री को जाकर क्या करूँगा, क्या कहूँगा कुछ समझ में नहीं आता। मैंने उसे सभा में लाकर बड़ी ग़लती की, किन्तु उसे भी तो होश रहना चाहिये था कि बालबच्चेदार आदमी है, विदेश है, निर्बान्धव है......

अपूर्व बैरिस्टर लगाकर तलवरकर को छुड़ाने के लिये तैयार हो गया, फिर तलवरकर की स्त्री के पास भी जाना ज़रूरी था। दोनों जब चलते हुए घर पहुँचे तो सन्ध्या ख़तम हो चुकी थी। देखा गया डाक्टर एक आराम कुर्सी पर लेटे हुए हैं। भारती ने पहचानकर कहा—डाक्टर साहब, आप कब आये, सुमित्रा दीदी के साथ आपकी भेंट हुई?

अपूर्व ने कहा—भयानक कांड हो गया डाक्टर बाबू ! हमारे एकाउन्टेन्ट रामदास को पुलिस पकड़ ले गई। भारती बोली—इनसिन में उनका घर है, वहीं उनकी स्त्री तथा लड़की है, वे इस घटना के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानतीं। डाक्टर ने जम्भहाई लेते हुए कहा, भारती ज़रा चाय तो बनाकर पिलाओ, बड़ा थक गया हूँ। भारती बोली—बनाती हूँ, हमें तो अभी इनसिन के लिए चल देना है। डाक्टर ने कहा—उसकी कोई ज़रूरत नहीं। अपूर्व ने आश्चर्य के साथ कहा—ज़रूरत क्यों नहीं ? डाक्टर ने हँसकर कहा—इसलिये नहीं कि आप ज्यादा से ज्यादा इधर-उधर के जंगल में भटककर लौट आयेंगे, घर का पता भी नहीं मिलेगा, वह भार मेरा है।

डाक्टर साथ ही साथ पत्र भी लिखने लगे और चाय भी पीने लगे। अपूर्व के मन में एक बात बारबार आन्दोलित हो रही थी, वह मानो उसी का सूत्र पकड़कर बोला—समिति का सदस्य न होते हुए भी रामदास जो सज़ा भुगतने जा रहा है वह असाधारण है। डाक्टर ने कहा—सज़ा नहीं भी हो सकती है। अपूर्व ने कहा—यह तो ख़ैर भाग्य की बात है, किन्तु यदि सज़ा हो तो सारा अपराध मेरा है। मैं ही उसको ले आया था। इसके जवाब में डाक्टर हँसकर चुप हो रहे। अपूर्व बोला—जिसको मालूम है इन सब बातों का नतीजा जेल इत्यादि हैं, जो जेल पहले भुगत चुका है, जिसकी पीठ में बेत के दाग अब भी हैं, उसके लिये फिर इस प्रकार का साहस करना असाधारण है। डाक्टर ने कहा—पराधीनता की आग जिसके सीने के अन्दर दिन-रात जल रही है उसके लिये और उपाय ही क्या है ? न तो साहब के यहाँ की बड़ी नौकरी न इनसिन में स्त्री-पुत्र परिवार ही उसे रोक सकता है। डाक्टर की इस बात को व्यंग समझकर अपूर्व तिलमिला गया और वह कह बैठा— आप मुझे चाहे जितना व्यंग करें। तलवरकर आपके बराबर है। वह निर्भीक है, वीर है, आपकी तरह वह भागकर जान नहीं बचाता

फिरता है। आपकी तरह भेष बदलकर पुलिस के डर से वह लँगड़ा कर नहीं चलता है, आप तो कायर हैं!

प्रचंड विस्मय से भारती अवाक् हो गई, वह और न सुन सकी, वह एकाएक दृढ़कंठ से बोल उठी—किसको क्या कह रहे हैं भूल रहे हैं क्या? क्या अकस्मात पागल हो गये?—अपूर्व बिना ठहरे हुए बोला—जो कुछ भी हो, वे तलवरकर के पैर की धूल के योग्य नहीं हैं, मैं इसे साफ़ कहता हूँ। वे उसकी वक्तृत्वशक्ति तथा निर्भीकता पर मन ही मन जलते हैं, इसलिए तुम्हें आज जाने न दिया, और मुझे चालाकी से रोक लिया। भारती ने कहा—आपको हम ग़लत समझी थीं। भय से जिस व्यक्ति को हिताहित ज्ञान नहीं रहता उस पागल का यहाँ कोई स्थान नहीं है। जाइए, किसी बहाने से अब मेरे यहाँ आने की चेष्टा न कीजिएगा। अपूर्व के इस पर चुप होकर उठ खड़ा होते ही डाक्टर ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—थोड़ी देर ठहरिए, स्टेशन जाने के रास्ते में मैं आपको घर पहुँचा दूँगा। फिर डाक्टर ने लिखी हुई चिट्ठियों को उसके हाथ में देकर, हँसकर कहा—एक सुमित्रा की, एक तुम्हारी एक पथके दावेदारों की है। मेरा उपदेश, आदेश सब इसी में पाओगी। चिट्ठियों को मुट्ठी में लेकर भारती बोली—कितने दिन के लिए चल दिये? डाक्टर ने मुस्कराकर कहा—देवा न जानन्ति...। इसी समय एक घोड़ागाड़ी आकर किवाड़े के पास ठहरी। एक के पहनने में ऊपर से नीचे तक सूट था, डाक्टर के अलावा उसे कोई नहीं जानता था, और दूसरा व्यक्ति तलवरकर स्वयं था। सूटवाले सज्जन ने कहा—ज़मानत में इतनी देर हुई, मुक़दमा शायद न चले। रामदास ने डाक्टर से कहा—उस दिन स्टेशन पर मैंने आपको पहचान लिया था। पूना की जेल में मेरे जाने के बाद ही आप चले गये। नीलकांत जोशी को फाँसी हुई न, आपको भी फाँसी ही होती यदि आप दीवार न फाँद जाते। डाक्टर ने कहा—हाँ, बात तो ऐसी ही है। अपूर्व

दाँत दबाकर अपने को सम्हालने की चेष्टा कर रहा था, वह यह सुनकर जल्दी से कमरे से निकल गया।

कल सारी रात भारती को नींद नहीं आई थी। वह चाहती थी जल्दी सो जाय। सन्ध्या समय जब वह इसी उद्देश्य से खाना जल्दी पकाने में व्यस्त थी, इतने में सुमित्रा का एक पत्र मिला कि जिस अवस्था में भी हो चली आओ। उसने पत्र-वाहक से पूछा—क्या बात है हीरासिंह? यह हीरासिंह पथ के दावेदार का सदस्य न होने पर भी बड़ा विश्वासी था। पंजाबी सिक्ख था, हाँगकाँग की पुलिस में रह चुका था। उसने धीरे से कहा—चार-पाँच मील पर एक ज़रूरी सभा हो रही है, उसे जाना ही पड़ेगा। रात दस बजे एक खँडहर में जाकर सुमित्रा की गाड़ी रुकी। हीरा का हाथ पकड़कर अँधेरे में टटोलते-टटोलते वह सभास्थल में पहुँचकर डाक्टर के बगल में जाकर धम से बैठ गई। हीरासिंह कमरे के बाहर ही रह गया। अजाने भय से भारती का दिल धड़क रहा था। भारती ने देखा जो लोग बैठे हैं उनमें से चार-पाँच को वह क़तई नहीं पहचानती। परिचितों में सुमित्रा, तलवरकर तथा वह सूटधारी व्यक्ति कृष्ण ऐयर थे। पहले ही एक भीषणाकृति व्यक्ति के ऊपर आँख पड़ती थी, उसके पहनने में गेरुआ रंग की लुंगी थी और सिर पर बड़ी-सी पगड़ी थी। मुँह हँड़िये की तरह गोल और देह गंडार की तरह स्थूल, मांसल और कर्कश थी। रङ्ग तामे को तरह था। यह व्यक्ति मङ्गोल जाति का है यह देखते ही साफ़ हो जाता था। इस वीभत्स व्यक्ति को भारती ताककर देख ही न सकी। सुमित्रा बोली—बोथा कम्पनी ने आज रामदास को बर्खास्त कर दिया, अपूर्व की भी वही दशा होती यदि वह पुलिस के निकट हम लोगों की सारी बातें खुलकर बता न देता। वह भीषण व्यक्ति चिंघाड़-कर कह उठा—डेथ! रामदास ने कहा—सव्यसाची ही डाक्टर हैं यह खबर वे जानते हैं, होटल के कमरे में उन्हें पकड़ा जा सकता है यह भी अपूर्व बता चुका है। यहाँ तक की मुझे इससे पहले राजनैतिक

अपराध में दो साल सज़ा हुई थी यह भी बता दिया।

सुमित्रा बोली—यदि डाक्टर पकड़े जायँ तो उन्हें या तो फाँसी होगी या काले-पानी; सज्जनो, आप इसकी क्या सज़ा तजवीज़ करते हैं?

सब ने एक स्वर से कहा—डेथ! सुमित्रा ने पूछा, भारती तुम्हें कुछ कहना है? भारती ने कुछ कहा नहीं, केवल सिर हिलाकर बोली—उसे कुछ कहना नहीं है।

उस भयंकर आदमी ने अब बात की, उच्चारण सुनकर मालूम हुआ कि वह चटगाँव की तरफ़ का मग है। बोला—एक्सिक्युशन का भार मेरे ऊपर रहा; मैं गोली, छुरा इत्यादि पर विश्वास नहीं करता। मेरी गोली बारूद सब यही है, कहकर उसने बाघ की तरह दोनों पंजों को शून्य में उठा दिया। तलवरकर ने कहा—बाबूजी को उनका फैसला सुना दिया जाय। पाँच मिनट के अन्दर ही मुकदमा ख़तम हो गया, फैसला जैसा संक्षिप्त वैसा ही स्पष्ट था। इसमें कोई ऐसी जटिलता नहीं थी जो समझ में न आवे। फिर भी भारती की समझ में कुछ बात नहीं आ रही थी, जो भी बोल रहा था वह उसी के मुँह की ओर देखती थी। अपूर्व के ऊपर संकट कितना क़रीब था, इसका उसको कुछ अनुमान नहीं था। सुमित्रा के इशारे पर एक व्यक्ति उठा और दो मिनट बाद अपूर्व को लेकर घर में घुसा। उसके हाथ पीछे की ओर से कसकर बँधे हुए थे, कमर से एक भारी पत्थर का टुकड़ा लटक रहा था। फौरन ही भारती चेतना खोकर डाक्टर के शरीर पर गिर पड़ी। सुमित्रा पुकार कर बोली, अपूर्व बाबू! हमने आपको मृत्युदण्ड दिया, आपको कुछ कहना है? अपूर्व ने सिर हिलाकर कहा—नहीं। डाक्टर ने अब तक कुछ नहीं कहा था, वे एकाएक बोल उठे—हीरासिंह तुम्हारी पिस्तौल कहाँ है? हीरासिंह ने पिस्तौल दे दी तो उसे जेब में रखते हुए डाक्टर ने कहा—और किसी के पास कोई पिस्तौल या रिवाल्वर है? सब ने कहा नहीं। फिर डाक्टर ने कहा—सुमित्रा, तुमने कहा कि हम लोगों ने अपूर्व को मृत्युदण्ड दे दिया, किन्तु भारती ने तो नहीं दिया। सुमित्रा

एक मुहूर्त तक भारती के मुँह की ओर ताककर बोली—किन्तु भारती तो दे ही नहीं सकती। डाक्टर ने कहा—रुकना उचित भी नहीं है, यही बात है न भारती? भारती ने जवाब न दिया, उसने औंधी होकर डाक्टर की गोद में मुँह छिपा लिया। डाक्टर ने उसके सिर पर एक हाथ रखते हुए कहा—अपूर्व बाबू ने जो कुछ किया वह लौटता नहीं, उसका नतीजा हमें भुगतना पड़ेगा चाहे हम इन्हें सजा दें चाहें न दें, किन्तु मैं कहता हूँ सजा की ज़रूरत नहीं, भारती इनका भार ले ले। ज़रा इस दुर्बल व्यक्ति को मजबूत बनावे। क्या कहती हो सुमित्रा? सुमित्रा ने कहा, नहीं। सब ने एक साथ कहा, नहीं। उस बदसूरत व्यक्ति ने भारती के सम्बन्ध में कुछ कहकर आस्फालन किया। सुमित्रा ने कठिन कंठ से कहा—हम सभी एकमत हैं, यदि हम इतने बड़े अन्याय को प्रश्रय देंगे तो यह सब टूट-फूटकर चकनाचूर हो जायगा। डाक्टर ने कहा—यदि ऐसा हो ही जाय तो उपाय क्या है? सुमित्रा गरजकर बोली—वाह ख़ूब कहा। उपाय क्या है? आपके अकेले की बात से कुछ आता-जाता नहीं··· गर्जन शान्त होने पर डाक्टर ने कहा—सुमित्रा, विद्रोह को प्रोत्साहन मत दो, तुम लोग जानते हो मेरे अकेले का मत तुमसे सौ से कठिन है। फिर उस बदसूरत व्यक्ति को सम्बोधन करते हुए डाक्टर ने कहा—ब्रजेन्द्र, तुम्हारी गुस्ताखी के लिए बैटेविया में तुमने एक बार सज़ा देने के लिये बाध्य किया था, दूसरी बार ऐसा न करो। भारती की पीठ पर स्नेह-स्पर्श रखकर उन्होंने कहा—मैंने अपूर्व को अभय दे दिया। किन्तु अपूर्व अब यहाँ न रहे देश लौट जावे। यहाँ वह जल्दी ही आज की बात, तुम्हारी बात भूल जायगा। अब हम सभानेत्री से अनुरोध करते हैं कि वे सभा भंग कर दें।

डाक्टर के आदेश से हीरासिंह ने अपूर्व के बन्धन खोल दिये। सुमित्रा बोली— ख़ूब यह अभिनय रहा, अब युगल-मिलन के अन्तिम अंक में करतल-ध्वनि करने की इच्छा होती है ऐसा करने पर अभिनय

सर्वाङ्गपूर्ण हो जाता, क्यों भारती ? डाक्टर अपूर्व और भारती को लेकर रवाना हो गये और उनको परिचित स्थान तक पहुँचा दिया।

घर पर पहुँचकर अपूर्व ने भारती से कहा—इस मकान में पैर रखते ही तुम्हारे पिता के साथ झगड़ा हुआ, अदालत में जुर्माना भी हो गया, जो कभी न हुआ था, उसी से हमारी आँख खुलनी चाहिए थी, किन्तु न खुली। भारती चुप थी, चुप ही रही। भारती उसके सिर पर हाथ फेर रही थी, बात यह है बंधन के कारण वह अस्वस्थ हो गया था। भारती सोच रही थी इस अत्यन्त साधारण व्यक्ति को उसने प्यार कैसे किया ? उसका हाथ यह सोचकर रुक-रुक जाता था। यह वह जानती थी कि अपूर्व का प्राण बचाकर वह आज दल के लोगों की आँखों में अपराधी और सुमित्रा की आँखों में छोटी हो गई है। अपूर्व ने कहा—इतनी उम्र में इतनी बड़ी नौकरी कितनों को नसीब होती है, किन्तु यह सधी नहीं। ख़ैर देश में वापस जाकर कुछ कह दूगाँ। बन्धन से हाथ टूट गया है, रता नहीं कैसे कभी अच्छा होगा, होगा भी कि नहीं••• इत्यादि। भारती को आश्चर्य हो रहा था कि अपने परम मित्र तलवरकर के प्रति, दल के प्रति और विशेषकर डाक्टर के प्रति उसने कितना बड़ा अपराध किया था इसकी उसे मानो चिन्ता ही नहीं थी; नौकरी गई, हाथ टूट गया बस यही उसका सारा रोना था। भारती सोचती रही। प्रभात की प्रथम रश्मि के साथ ही वह उस जगह से भाग निकली जैसे शराबी का नशा छूटते ही वह जब देखता है किसी कंदर्प स्थान में पड़ा है तो वह वहाँ से भाग निकलता है।

अगले दिन डाक्टर और भारती में वात हो रही थी। डाक्टर कह रहे थे—देश का अर्थ नद, नदी, पहाड़ नहीं है। एक अपूर्व से ही तुम को जीवन से धिक्कार हो गया, वैराग्य लेना चाहती हो, और देश में एकाध अपूर्व नहीं सैकड़ों अपूर्व हैं। अरे, पराधीन देश का सबसे बड़ा अभिशाप तो कृतघ्नता और विश्वासघात है। श्रद्धा नहीं, सहानुभूति नहीं, कोई पास न बुलायेगा, कोई सहायता न करेगा, विषधर साँप

समझकर लोग तुमसे दूर हट जायेंगे। देशप्रेम का यही हमारा पुरस्कार है, इससे अधिक दावा करना चाहो तो परलोक में करना। इतनी बड़ी परीक्षा तुम क्योंकर देने लगीं ? बल्कि आशीर्वाद करता हूँ अपूर्व को लेकर तुम सुखी होओ। मैं जानता हूँ एक न एक दिन उसकी सारी दुविधा, सब संस्कारों को डुबाकर तुम्हारा मूल्य समझ जायगा। भारती की दोनों आँखे आँसू से भर गईं, वह पूछ बैठी—तुम हमें विश्वास नहीं कर पाते हो तभी हमें समिति से अलग कर देना चाहते हो दादा ! डाक्टर ने हँसकर कहा, क्या कोई ऐसी लक्ष्मी की माया काट सकता है ? किन्तु तुमने तो देखा इसमें कितना धोखा, कितनी हिंसा तथा कितना भयंकर क्रोध संलग्न है। मालूम होता है इन सबके लिए तुम नहीं हो। भारती की आँखों में फिर आँसू आ गये, वह बोली—तुम भी अब इनमें न रहो। डाक्टर हहराकर हँसते हुए बोले—अबकी तुमने बड़ी बेवकूफी की बात कही भारती। भारती बोली—यह तो है, किन्तु ये तो सभी बड़े निर्दयी हैं। इस प्रकार बातचीत करते हुए काफी समय हो गया तो डाक्टर चले गये।

अपूर्व देश चला गया। जाते दिन उसने भारती को एक ख़बर भी नहीं दी, भारती दुखी थी। डाक्टर एक बार और उसे तसल्ली देने के लिए पहुँचे। बातचीत में सुमित्रा पर बात चल पड़ी। भारती पूछ बैठी—सुमित्रा तुम्हारी कौन है, उसे तुम कहाँ से ले आये ?—प्रश्न सुनकर डाक्टर चुप हो रहे, फिर मृदु हँसी हँसकर बोले—वह स्वयं इसका उत्तर दे तभी मालूम हो सकता है कि वह कौन है, किन्तु जब मैं उसे क़रीब-क़रीब पहचानता नहीं था उस समय मैंने एक मौके पर उसे अपनी स्त्री बताकर परिचय दिया था। सुमित्रा नाम मेरा ही दिया हुआ है। सुना है उसकी माँ यहूदिन थी, किन्तु बाप बङ्गाली ब्राह्मण था। वे पहले सर्कस पार्टी के साथ जावा गये थे फिर सुरवाया के रेल स्टेशन में नौकर थे। जब तक वे जीवित थे सुमित्रा मिशनरियों के स्कूल में शिक्षा प्राप्त करती थी, उनके मरने के बाद पाँच छै वर्ष का इतिहास

तुम्हारे सुनने की ज़रूरत नहीं ! मैं भी सब नहीं जानता, केवल इतना ही जानता हूँ कि माँ, दो मामा, लड़की, एक चीनी तथा दो मद्रासी मुसलमान मिलकर ये लोग जावा में अफ़ीम, गाँजा चोरी से मँगाने का काम करती थीं, अक्सर मुरवाया और बैटेविया के रास्ते में सुमित्रा को देखता था, किन्तु तब यह नहीं जानता था कि वह किस सूत्र में घूमती है। अत्यन्त सुन्दर होने के कारण उसको मैंने लक्ष्य किया था। एक दिन अकस्मात् तेग स्टेशन के वेटिङ्ग रूम में परिचय हो गया। बङ्गाली की लड़की है यह तभी मुझे ज्ञात हुआ। किन्तु तब भी कुछ घनिष्टता नहीं हुई। एक दिन बेङ्कुलान शहर की जेटी में अकस्मात् भेंट हो गई। एक बक्स अफ़ीम, चारों तरफ़ पुलिस और बीच में सुमित्रा थी। मुझे देखकर वह झरझर रोने लगी, यह सन्देह नहीं रहा कि मुझे ही उसे बचाना है। अफ़ीम के बक्स से बिलकुल इनकार कर मैंने उसे अपनी स्त्री कहकर परिचय दे दिया। इतना उसने नहीं सोचा था, वह चौंक पड़ी। सुमात्रा की घटना थी, इस कारण उसका नाम सुमित्रा रख दिया। उसका पहले का नाम रोज़ दाऊद था। मुक़दमे में सुमित्रा छूट गई, किन्तु सुमित्रा ने मुझे छोड़ना न चाहा। मैं उसे एक दिन अकेली छोड़कर चल दिया। फिर इसके बाद सेलिबिस द्वीप के मैका-सार शहर में एक छोटे से होटल में ठहरा हुआ था। एक दिन लौटकर देखता क्या हूँ कि सुमित्रा कमरे में विराजमान है। हिन्दू स्त्री की तरह कपड़े पहने हुई थी। मुझे देखकर ही झुककर प्रणाम कर बोली—मैं सब कुछ छोड़कर चली आई हूँ, मुझे अपने काम में भर्ती कर लो। मुझसे विश्वस्त अनुचर तुम्हें न मिलेगा। बाद की बात यह है कि तब से उसने मुझे शिकायत का मौक़ा नहीं दिया। मैं उसे लेकर कैन्टन के एक होटल में अलग अलग कमरे में जाकर ठहरा। एक दिन दाऊद का गिरोह आ पहुँचा। दस आदमी थे, एक अर्ध-हबशी अर्ध-अरबी था, एक छोटा-मोटा हाथी समझ लो, अकस्मात् वह दावा कर बैठा कि सुमित्रा उसकी स्त्री है।

भारती बोली—ओहो ! तब तो आपमें और उसमें खूब लड़ाई हो गई होगी ?

डाक्टर ने कहा—हाँ, सुमित्रा ने इससे इनकार कर कहा, यह एक षड्यंत्र है याने वे उसे चोरी से चलनेवाले अफ़ीम के व्यापार में लौटा लेना चाहते हैं। मैंने पुलिस का डर दिखाया तो वे चले गये, किन्तु जाते समय चेतावनी देते गये कि उनके हाथों से अभी तक कोई बचा नहीं। गहरी रात में किवाड़ा खोलने की आवाज़ हुई। देखता क्या हूँ कि बारह आदमी होटल में घुस आये। उनकी योजना थी मेरा दरवाज़ा किसी प्रकार रोककर बग़ल की सीढ़ी से ऊपर उसके कमरे में पहुँचें, किन्तु इसके पहले ही मैंने दरवाज़ा खोलकर सीढ़ी का रास्ता बन्द कर दिया। एक गोली आकर बायें कन्धे में लगी, एक घुटने के नीचे लगी। सबेरा होते ही पुलिस आई, बयान हुए, छै आदमी उठाकर ले जाये गये, होटलवाले ने बयान दिया डाका पड़ा था। जब उन लोगों का पता नहीं मिला तो वे गाड़ दिये गये।

यह बातचीत डाक्टर के सामयिक अड्डे पर हुई थी। जब डाक्टर रात गये उसे पहुँचाने गये तो मालूम हुआ कि भारती के घर पर पुलिस की दृष्टि है, वहाँ डाक्टर का जाना ठीक नहीं हो सकता। तय हुआ डाक्टर के एक मित्र कवि के यहाँ चला जाय। यह कवि अक्सर नशे में रहते थे, बेहला के उस्ताद थे। इसके अतिरिक्त प्रकांड पंडित थे, किस पुस्तक में क्या है यह डाक्टर अक्सर उनसे जान लेते थे। इस कवि का नाम शशिपद भौमिक था। जिस समय वे पहुँचे दूर से बेहला बजने की आवाज़ से ज्ञात होता था कि कवि जग रहे हैं। मालूम होता है बेहला से कितना विलाप उछलकर, उमड़कर क्षितिज में फैल रहा है। भारती ने चौंककर कहा—ऐसा न तो कभी सुना न सोचा था। मालूम हुआ नवतारा नामक एक औरत के साथ कवि रहते हैं। भारती मचल गई—फिर मैं कैसे इस घर में जाऊँ ! डाक्टर बोले—इनकी शीघ्र शादी होनेवाली है। भारती ने कहा—शादी कैसे होगी जब पति जीवित है।

डाक्टर ने कहा—भाग्य सुप्रसन्न हो जाय तो मरते क्या देर लगती है ! सुनता हूँ दस दिन पहले वह मर चुका है। कवि ने तपाक से दोनों का स्वागत किया। कवि का सिर हमेशा ऋणभारों से डूबा रहता था, किन्तु उसको हमेशा यह आशा बनी रहती थी कि कहीं न कहीं से एक मोटी रक़म उसके हाथ लगेगी। इसी कल्पित रुपये के ऊपर वह हमेशा उधार माँग लेता था। पुरानी बातें चल पड़ीं, इतने में सीढ़ी पर पैरों की आहट हुई। डाक्टर ने पिस्तौल निकालते हुए कहा—इस अँधेरे में मुझे बाँध सके ऐसा कोई नहीं है। कवि व्यस्त नहीं हुए। उन्होंने कहा, नवतारा, सुमित्रा वगैरह आ रही हैं। कोई ऐसी बात नहीं, किन्तु भारती का चेहरा पीला पड़ गया क्योंकि मालूम हुआ साथ में तलवरकर, ब्रजेन्द्र आदि भी हो सकते हैं। ठीक था, यही लोग थे। किसी के मुँह पर हँसी नहीं थी, बल्कि आँधी के पूर्वलक्षण थे। ब्रजेन्द्र बोला—आपके स्वेच्छाचार की हम निन्दा करते हैं डाक्टर, यदि हम कभी अपूर्व को पा जायँ तो मैं उसका···डाक्टर ने वाक्य को सम्पूर्ण करते हुए कहा—उसे ख़तम करोगे न ? क्यों सुमित्रा, तुम लोग सब इनसे सहमत हो ? सुमित्रा ने आँखें नीची कर लीं, सब चुप रहे। डाक्टर ने कहा—इसका अर्थ है, इसके पहले आलोचना भी हो चुकी है ? याद होगा एक मौके पर यह तय हुआ था कि मेरे पीछे मेरे किसी कार्य की अलोचना नहीं चलेगी, दूसरा यह कि मेरे विरुद्ध विद्रोह की सृष्टि करना महान् अपराध है। इन जुर्मों की सज़ा मौत है—डाक्टर ने झट पिस्तौल तान ली। सुमित्रा के होठ काँप रहे थे, बोली—परस्पर में यह क्या ?—तलवरकर ने मौन भंग करते हुए कहा—अपूर्व जीवित है इससे मैं सुखी हूँ, किन्तु आपने इसमें अन्याय किया। कृष्ण ऐयर ने कन्धा हिलाकर इस बात का समर्थन किया। ब्रजेन्द्र ने इस प्रकार सहानुभूति से ताक़त पाकर कहा—जब एक का प्राण जाना ही है तो मेरा ही जाय। मैं तैयार हूँ। सुमित्रा बोली—एक ट्रेटर के बदले जब एक ट्रायड कामरेड की जान की जब आपको ज़रूरत है डाक्टर, तो मैं भी प्राण दे सकती

हूँ। डाक्टर इससे विचलित नहीं हुए बोले—तुम्हें मैं व्यर्थ का भय नहीं दिखाता ब्रजेन्द्र ! सुमित्रा तुम्हारे दल में रहे तो रहने दो, 'आई विश यू गुड लक', किन्तु मेरा रास्ता तुम छोड़ दो—इसके बाद डाक्टर भारती का हाथ पकड़कर उठ गये। जाते समय कवि से दो-चार बात करते गये। रास्ते में नाव पर भारती बोली—हमें तो मज़दूरों की भलाई, शिक्षा आदि से मतलब है, इस रक्तपात से क्या वास्ता ?—डाक्टर बोले—केवल कुछ कुली मज़दूरों की भलाई के लिए मैंने पथ के दावेदारों की सृष्टि नहीं की, इसका लक्ष्य बहुत बड़ा है। इस लक्ष्य के सामने शायद इनको भेड़-बकरी की तरह बलिदान करना पड़ेगा। विप्लव शान्ति नहीं है। महामानव के मुक्ति-सागर में मनुष्य की रक्तधारा लहरें मारकर दौड़ चलेंगी यही मेरा स्वप्न है। इतने युग का पर्वत-प्रमाण पाप नहीं तो धुलेगा क्योंकर ? अशान्ति पैदा करने का अर्थ सकल्याण पैदा करना नहीं है। शन्ति ! शन्ति ! शन्ति ! सुनते-सुनते कान परेशान हो गये। इस मिथ्यामन्त्र के ऋषि वे ही लोग हैं जो दूसरों का शोषण कर हवेलियों में रहते हैं। नहीं भारती। यह संस्था जितनी भी पुरानी तथा पवित्र हो उसे ढहा देना ही पड़ेगा। हड़ताल ज़रूर एक तरीका है, किन्तु निरुपद्रव हड़ताल का कोई अर्थ नहीं होता। उसके साथ उपद्रव तो लगा ही है। कोई भी हड़ताल तब तक नहीं होगी जब तक उसके पीछे बाहुबल नहीं है। अंतिम परीक्षा उसी में होती है। भारती ने कहा—तो क्या मैं किसी काम में नहीं आ सकती ? डाक्टर ने सोचकर कहा—क्यों नहीं, आर्तों की, रोगग्रस्तों की, बाढ़-पीड़ितों की सेवा को उपलक्ष्य कर संस्थाएँ चल रही हैं, किन्तु इन सब कामों को मैं बच्चों का खेल समझता हूँ। भारत की स्वतंत्रता ही मेरा एकमात्र लक्ष्य है, मुझे तुम और न खींचो भारती।

इसके कुछ दिन बाद कवि और नवतारा की शादी हो रही थी। कवि की यह सानुरोध प्रार्थना थी कि किसी एक समय डाक्टर भारती के साथ आकर आशीर्वाद कर जावें। डाक्टर और भारती चलकर

रवाना हुए, किन्तु भारती को कोई उत्साह न था, बोली—कितना गंदा मामला है ? डाक्टर कुछ देर तक चुप रहे फिर बोले—शशी और नवतारा की शादी शायद बहुत से लोगों के संस्कार को बाधा पहुँचाये किन्तु यह दोष शशी का नहीं है। यह दोष उनका है जो क़ानून बनाते हैं। मेरा एकमात्र क्षोभ यह है कि शशी ने नवतारा को प्यार किया।

फिर क्रान्ति पर बात-चीत चली, डाक्टर बोले—क्रान्ति माने मारकाट नहीं है, क्रान्ति माने अत्यन्त द्रुत आमूल परिवर्तन है। शत्रु का सैन्यबल तथा विराट युद्धोपकरण देखकर हम घबड़ाते नहीं। आज जो उनका आदमी है कल वह हमारा आदमी भी तो हो सकता है। नीलकान्त शत्रु को मित्र बनाने के लिए ही छावनी में गया था। हाय नीलकान्त ! कौन उसका नाम जानता है ? आग की एक चिनगारी पूरे भूभाग को इसलिए जला सकती है क्योंकि वह जलती जाती है और साथ ही अपना ईंधन आप ही संग्रह करती जाती है। नहीं, मैं अग्निकांड से घबड़ाता नहीं। प्रायश्चित्त केवल क्या मुँह की बात है ? पूर्वपुरुषों का युगान्तसंचित पाप का अपरिमेय स्तूप आखिर ख़तम कैसे होगा ? करुणा से न्याय का धर्म कहीं बढ़कर है भारती ! लज्जाहीन नग्न स्वार्थ और पशुशक्ति ही इस यूरोप की ईसाई सभ्यता का जो हमारे ऊपर लदी है उसका असली स्वरूप है। हाँ सती-दाह वग़ैरह का विलोप हुआ, इतिहास में तो और बहुत कुछ कहा जाता है। इस बने हुए इतिहास को लड़कों को घोखना पड़ता है, और मास्टरों को उदरान्न के लिए इसे पढ़ाना पड़ता है। सभ्य राजतन्त्र की यही नीति है। रहा मैं सो मैंने देश की भलाई करने का बीड़ा नहीं बल्कि उसको स्वतंत्र करने का बीड़ा उठाया है। यों जो लोग अनाथाश्रम, विधवाश्रम आदि खोलकर उसकी भलाई कर रहे हैं उनको मैं महान् मानता हूँ। मेरे हृदय की अग्नि तो तभी बुझेगी जब सुनूँगा कि यूरोप की ढोंगी सभ्यता, नीति, धर्म समुद्र के अतल गर्भ में डूब गया है। इस विषकुम्भ को लेकर यूरोप जब सौदा करने चला था, तो उसको केवल जापान ने पहचाना

था, तभी तो वह आज यूरोप के बराबर तथा समकक्ष हो रहा है......

इस तरह बात करते हुए वे कवि के घर पर पहुँचे, ' किन्तु वहाँ नवतारा नहीं थी। कवि ने कहा—नहीं, शादी मेरे साथ नहीं हुई, वह जो अहमद है, गोरा-सा, कुट साहब की मिल का टाइमकीपर है उसी के साथ नवतारा की आज दुपहर को शादी हुई। सभी पहले से ठीकठाक था, मुझे नहीं बताया था—शशी ने डाक्टर को अलग ले जाकर बताया कि अपूर्व लौट आया है। बात-बात में डाक्टर ने शशी को कहा, अब तुम्हारी नवतारा गई, किन्तु कविता है, उसी-की साधना करो, किन्तु मज़दूरों का कवि बनने की व्यर्थ चेष्टा न करो।'तुम बंगाली भद्रशिक्षित समाज के कवि बनो। फिर इसी प्रकार बातों के सिलसिले में डाक्टर ने कहा—पुराना माने ही पवित्र नहीं है भारती। मनुष्य सत्तर साल का हो चुका है इसीलिए वह दस वर्ष के शिशु से पवित्र नहीं हो जाता। × × जिस संस्कार के मोह से अपूर्व तुम्हें अलग हटा सकता है क्या वह प्राचीन होने पर भी पवित्र हो सकता है? तुम्हारा ईसाई धर्म भी आज उसी प्रकार असत्य हो गया है, इसका प्राचीन मोह तुम्हें त्यागना ही पड़ेगा क्योंकि सभी धर्म मिथ्या हैं, आदिम दिन का कुसंस्कार है। विश्व-मानवता का इतना बड़ा शत्रु और कोई नहीं है।

भारती का चेहरा फक्क पड़ गया, उसने कहा—तुम्हारा पथ और हमारा पथ आज से अलग है,मेरा स्नेह का पथ है, करुणा का पथ है, धर्मविश्वास का पथ है, यही पथ मेरे लिए श्रेय है, यही पथ।मेरे लिए सत्य है।

भारती जब घर लौट गई तो उसको डाक्टर की वह बात बार-बार याद आने लगी कि इस परिवर्तनशील जगत में सत्योपलब्धि नामक कोई वस्तु नहीं है, उसका जन्म है मृत्यु है— युग-युग में, काल-काल में मानव के प्रयोजन में उसे नया होकर आना पड़ता है। अतीत के सत्य को वर्तमान में सत्य समझना पड़ेगा यह विश्वास भ्रान्त है, यह धारणा कुसंस्कार है। फिर सव्यसाची ने यह भी कहा था—पराधीन देश में शासक और शासित की नैतिक बुद्धि जब एक हो जाती है तो उससे बढ़कर

दुर्भाग्य और देश का नहीं है, भारती ! उस दिन इसका तात्पर्य समझ में नहीं आया था, आज जैसे वह अर्थ उसके निकट परिस्फुट हो गया।

सबेरे ही होटल के सरकार ठाकुर ने आकर ख़बर दी की अपूर्व बाबू कल रात से ही भारती को खोज रहे हैं। भारती का मुँह एक मुहूर्त के लिए सूख गया, बोली, उनको मेरी क्या ज़रूरत पड़ी ? सरकार ने कहा—शायद अपनी माँ की बीमारी के सम्बन्ध में कुछ कहें भारती ने कहा—मुझे फुर्सत नहीं। डपटने को तो डपट दिया किन्तु बराबर वह यह सोचती रही कि क्यों अपूर्व मिलना चाहता है। शाम को शशी सामान सहित आ धमके। भारती ने उनको घर में नहीं लिया; किन्तु हँसकर होटल के डाक्टर वाले कमरे में ठहरा दिया।

अकस्मात् भारती को यह खबर मिली कि अपूर्व की माँ जो बर्मा आई थीं मर गईं। फिर भारती से न रुका गया। वह अपूर्व जिस धर्मशाले में टिका था वहाँ पहुँची। वहाँ देखा तो अभी तक कमरा पानी से धुला है। अपूर्व बैठा है, उसके मुँह पर सद्यः मातृवियोग की छाया है। भारती की आँखों में आँसू आ गये। भारती ने कहा—समय हुआ था, माँ स्वर्ग में चली गईं, किन्तु ऐसे तुम्हें रहने न दूँगी, चलो हमारे यहाँ। वह फिर रोने लगी। बोली—नहीं मैं नहीं सुनती, शनिवार के जहाज़ से देश लौट जाना किन्तु तब तक तो मेरी आँखों के सामने रहो, नहीं तो मैं ज़हर खाकर मरूँगी। अपूर्व राजी हो गया।

फिर एक दिन उसी मकान में जहाँ अपूर्व का मुक़दमा हुआ था, पथ के दावेदारों की सभा हो रही थी। तलवरकर अत्यन्त घायल हालत में गिरफ़्तार हुआ था, संभावना यह थी कि यदि जी जाय तो लम्बी सजा होगी। भारती ने पूछा, उनके असहाय परिवार का क्या होगा ? डाक्टर ने कहा—क्या होगा ? अकस्मात मनुष्य मर जाने पर उसके परिवार का जो होगा सो ही उनका होगा। विदेशी कानून के अनुसार अपनी जन्मभूमि में भी हमारा कोई हक़ नहीं है। जंगली पशुओं की तरह हम खुद ही जान लिये मारे-मारे फिरते हैं। संसारी

का दुःख मोचन कर सकें इसकी कोई सामर्थ्य नहीं है। किन्तु तलवर-कर शिकायत करनेवाला जीव नहीं है। क्रांतिकारी की यही दो परम शिक्षा है। मैं अनर्थक कष्टभोग या रक्तपात में विश्वास नहीं करता, किन्तु यह भी नहीं मानता कि दूर से आकर जिन्होंने हमारी जन्मभूमि पर अधिकार जमा लिया, भूख का अन्न, तृष्णा की रोटी चुरा ली, उन्हीं को हत्या करने का मुझे अधिकार है और मुझे कुछ भी नहीं रहा। यह धर्मबुद्धि ख़ूब रही! यूरोप की ईसाई सभ्यता से बढ़कर, कहते हैं कोई सभ्यता नहीं है, किन्तु इससे बढ़कर झूठ भी कुछ नहीं है। बक्सर विद्रोह में यही सुसभ्य यूरोपीय सेना ने जो अत्याचार किया था उसके सामने चंगेज़ खाँ फीका पड़ जाता है। सूर्य के निकट दिपक की तरह वह तुच्छ है। उद्देश्य-सिद्धि के लिये उनके लिये तो सब जायज़ है, नीति की बाधा केवल हमारे ही लिये है, क्यों? बात बढ़ गई, किन्तु बीच में सुमित्रा ने टोक दिया। ऐयर ने कहा, सभा का कार्यारंभ होना चाहिये! डाक्टर ने सुमित्रा से पूछा—तो तुमने पथ के दावेदारों का संस्पर्श छोड़ दिया? सुमित्रा बोली—हाँ, मैं जावा लौट जाऊँगी। इतने में एक तार डाक्टर के सामने पेश हुआ, जिसमें खबर थी कि कई जगह के दल पुलिस के द्वारा तोड़ दिये गये हैं। डाक्टर का सन्देह ब्रजेन्द्र पर था।

इसके कई एक दिन बाद की बात है, अपूर्व ने तय किया था कि अब गाँव में रहकर गाँववालों की सेवा करेगा। डाक्टर ने इस पर कोई उत्साह नहीं दिखलाया। उन्होंने कहा—किसान की भलाई करना चाहते हो करो, किन्तु यह न समझो इस प्रकार मेरी सहायता कर रहे हो। इस पर भारती बोली—गाँव के प्रति तुम्हारी सहानुभूति कुछ कम है, तुम्हारी दोनों आँखें केवल शहर के कुली-मज़दूरों पर है। तुम पथ के दावेदार यहीं इन्हीं के बीच खोलना चाहते थे। डाक्टर ने कहा—जो भी हो यही मेरा रूप है। डाक्टर के सामने अब दो काम थे, एक जामैका क्लब का जो अंश सिंगापुर में है उसे बचाना और ब्रजेन्द्र

को खोज निकलना। डाक्टर सिंगापुर के लिये रवाना हो गये। सुमित्रा बोल पड़ी—तुम्हें तो डाक्टर, वहाँ सभी पहचानते हैं। वहाँ न जाओ। भारती तो रो पड़ी, बोली—तुम तो हमें डुबाना चाहते हो। सीढ़ी से नीचे उतरते-उतरते भारती बोली—जो अंतरंग मित्र थे वे सब छूट गये, अब तुम एकदम अकेले हो। डाक्टर ने कहा—बिलकुल वही, किन्तु अकेले ही शुरू किया था भारती! बाहर जोरों की वर्षा हो रही थी, फिर भी डाक्टर निकल पड़े। अपूर्व ने कहा—एक दिन मुझे प्राणदान मिला था, यह मैं हमेशा याद रक्खूँगा—अँधेरे से जवाब आया—तुच्छ पाना ही आपको याद रहा, जिसने दिया उसे आपने याद न रक्खा। अपूर्व बाबू ने कहा—इस जीवन में कभी भुलूँगा नहीं, यह ऋण मृत्यु तक मैं भूल नहीं सकता। दूर अँधेरे से प्रत्युत्तर आया—यही हो, प्रार्थना करता हूँ। वास्तविक दाता को तुम एक दिन पहचान सको अपूर्व बाबू, उसी दिन सव्यसाची के ऋण से मुक्त होगे...बात ख़तम न हो पाई। अस्फुट स्वर वायु में विलीन हो गया। सब ने हाथ उठाकर इस विलीयमान पथ के दावेदार को नमस्कार किया। भारती उसी प्रकार पाषाण मूर्ति की तरह अंधकार में ताकती हुई खड़ी रही। किसी की बात उसे सुनाई नहीं पड़ी, वह यह भी नहीं जान सकी कि उसी की तरह एक नारी की दोनों आँखें आँसू से पूर्ण हो रही थीं।

संक्षिप्त समालोचना

संक्षेप में 'पथेर दावी' की कहानी यह है। ४०० से ऊपर पृष्ठ जिस पुस्तक में है उसका इतने थोड़े से पृष्ठों में हमने संकलन किया, स्पष्ट है कि उसके बहुत से अच्छे अंश यहाँ नहीं आ सके। फिर भी कहानी के सम्बन्ध में पाठक को एक अच्छा अन्दाज़ हो गया। डाक्टर या सव्यसाची इस पुस्तक का नायक है। वह लौह स्नायु का व्यक्ति है। न तो वह कभी थकता है, न घबड़ाता है, न पीछे हटता है, इसके लिये उसे ज़रा भी तरस नहीं आता। साथ ही वह भारती के लिये अपूर्व जैसे

व्यक्ति को जिसने दल की सारी ख़बर पुलिस को दे दी उसे बचा लेता है, और किसी भी प्रकार उसे क्रान्तिकारी प्रतिहिंसा का शिकार नहीं होने देता। यह स्पष्ट है कि सुमित्रा डाक्टर को प्यार करती है, केवल एक शिष्या की तरह नहीं, प्रेमिका की तरह, किन्तु डाक्टर उसके प्रेम का प्रतिपादन नहीं देता। इसका अर्थ यह नहीं कि डाक्टर प्यार ही नहीं करता, बल्कि स्पष्ट है कि वह अपने को संयत मात्र करता है। सुमित्रा अत्यन्त रूपवती स्त्री है, साथ ही उसकी बुद्धि भी बड़ी प्रखर है, इस कारण उसके प्यार का प्रतिरोध करना डाक्टर के लिये बड़ी शक्ति का परिचायक है। सुमित्रा जब तक पथेर दावी का काम करती है, बड़े ज़ोरों से करती है, उसको पथेर दावी का सभानेतृत्व फबता भी है, किन्तु जिस प्रकार वह एकाएक अपने उठाये हुए इस काम को परित्याग कर जावा चल देती है या जावा जाने का फैसला करती है, उससे ज्ञात होता है वह केवल डाक्टर के प्रेम से दल में आई थी, या अधिक से अधिक उसके साथ रोमांचिकता का लोभ भी था। शेषोक्त बात के सम्बन्ध में यह याद रहे कि सुमित्रा पहले चोरी से अफीम गाँजा बेचने वालों के दल में थी। अपूर्व एक सुशिक्षित किन्तु दुर्बल चित्त व्यक्ति है, उच्च शिक्षा पाने पर भी धार्मिक कुसंस्कारों से उसका छुटकारा नहीं होता। यह हमारी शिक्षा की पोल है। अपूर्व बंगाल का ही क्यों आम निम्नमध्यम वर्ग का हुबहू चित्र है । । ज़रा सी बात में वह सब साथियों को पुलिस के हवाले कर देता है। फिर जब डाक्टर की दया से उसका प्राण बचता है, तो वह एक तरह से वैराग्य लेकर गाँव के काम के बहाने अपने निम्नमध्यम वर्गीय आत्मश्लाघा को तृप्त कर बैठ जाता है। भारती एक अच्छी लड़की है, वह विश्वासघात नहीं करती, किन्तु अपनी जगह पर अपूर्व की तरह अपने वर्ग की प्रतिनिधि है। उसकी उच्छ्वासमयी भावुकता जिसका आधार अक्सर हवा में रहता है, उसे किसी क्रान्तिकारी दल के अयोग्य बनाती है। अपूर्व से उसका दर्जा केवल इतना ही ऊंचा है कि वह विश्वासघात नहीं करती।

बस। पथेर दावी में ये ही चार पात्र हैं, इन्हीं के चरित्रों को परिस्फुट करने के लिये अन्य पात्र-पात्रियों की अवतारणा होती है।

पाठक को यह पता होगा कि पथेर दावी पुस्तक बहुत दिनों तक ज़ब्त थी। इससे यह स्पष्ट है कि इस पुस्तक को सरकार ने राजनैतिक महत्त्व दिया। जनता ने भी इसकी हज़ारों कापियाँ इस पुस्तक को राजनैतिक समझकर ही ख़रीदा। सन्देह नहीं कि शरत् बाबू की सब पुस्तकों में यह अधिक राजनैतिक है। डाक्टर या सव्यसाची का चरित्र ठीक वैसा ही है जैसा साधारण लोगों के मन में क्रान्तिकारियों का चित्र है। यही कारण है कि इस पुस्तक की जनप्रियता इतनी अधिक हुई। इस पुस्तक में शरत् बाबू ने मानो जनमन के उसी चित्र को लाकर रख दिया। मैंने गिनाने के लिए इस पुस्तक के चार पात्र गिना तो दिये, किन्तु यदि किसी उपन्यास को एकपात्र का उपन्यास कहा जा सकता है तो यही है। डाक्टर या सव्यसाची ही यह पात्र है। जिन लोगों ने शरत् बाबू के अन्य उपन्यासों को पढ़ा है वे जानते हैं कि सव्यसाची का चरित्र शरत् बाबू के पाठकों के लिए अपरिचित नहीं है। चरित्रहीन के सतीश तथा श्रीकान्त के श्रीकान्त से इसकी विशेष समता है, सच बात तो यह है कि राजनैतिक रंग के अलावा कोई आधारगत प्रभेद नहीं है। हाँ, साथ में यह भी है कि सव्यसाची नारी के प्रेम के प्रति उदासीन है। रोमांचकता में सव्यसाची श्रीकान्त से कुछ पीछे ही होंगे। श्रीकान्त तो निश्चित मृत्यु के मुँह में बारबार जाते हैं, और उससे निकलते हैं। अवश्य सव्यसाची जिन विपत्तियों में बार-बार पड़ते हैं उनका दायरा विस्तृततर तथा राजनैतिक है, सुमित्रा को बचानेवाली घटना को राजनैतिक कहाँ तक माना जाय इसके सम्बन्ध में तर्क उठ सकता है। प्रेम के प्रति उदासीनता, याने प्रेम होते हुए भी उदासीनता शरत् बाबू के पाठकों के लिए कोई नई चीज़ नहीं है, चरित्रहीन की सावित्री में हम यह चीज़ पाते हैं। यदि इसी कारण केवल श्रद्धा करनी हो तो सावित्री सव्यसाची के मुकाबले में कम श्रद्धेया नहीं समझी जायगी। किन्तु हाँ, ऐसी तुलना

में अक्सर ग़लती हो जाती है। इस क्षेत्र में एक प्रभेद यह है कि सावित्री के लिए सतीश सामाजिक रूप से अप्राप्य था, और कम से कम सावित्री उस बन्धन को लाँघने के लिये तैयार न थी, किन्तु सुमित्रा और सव्यसाची के दर्मियान ऐसी कोई बाधा थी तो साव्यसाची के मन में, याने उसकी इस धारणा में कि नारी का प्रेम एक क्रान्तिकारी के लिये वर्जित है। क्रान्तिकारित्व की यह धारणा भी एक आम धारणा थी, याने उस समय जब यह पुस्तक लिखी गई थी।

अब इस पुस्तक के सम्बन्ध में एक प्रश्न यह है कि क्या इसमें भारत के, विशेषकर बङ्गाल के, आतंकवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन का सही चित्र आ जाता है? सव्यसाची का चरित्र एक क्रान्तिकारी का सही चरित्र है, किन्तु पुस्तक इतनी बड़ी होते हुए भी क्रान्तिकारी आन्दोलन का कोई सही या समग्र चित्र का खाका हमारे सामने नहीं आता। बङ्गाल का आतंकवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन अनिवार्य रूप के एक नौजवानों का आन्दोलन है किन्तु इसमें के मुख्य पात्र या पात्री कोई भी नौजवान नहीं है। भारती एक नवयुवती ज़रूर है, किन्तु पता नहीं वह पथेर दावी समिति के साथ कैसे संयुक्त हो गई है। वह एक विद्यालय चलाती है, किन्तु इतने ही से वह केन्द्र की अंतरङ्ग कमेटी में कैसे बैठती है यह समझ में नहीं आता। ऐय्यर बैरिस्टर है, तलवरकर मुन्शी है, सुमित्रा की जीविका क्या है न तो यही मालूम और न यही पता चलता है कि दल में उसने क्या काम किया! हाँ, वह जब भी दल की अंतरंग कमेटी की सभा होती है, उसकी सभानेत्री के रूप में नज़र आती है। इस प्रकार का चित्र नौजवान आन्दोलन का कतई नहीं है। अपूर्व को हम इस सम्बन्ध में गिनती में ही नहीं लेते। अब पथेर दावी के काम देखिये तो भी कुछ समझ में नहीं आता। पथेर दावीवाले किसी राजकर्मचारी की हत्या नहीं करते, न उसका षड्यंत्र करते हैं, कोई डकैती नहीं करते, न मालूम धन उनको कहाँ से मिलता है, कोई क्रान्तिकारी पर्चा नहीं बँटवाते। इस प्रकार वे उन कामों में से एक भी

नहीं करते जो क्रान्तिकारी आन्दोलन की विशेषतायें थीं। समिति के नेतृत्व में मज़दूरों की एक सभा होती है, किन्तु वह लाठी-चार्ज कर भंग कर दी जाती है, फिर आगे क्या होता है इसका कुछ पता नहीं लगता। फिर मजदूरों की सभा से दल के आम कार्यक्रम से क्या सम्बन्ध है यह पता नहीं लगता। शरत् बाबू इस चीज़ को नहीं समझे इसलिये हम उन्हें दोष नहीं दे सकते क्योंकि उस ज़माने के क्रान्तिकारीगण ही इस चीज़ को नहीं समझते थे।

भारती एक ईसाइन होते हुए भी सम्पूर्णरूप से मध्यम श्रेणी की बङ्गाली लड़की है। वह बड़ी भावुक है, किन्तु उसकी भावुकता का अक्सर व्यक्तिगत के आलावा कोई गम्भीर अर्थ नहीं होता। अपूर्व के मुखबिर हो जाने के बावजूद वह उसके प्रति मन ही मन जितनी आसक्त रहती है वह एक ऐसी बात है जो समझ में नहीं आती, और यह तब जब कि वह अनुभव कर सकती है कि वह कितने तुच्छ व्यक्ति के साथ प्रेम में पड़ी है और वह कितना स्वार्थपर है कि उसे केवल नौकरी की ही फिक्र है न किसी और बात की, जैसे उसकी मुखबिरी से कितने लोग फँस रहे हैं इसकी उसे कुछ परवाह नहीं है। ऐसी हालत में फिर भी उसके लिये भारती का आँसू बहाते रहना समझ में नहीं आता, विशेषकर जब अपूर्व बराबर उसे अस्पृश्या समझता है, और उसका छूआ हुआ भूलकर भी नहीं खाता है। ऐसी हालत में प्रेम का होना एक मोह के रूप में ही है। इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है! इसके लिए भारती के प्रति श्रद्धा घटती ही है, बढ़ती नहीं। फिर भी देखा जाय तो सारी पुस्तक में अपूर्व के प्रति उसके प्रेम को ही उसके विचारों का केन्द्रस्थल करके हम पाते हैं। इससे न तो क्रान्तिकारिणी के रूप में ही उसके प्रति श्रद्धा बढ़ती है न नारी के रूप में। एक दृष्टि से देखा जाय तो अपूर्व के प्रति भारती का प्रेम न केवल भारती के जीवन की, बल्कि इस पुस्तक की ही केन्द्रीय घटना है। यदि यह प्रेम न होता तो इस पुस्तक की कई बड़ी-बड़ी घटनायें नहीं होतीं। उस

हालत में न तो अपूर्व की जान ही बचती, न ब्रजेन्द्र ही बहककर मुखबिर हो जाता, न शायद सुमित्रा ही जावा में जाती, न दल के कई केन्द्र पुलिस के शिकार होते, न डाक्टर अन्तिम दृश्य में अजानित पथ की ओर रवाना होते। इस प्रकार यह प्रेम अपनी जगह पर बहुत ही बड़ा है। पुस्तक के अन्त तक इस सम्बन्ध में एक बात का पता नहीं लगता कि इस प्रेम का हश्र क्या होता है; समाज का, छुआछूत का व्यवधान तो इनके बीच से नहीं हटता। ऐसी अवस्था में अपनी जगह पर यह भी एक दुःखांत घटना ही है। इस प्रेम से पथेर दावी की हानि ही होती है।

शरत् बाबू की पुस्तकों में पथेर दावी अपनी विशेषता रखती है क्योंकि यह राजनैतिक रङ्ग में रङ्गी हुई है, और भारतीय आतंकवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन का एक सही या ग़लत किन्तु सजीव चित्र है, कला की दृष्टि से शरत् बाबू की पुस्तकों में इसका स्थान कोई उच्च नहीं है। मनोवेगों के जिस घातप्रतिघात के कारण उनके उपन्यास उच्चकोटि के ख्यात हो चुके हैं, इस पुस्तक में उसका सर्वथा नहीं, तो तुलनात्मक रूप से अभाव है। 'देवदास' का देवदास एक व्यक्तिमात्र है, किन्तु उसके मनोवेगों के साथ जिस तादात्म्यता का अनुभव प्रत्येक व्यक्ति अनुभव करता है है, वह अपूर्व के साथ या भारती के साथ नहीं अनुभव कर सकता है। इस कारण इस उपन्यास का वह विश्वजनीन आवेदन नहीं है जो उनकी दूसरी पुस्तकों को प्राप्त है। किसी न किसी समय प्रत्येक मनुष्य अपने को देवदास की अवस्था में पाता है, किन्तु अपूर्व या सव्यसाची के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती। सव्यसाची की कोई प्रशंसा करेगा तो दूर ही से करेगा, देवदास की तरह आत्मवत् समझकर नहीं करेगा। इस कारण वह प्रशंसा कितनी भी उच्छ्वसित हो उतनी गम्भीर नहीं हो सकती।

इस उपन्यास की पात्रियों की ओर देखा जाय तो वे भी शरत् बाबू की दूसरी पुस्तकों के मुक़ाबिले में कम दिलचस्प हैं। सुमित्रा क

तुलना चरित्रहीन की सावित्री से की जा सकती है, किन्तु जैसा कि मैंने पहले ही कह किया दोनों में प्रभेद बहुत है। सावित्री से सुमित्रा को हर हालत में अधिक उज्ज्वल होना चाहिये, किन्तु क्या वह ऐसी है? सुमित्रा हर समय अपने प्रेम को प्रकट करने के लिये लालायित रहती है, बाधा उसकी तरफ़ से कुछ नहीं है, किन्तु सावित्री का संयम कितना सौम्य है। यह हम मानते हैं कि सावित्री का संयम एक कुसंस्कारपूर्ण धार्मिक विचार की नींव पर स्थित है, किन्तु इससे क्या, उससे उसके चरित्र की सौम्यता खुल जाती है? यदि इस संयम में पथेर दावी का कोई सावित्री का मुक़ाबला कर सकता है तो वह डाक्टर है। डाक्टर का संयम बल्कि उस से सौम्यतर है, किन्तु उसकी भी नींव बंगाल के आतंकवादी क्रातिकारियों में प्रचलित इस आम कुसंस्कार पर है कि क्रांतिकारी को नारी के प्रेम से परहेज़ करना चाहिये। फिर भी इस कुसंस्कार का आधार केवल परम्परा न होने के कारण इसको हम एक दीवानगी के रूप में देख सकते हैं। सुमित्रा को जिस आसन पर उपन्यास में बार-बार बैठाया गया है, याने "पथेर दावी" की समानेत्री के आसन पर। वहाँ से उसे ज़्यादा उज्ज्वल होकर हमारे सामने आने का मौक़ा है, किन्तु फिर भी बौद्धिक रूप से वह "चरित्रहीन" की किरणमयी से कहीं पीछे है। उसके क्रांति-कारिणित्व पर श्रद्धा होती है, किन्तु जब यह मालूम हो जाता है कि वह किसी भी कारण से हो, बाद को दल छोड़कर जावा चली जायगी तो इस क्रांतिकारी जीवन की भी कलई खुल जाती है। तब यह स्पष्ट हो जाता है कि यह तो केवल डाक्टर के प्रति आत्मनिवेदन करने का एक तरीक़ा मात्र था। यदि डाक्टर क्रांतिकारी होने के बजाय चोरी से अफ़ीम आमदनी और रफ़्नी करनेवाले होते तो सुमित्रा भी उसी में हो जाती। यह तो एक आकस्मिक बात थी कि डाक्टर क्रांतिकारी निकला। कहीं भी यह ज़ाहिर नहीं होता कि सुमित्रा देशभक्तिवश या किसी और उच्चतर उद्देश्य से "पथेर दावी" में आई है। उसे रोमैंस से प्रेम भी है और विपत्तियों को कनपटी के पास से साँय-साँय कर निकलती हुई

देखकर उसे खुशी ही होती है, किन्तु इससे मेरी कही हुई बात कटती नहीं पुष्ट ही होती है।

इस पुस्तक की दूसरी पात्री भारती है, किन्तु जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ शरत् बाबू की पात्रियों में उसका कोई भी उच्च स्थान नहीं हो सकता है। वह तो साँड़ के गोबर की तरह न देवाय न धर्माय है। उसकी भावुकता बहुत ही निम्नकोटि की है। वह तो मानो हवा में उड़ती है, किन्तु यह कोई विशेषता नहीं है। नारीमात्र का यह एक अविभाज्य गुण है।

फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि कला की दृष्टि से न सही, भारतवर्ष के राजनैतिक जीवन के एक महत्वपूर्ण अध्याय को सजीव रूप में पेश करने की एक ज़बर्दस्त चेष्टा के रूप में इस पुस्तक को एक अपनी ही विशेषता प्राप्त है। इस दृष्टि से यह बराबर पढ़ी जायगी, किन्तु अन्त में मैं फिर एक बार कह दूँ कि चरित्र-सृष्टि तथा कला की दृष्टि से यह पुस्तक शरत् बाबू की सर्वोत्तम कृतियों में नहीं है। हाँ, एक बात तो मैं कहना ही भूल गया कि चरित्र-सृष्टि तथा कला की दृष्टि से इसी पुस्तक के तिवारी, अपूर्व की माँ, हीरासिंह आदि गौण पात्र बल्कि अधिक परिस्फुट हुए हैं। हाँ, जैसा मैं कह चुका हूँ सव्यसाची का चरित्र बड़े ही उज्ज्वल तरीक़े से खींचा गया है, और वह शरत् बाबू के चरित्रों में एक मौलिक चरित्र है।

शेष प्रश्न

शरत्चंद्र के उपन्यासों में 'शेष प्रश्न' अपने ढंग की निराली कृति है। सभी मतों के अनुसार शरत्चंद्र इस उपन्यास में अपने अन्य किसी उपन्यास से अधिक प्रचारक रूप में दृष्टिगोचर होते हैं, रहा यह कि कलाकार शरत्चंद्र इससे क्षुण्ण तथा कुंठित हुए हैं या नहीं यह दूसरी बात है। कुछ समालोचकों का कथन है कि प्रचारक शरत्चंद्र के दबाव के मारे इस में कलाकार शरत्चंद्र का कहीं पता ही नहीं

मिलता है, कुछ कहते हैं, नहीं, दोनों का कलामय समन्वय इस उपन्यास में है।

शेष प्रश्न एक नायिका-प्रधान उपन्यास है। सच बात तो यह है कि इस उपन्यास की नायिका कमल ही इस उपन्यास की एकमात्र पात्र या पात्री है, अन्य पात्र-पात्रियाँ इस उपन्यास में हैं, किन्तु वे न केवल गौण हैं, बल्कि ऐसा ज्ञात होता है मानों उसी के चरित्र को स्पष्टतर करने के लिये उनकी सृष्टि हुई है, मानों इसी स्पष्टीकरण रूपी कर्तव्य को निभाने में उनकी चरम सार्थकता है। हमने शरत् बाबू के अन्य उपन्यासों की समालोचना में जिस पद्धति का अवलम्बन किया था कि पहले पाठक के सन्मुख उपन्यास के कथानक को संक्षिप्त रूप से पेश कर दिया और फिर उसकी समालोचना की। शेष प्रश्न की समालोचना में हम उस प्रथा का अनुसरण नहीं करेंगे। शेष प्रश्न का कथानक अपेक्षाकृत इतना कम है कि हमें इस उपन्यास के विषय में इस पद्धति का प्रयोग समीचीन ज्ञात नहीं होता। इस उपन्यास में घटना कम से कम हैं, पात्र-पात्रियों के कथोपकथन के ही ज़रिये से यह उपन्यास आगे की ओर बढ़ता गया है फिर भी कथानक बहुत कम है ऐसी बात नहीं। डाक्टर सुबोध सेन का कहना है कि "कमल ने बहुत बातचीत की है, और राजेन्द्र के अतिरिक्त वह और सब पर जादू की लकड़ी फेर देती है। तर्कबहुल प्रचारमूलक उपन्यास का मानदंड जासूसी उपन्यास और भूतप्रेत की कहानियों के मानदंड से भिन्न है। प्रचारमूलक साहित्य के कथानक को युक्ति-तर्क से विच्छिन्न कर नहीं देखा जा सकता और न उसमें आये हुए युक्ति-तर्कों को ही इस घटना के विकास से पृथक करने पर वे प्राणहीन हो जाते हैं। प्रचारधर्मी जिस भी श्रेष्ठ उपन्यास या नाटक की आलोचना करने पर यह ज्ञात होगा कि इस श्रेणी के साहित्य में तर्क और कथानक का सम्बन्ध अच्छेद्य है। सच बात तो यह है कि इस तरह के साहित्य का उद्देश्य है कुछ घटनाओं के घातप्रतिघात के बीच से होकर किसी विशिष्ट विचारधारा

की परिणति को चित्रित करना। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर 'शेष प्रश्न' उपन्यास में कथानक की कमी या अप्राचुर्य नहीं है। आम-तौर पर इस प्रकार के उपन्यास-नाटकों में जितना कथानक होता है, शेष प्रश्न में उनसे कम कथानक नहीं है। बल्कि इसमें जैसी एक सुशृङ्खल, सुविन्यस्त कथानक इसमें है, वैसा कथानक बहुत कम उपन्यास-नाटकों में होता है। कथोपकथन में भी कमल की बातचीत का प्रधानता है, और इसमें सन्देह नहीं, कमल की बातचीत बहुत ही विद्वत्तापूर्ण, चुभती हुई, और प्रति पग पर नवनव उन्मेषशालिनी है। बंगाली शिक्षित मध्यवित्त वर्ग के लिये कमल की बातें केवल नवीन ही नहीं तिलमिला देनेवाली हैं। यों यो शरत् बाबू के अन्य उपन्यासों से हिन्दू सनातन समाज को चोट पहुँचती है, 'ब्राह्मण की बेटी' में यह चोट शायद सबसे भयंकर क्रूरता और अपरिहार्यता धारण करती है, किन्तु शेष प्रश्न से भारतीय सनातन समाज पर जो चोट पहुँचती है, वह बिल्कुल दूसरी ही तरह की है। शेष प्रश्न में जो चोट पहुँचती है, वह घटनाओं की या तथ्यों की चोट उतनी नहीं है, जितनी कमल की बातों की है। 'ब्राह्मण की बेटी' में कुलीन ब्राह्मण कन्या को नाई की लड़की प्रमाणित कर शरत्चंद्र ने जो मर्मभेदी चोट सनातन समाज को पहुँचायी है, उसके महत्व को हम कम करना नहीं चाहते हैं; वह चोट इतनी प्रचंड है कि उससे यह सारा हिन्दू समाज उसकी वर्ण-व्यवस्था, आचार तथा निष्ठा एकदम भूमिसात् हो जाती है, ब्राह्मण की बेटी पढ़ने के बाद मानो ऐसा ज्ञात होता है कि हिन्दू समाज का यह सारा तानाबाना एक ऐन्द्रजालिक सृष्टिमात्र है, उसकी तह में कुछ भी तो नहीं है जिसे हम एक सुरूप, सुन्दर कृति समझकर हजारों वर्षों से बैठे थे वह एक कंकाल मात्र है, और जिसको हम सुललित नूपुर-शिंजन समझकर फूले नहीं समाते थे, वह कंकाल के अन्दर से प्रवाहित लू का हाहाकारमात्र है, किन्तु 'शेष प्रश्न' की चोट दूसरी ही तरह की है। ब्राह्मण की बेटी में जो चोट है

उसको समझने के लिये हमें अपने चारों ओर की नित्यप्रति की सैकड़ों वर्षों से चली आती हुई घटनाओं की ओर देखने भर की आवश्यकता पड़ती है, फिर शेष प्रश्न की चोट मुख्यतः विचारों तथा बातों की चोट है, इसलिये उसको समझने के लिये हमें सोचने की, अपने अन्तर्लोक में पैठकर अपने को टटोलने की जरूरत पड़ती है। यही शेष प्रश्न की विशेषता है, इसीमें उसका तुलनात्मक उत्कर्ष तथा अपकर्ष, सफलता तथा विफलता है। उत्कर्ष, अपकर्ष, सफलता, विफलता शब्दों को हमने एक ही साथ किसी आलंकारिक असर पैदा करने के लिये इस्तेमाल नहीं किया है। 'ब्राह्मण की बेटी' को ही लिया जाय, कोई सोचने का कष्ट गँवारा करे या न करे, केवल आँख खोलकर देखे तो वह ब्राह्मण की बेटी का अर्थ समझ जायगा। किन्तु शेष प्रश्न की विषयवस्तु को हृदयंगम करने के लिये सोचने की ज़रूरत है, या और स्पष्टता के साथ कहें तो देखने के बनिस्बत सोचने की कहीं अधिक ज़रूरत है। प्रत्येक व्यक्ति सोच नहीं सकता है, इसीमें 'शेष प्रश्न' की विफलता है, सफलता यह है कि इसकी समालोचना ब्राह्मण की बेटी से कहीं दूरगत, गहराई तक पैठी हुई और तीक्ष्ण है। 'ब्राह्मण की बेटी' केवल ब्राह्मण-प्रधान सनातन धर्म की जड़ हिलाकर उसकी नैष्ठिक वर्णव्यवस्था को धराशायी कर देता है, किन्तु शेष-प्रश्न ने पूंजीवादी पद्धति की सबसे काम्य वस्तु प्रेम पर ही हमला बोल दिया, याने नर-नारी का वह प्रेम जिसके लिये यह कहा जाता है कि वह चिरस्थायी है।

प्रेम पर प्रहार शरत् बाबू के लिये कोई नई बात नहीं है, चरित्रहीन में किरणमयी और दिवाकर की स्मरणीय बातचीत में यत्र-तत्र प्रेम पर बौछारें हैं, किन्तु शेष प्रश्न में आकर यह आक्रमण प्रत्यक्ष और स्पष्ट हो जाता है। यों तो शरत् बाबू प्रत्येक पुस्तक की पृष्ठभूमि में नारी का विद्रोह है, कहीं यह विद्रोह की धारा बहुत ही सूक्ष्म रूप में फल्गु की तरह अन्तःसलिला होकर बहती है, जैसे देवदास और बड़ी दीदी में

लीजिये, कहीं यह सरस्वती की तरह कुछ दूर तक बहकर फिर लुप्त हो जाती है, जैसे गृहदाह की अचला में देखिये, किन्तु शेष प्रश्न में आकर यह विद्रोहधारा बंगाल की पद्मा की तरह तुमुल गर्जन करती हुई, अपने गर्जन के आगे उचित-अनुचित किसी की न सुनती हुई, अपने दक्षिण और वाम दोनों तटों को ढहाती, किलकारियाँ करती हुई, सब बुतों को तोड़ती हुई आत्मचेतना-सम्पन्न होकर बहती है। 'शेष प्रश्न' में नारी का यह विद्रोह रूढ़ि-विशेष या व्यवस्था-विशेष के विरुद्ध नहीं है, बल्कि इसकी लपटें सर्वबन्धनमुक्त होकर दशों दिशा में दौड़ पड़ती हैं। किरणमयी अपने विद्रोह के बावजूद, प्रेम के विरुद्ध अपने कटाक्षों के बावजूद अन्त में जिस समय चरित्रहीन उपन्यास का पर्दा गिरता है हम उसे उपेन्द्र के प्रेम में तल्लीना पाते हैं। उपेन्द्र तो मर जाता है, किन्तु किरणमयी को हम एकलव्य की तरह उसकी प्रेमतल्लीना पाते हैं। विवाह से उसका पति हारान है, किरणमयी उसके प्रेम से हट जाती है। सच बात तो यह है कि वह कभी उससे प्रेम करती ही नहीं थी, वह उसकी शिष्या ही रही, कभी प्रिय नहीं हो पाई। फिर किरणमयी ने डाक्टर से गुप्तप्रेम किया, किन्तु वह स्वयं ही उसको प्रेम नहीं समझती थी, बाद को उसे आत्मग्लानि हुई इसके बाद दिवाकर को लेकर वह बर्मा भाग गई किन्तु अन्त में वह उपेन्द्र के प्रेम में फँस गई। इस प्रकार विद्रोह की जो धारा सर्वबन्धनविमुक्ति के अथाह सागर की ओर दौड़ पड़ी थी, वह घूम-घामकर फिर अपने उद्गमस्थल की ओर लौट आई। फिर शरत्-बाबू ने इस उपन्यास में किरणमयी के लिये पापिष्ठा शब्द का व्यवहार कर समाज को यह इतमीनान दिलाया कि इस विद्रोह से उनकी सहानुभूति नहीं है। शेष-प्रश्न की कमल के सम्बन्ध में यह बात नहीं है, उसका विद्रोह न केवल आत्मचेतना-सम्पन्न है, बल्कि वह अन्त तक उस पर डटी रहती है। फिर भी एक बात साफ कर देनी चाहिये, कमल के चरित्र में नारी का विद्रोह सर्वाङ्ग सुन्दर परिपक्वता तक नहीं पहुँच सका। इसका एकमात्र कारण यह है कि शरत् बाबू अन्त तक मध्यवित्त

समाज के विद्रोही रह गये, वे नर-नारी के सामाजिक सम्बन्ध के पीछे समाज की उत्पादन पद्धति में जो उनका स्थान छिपा होता है इस बात को कभी न समझ पाये। शरत् बाबू की कमल इसलिए बहुत कुछ बीच रास्ते में त्रिशंकु की तरह लटककर रह गई। शरत् बाबू ने कमल की जो पृष्ठभूमि बनाई है, उससे कमल के प्रति रूढ़िवादी पाठक के मन में सहानुभूति पैदा न होकर उसको यह कहने का अवसर मिलता है कि कमल जैसी स्त्री के लिये ऐसा कहना बहुत स्वाभाविक है, कमल के पूर्वेतिहास से कमल की बातों का वज़न साधारण पाठकों के निकट घटेगा ही, बढ़ेगा नहीं। इस बात को किसी शरत्-समालोचक ने समझा नहीं है, इसलिये इसके और भी स्पष्टीकरण की ज़रूरत है।

कमल का परिचय संक्षेप में यों है। कमल की माँ रूपवती थी। कमल के शब्दों में "उनमें रूप था, पर रुचि नहीं थी। ब्याह के बाद कोई बदनामी हो जाने के कारण उनके पति उन्हें लेकर आसाम के चाय-बागान में भाग गये, पर वहाँ वे जिये नहीं—कुछ ही महीनों में बुख़ार ही में मर गये। इसके तीन साल बाद मेरा जन्म चाय-बागान के बड़े साहब के घर हुआ।" यह तो कमल के जन्म की बात हुई। यह हम मानते हैं कि इस जन्म में कमल का न तो दोष है और न कोई ज़िम्मेदारी है (यदि यह ख़राब भी हो तो), कर्ण की तरह वह कह सकती है 'दैवायत्तं कुले जन्म मयायत्तं तु पौरुषम्।' फिर भी शरत् बाबू ने जिस बंगाली मध्यवित्त समाज के लिये यह उपन्यास लिखा है, उस पर इस जन्म का क्या प्रभाव होगा यह अनुमेय है। फिर कमल का पूर्वेतिहास यहीं ख़तम नहीं होता। कमल जिस समय उपन्यास में पदार्पण करती है, उस समय तक उसका एक के बाद एक दो पुरुषों से विवाह हो चुका है। पहला पति एक आसामी ईसाई था, मालूम होता है उसके पिता बड़े साहब ने उसकी यह शादी कराई थी। प्रथम पति मर गये। "उनके मरने के बाद ही मेरे पिता भी अकस्मात् घोड़े से गिरकर मर गये। उस समय शिवनाथ के एक चाचा चायबगान के हेड क्लर्क थे।

उनकी स्त्री नहीं थी, माँ को उन्होंने अपने यहाँ आश्रय दिया।" जरा इस अन्तिम वाक्य को देखिये, स्त्री नहीं थी, माँ को आश्रय दिया था। कमल अपनी माँ के साथ उनके घर आई थी।

यहीं पर शिवनाथ के साथ कमल का परिचय हुआ। कमल रूपवती थी, शिवनाथ के साथ उनका कैसे विवाह हुआ, हुआ या नहीं, इस पर उन्हीं की बात सुनिये, "बिलकुल कोई विवाह हुआ ही नहीं, ऐसी बात नहीं। विवाह जैसी कोई बात हुई ज़रूर थी। जो लोग देखने आये थे वे लगे हँसने। बोले—यह ब्याह ब्याह ही नहीं—धोखा है। इनसे (शिवनाथ से) पूछने पर इन्होंने कहा, 'शैवमत से विवाह हुआ है।' मैंने कहा, 'यही ठीक है, शिव के साथ अगर शैवमत से विवाह हुआ तो इसमें चिन्ता की कौन-सी बात है ?"

अब शिवनाथ कौन थे यह सुन लीजिये। शिवनाथ की पहली स्त्री अभी मौजूद है। वह रोगिणी है। शिवनाथ कहता है इसीलिये उसने पत्नी को त्याग दिया। एक महाशय उसकी तरफ से वकालत करते हुए शिवनाथ से कहते हैं, 'बीमार रहना तो कोई अपराध नहीं शिवनाथ बाबू, बिना किसी अपराध के···।'

शिवनाथ—बिना किसी अपराध के भला मैं ही क्यों दुःख सहता रहूँ ? ऐसा विश्वास मेरा नहीं है कि एक का दुःख और किसी के सिर पर लाद देने से न्याय होता है।

इस पर जिन्होंने यह प्रश्न पूछा था, वे चुप हो गये, किन्तु एक समाज के स्तंभ महाशय प्रश्न कर बैठे, 'यह ब्याह हुआ कहाँ था ?'

—गाँव ही में।

—सौत के होते हुए लड़की दे दी। शायद इस लड़की का कोई है नहीं।

—नहीं, हमारे यहाँ की विधवा महरी की विधवा लड़की है।

—घर की नौकरनी की लड़की है ! बहुत खूब ? जात क्या है ?

—ठीक नहीं मालूम । जुलाहिन-उलाहिन होगी ।

अक्षय बहुत देर से बोला नहीं था, अब पूछ उठा—उसको अक्षर-बोध भी न हो शायद ?

शिवनाथ ने कहा—अक्षर-बोध के लोभ से तो ब्याह नहीं किया था, किया है रूप के लिये । सो इस पदार्थ का शायद उसमें अभाव नहीं है ।

हरेन्द्र ने कहा—तो यह शायद सिविल ब्याह ही हुआ था ?

शिवनाथ ने गर्दन हिलाकर जवाब दिया—शैवमत से ब्याह हुआ था ।

अविनाश ने कहा—यानी धोखा देने का रास्ता दसों दिशाओं से खुला रक्खा, क्यों न शिवनाथ जी ?

शिवनाथ ने हँसकर कहा—'यह तो क्रोध का उद्गार है अविनाश बाबू ! नहीं तो, पिताजी ख़ुद अपनी मौजूदगी में मेरा जो ब्याह कर गये हैं, उसमें तो धोखे की रंचमात्र गुञ्जाइश नहीं थी, मगर फिर भी तो धोखा रह ही गया था । उसे ढूँढ़ निकालने की आँखें भर चाहिये ।'

शिवनाथ के साथ कमल की शादी कैसे हुई, इस बात के तुरन्त बाद ही शरत् बाबू यह दिखलाते हैं कि कैसे शिवनाथ ने अभी हाल ही में अपने स्वर्गीय मित्र योगीन्द्र बाबू के लड़कों की नाबालिग़ी का फायदा उठाकर उनके सारे कारोबार को ही हड़प कर बैठ गया ।

...."अविनाश ने कहा—लेकिन ख़ैर जो कुछ भी हो । शिवनाथ, अब अकेले जब तुम्हीं को सारा कारोबार सम्हालना पड़ेगा, तो उसमें अपना कुछ हिस्सा रखने का क्यों नहीं दावा करते ? बतौर मासिक के कुछ बँधवा लो......

शिवनाथ ने बात को बीच ही में काट कर कहा—हिस्सा काहे का ? कारबार मेरा अकेले का है ।

अध्यापकों का दल मानों असमान से गिरा । अक्षय ने कहा—पत्थर का कारबार अचानक आपका कैसे हो गया शिवनाथ बाबू !

शिवनाथ ने गंभीर होकर जवाब दिया—मेरा तो है ही।

अक्षय ने कहा—किसी तरह नहीं, हम सभी जानते हैं, योगीन्द्र बाबू का है।

शिवनाथ ने जवाब दिया—जानते हैं तो अदालत में जाकर गवाही क्यों नहीं दे आये? कोई दस्तावेज़ था? कि सुना भर था?

अविनाश ने चौंक कर प्रश्न किया—नहीं, सुना तो कुछ भी नहीं, किन्तु मामला क्या अदालत तक पहुँच गया था?

शिवनाथ ने कहा—हाँ, योगीन्द्र के साले ने नालिश की थी, डिग्री मेरे ही पक्ष में हुई है।"

शिवनाथ का परिचय यों है, इसके अतिरिक्त वह शराबी है, शराबी होने के कारण वह आगरा कालेज की प्रोफेसरी से निकाला गया है, और जब कभी शायद वेश्यागमन करता है। हाँ, वह गवैया बहुत ऊँचे दर्जे का है, इस कारण तमाम कारणों के बावजूद वह मजलिसों में आदर के साथ बुलाया जाता है।

इस उपन्यास में शिवनाथ और कमल ये ही दो मुख्य पात्र-पात्री हैं, शरत् बाबू ने इनकी जो पृष्ठभूमि बनाई है उसको भी हम देख चुके हैं।

कमल—शेष प्रश्न की कमल को शरत् बाबू ने नारी-विद्रोह की अग्रदूती बनाया है, यह बात बहुत आश्चर्य की है। अपने 'गोरा' नामक उपन्यास में बंगाली नैष्ठिक परिवार में प्रतिपालित एक जन्मना अँग्रेज़ को रवीन्द्रनाथ ने सनातन धर्म का परिपोषक बनाया है। गोरा के जन्म की यह पृष्ठभूमि उस उपन्यास के रस के परिपाक में सहायक हुई न कि बाधक, किन्तु कमल की यह सारी पृष्ठभूमि शेष प्रश्न के वांछित रस के परिपाक की बाधक होती है। पता नहीं शरत् बाबू ने कमल को जान-बूझकर ऐसा बनाया कि नहीं,—शरत् बाबू की तरह आत्मचैतन्य-सम्पन्न कलाकार के लिये तो यही समझना चाहिये कि उन्होंने जान-बूझकर ऐसा किया—उस हालत में यही कहना पड़ेगा कि उन्होंने कमल की बातों का मूल्य घटाने के लिये ही ऐसा किया।

फिर और आगे चलिये। शिवनाथ की पुकार अक्सर आशु बाबू के घर के गाने की मजलिस में होती है। आशु बाबू एक गतयौवन विधुर हैं, स्वास्थ्य सुधारने के लिए पश्चिम में आकर आगरे में अपनी एकमात्र सन्तान कुमारी मनोरमा के साथ रहते हैं। रुपये-पैसे का उन्हें अभाव नहीं, घर में नौकर-चाकर, दरबान, शोफर हैं। अन्य धनियों की तरह वे गर्वित नहीं हैं, आगरे के बंगाली परिवारों के साथ उन्होंने जान-बूझकर कोशिश कर परिचय प्राप्त किया है। मनोरमा की शादी अजित नामक विलायत से लौटे हुए युवक के साथ एक तरह से तय ही है। सच कहिये तो अजित के विलायत जाने के पहले से ही यह शादी तय-सी है, किन्तु विलायत रहते समय अजित ने कोई पत्रादि बहुत दिनों तक नहीं भेजा तो इस पर आशु बाबू ने अन्य वर ढूँढ़ना प्रारम्भ किया तो मनोरमा ने इशारे से मना कर दिया। पिता सुशिक्षित कन्या की बात समझ गये, चुप हो रहे। अजित बाबू विलायत से लौटे, अब कुछ दिनों से वे आगरे में आकर आशु बाबू के यहाँ टिके हुए हैं। घटनाओं का रुख स्पष्ट है। शिवनाथ ने मनोरमा के साथ सम्बन्ध बढ़ाया है। उधर अजित कमल के यहाँ जाना शुरू करता है। एक दिन वह मोटर लेकर कमल के यहाँ पहुँचा तो कमल ने प्रस्ताव किया कि मोटर में सैर की जाय। वह गाड़ी के दरवाज़े से खुद ही भीतर जाकर बैठ गई और बोली—आइये, मैं बहुत दिनों से मोटर पर नहीं चढ़ी। लेकिन आज मुझे बहुत दूर घुमा लाना होगा।

अजित को कुछ सूझा नहीं कि क्या करना चाहिये। संकोच के साथ बोला—ज्यादा दूर जाने से रात बहुत हो जायगी। शिवनाथ बाबू घर लौटकर आपको न देखेंगे तो शायद कुछ बुरा मानें।

कमल ने कहा—नहीं, बुरा मानने की कोई बात नहीं।

असल में बात यह थी कि कई दिन से शिवनाथ रात को घर नहीं आ रहा था, शायद शैवमत से विवाहिता पत्नी कमल के प्रति उसका मोह दूर हो चुका था। रूप ही का उसका नशा था, वह शायद मिट

चुका था, अब उसके नशे को कायम रखने के लिये दूसरे ईंधन की ज़रूरत थी। जो कुछ भी हो, कमल और अजित मोटर में उस दिन बहुत दूर तक निकल गये, फिर वे बहुत रात बीते लौटे। शिवनाथ जो कई दिन से घर नहीं आता था इसका कारण कमल को यह मालूम था कि वह जयपुर में पत्थर ख़रीदने गया है, किन्तु अजित बाबू से ही कमल को मालूम हो गया कि जयपुर-वयपुर कहीं नहीं गया है; इसी शहर में है, और रोज़ आशु बाबू की सान्ध्य मजलिस में उपस्थित रहता है।

अजित जब घर लौटा तब रात गहरी हो गई थी, सड़क सुनसान थी, सन्नाटा छाया हुआ था, दूकानें सब बन्द हो चुकी थीं। यह देखने के लिये कि अब तक मनोरमा के कमरे में बत्ती क्यों जल रही है अजित उस तरफ़ से घूमकर आशु बाबू के पास जा रहा था। इतने में से झाड़ी में से आदमी की आवाज़ सुनाई दी। अति परिचित कंठ का स्वर था। बात हो रही थी किसी एक गाने के सुर के विषय में। कोई बात नहीं थी—किन्तु फिर भी उसके लिये पेड़ों के झुरमुट में इतनी रात गये बैठना जैसा कैसा जँचा। क्षणभर के लिये अजित के दोनों पैर निर्जीव-से हो गये। मनोरमा और शिवनाथ में बातें हो रही थीं। अजित जैसे दबे पाँव आया था, वैसे ही लौट गया। उन दोनों में से किसी ने नहीं जाना कि अजित उनको इस प्रकार बातें करते देख गया है।

उपन्यास कोई तीन सौ पन्ने का है। अन्त में शिवनाथ और मनोरमा में इतनी घनिष्टता बढ़ती है कि आशु बाबू मनोरमा को काशी भेज देते हैं, किन्तु शिवनाथ के पैरों में कोई ज़ंजीर थोड़े ही बँधी है। उनका सम्बन्ध कायम रहता है। मनोरमा ने अन्त में शिवनाथ से शादी कर ने के लिये अनुमति माँगते हुए अपने पिता को एक पत्र डाला। उधर अजित एक टुटपूँजिया आश्रम में जाकर बैठ गया, किन्तु अन्त में कमल और उसमें एक तरह का

companioned marriage या बिना विवाह किये साथ रहने की बात तय होती है। अजित ने बाक़ायदा शादी करनी चाही, किन्तु कमल ने अस्वीकार कर दिया।

तो इस प्रकार सारी पुस्तक के दौरान में कमल एक आसामी ईसाई की परिणीता स्त्री थी, फिर शिवनाथ की 'शैवमत से विवाहिता' स्त्री हुई, अन्त में अजित की साथिन (companion) हुई। आसामी ईसाई पति के मर जाने के बाद उसने शिवनाथ से शैवमत से विवाह किया, यह तो समझ में आता ही है; किन्तु तीसरे अवसर पर जो कमल ने शिवनाथ के मौजूद रहते ही अजित से साथिन का सम्बन्ध स्थापित किया यह समझ में न आता हो ऐसी बात नहीं क्योंकि जब शिवनाथ मनोरमा के साथ गया, तो वह भी स्वतंत्र हो गई। फिर भी इस सम्बन्ध में एकाध बात बिलकुल समझ में नहीं आती है, और उन बातों के समझ में न आने से कमल का सारा चरित्र ही अस्वाभाविक और काल्पनिक हो गया है, और इस प्रकार कमल का चरित्र जब अस्वाभाविक हो गया तो उसकी बातें बहुत काल्पनिक हो जाती हैं। शरत् बाबू ने कमल को एक तरफ़ तो प्रचंड क्रांतिकारिणी बनाया है, उसके मुँह की प्रत्येक बात से समाज का कोई न बुत टूटता है, किन्तु शरत् बाबू ने यह दिखलाया है कि कमल आसामी पति के मरने के बाद से सिवा हविष्यान्न के कुछ खाती नहीं और एकाहारिणी है। इस कर्तव्य (अजित के शब्दों में कृच्छ्र) का वह इतनी कट्टरता से पालन करती है कि आश्चर्य होता है। दूसरा पति कर लिया, तीसरे की तैयारी है (जैसा मैं लिख चुका, कमल की परिस्थितियों में इसे गर्हित नहीं कह सकता), किन्तु यह कृच्छ्र जारी रहता है। यह क्या तमाशा है ? फिर चायबगान के बड़े साहब की रखैली से उत्पन्न कमल को यह संस्कार कहाँ से पैदा हुआ कि पति के मरने (और सो भी ईसाई पति) के बाद एकाहार करना चाहिये। यह यदि उपन्यास की कोई तुच्छ घटना होती तो हम इस पर ख़्याल न करते, किन्तु कई बार इस घटना

की ओर पाठक की दृष्टि आकर्षित की जाती है इसलिये इसका यहाँ पर उल्लेख कर दिया।

अभी-अभी हमारे देखने में आया कि सुप्रसिद्ध विद्वान् एम० एन० राय ने जेल से पत्र लिखते हुए १९३१ में लिखा था "शेष प्रश्न की तुलना इस युग के सिंक्लेयर लिविस की पुस्तकों से नहीं हो सकती, किन्तु अनातोल फ्रांस, ज़ोला और इबसेन से इसकी अच्छी तरह तुलना हो सकती है। इसका अभी तक किसी भी विदेशी भाषा में अनुवाद नहीं हुआ। इस पुस्तक का मध्यबिन्दु एक लड़की है जो सचमुच एक डायोनिसस है। किस प्रकार वह युगयुगान्तर से आदृत सारे बुतों, रिवाजों तथा परम्पराओं को कुचल देती है और रवीन्द्रनाथ और गांधी को धार्मिक रूप से अनुसरण करनेवाले नौजवान भारत को सबक देती है। जो कुछ भी हो, जो भी शरत् बाबू की डायोनिसीय लड़की को पश्चिम में परिचित कर देगा, वह एक भारतीय को फिर से नोबल पुरस्कार दिलाने का मार्ग प्रशस्त कर देगा। मुझे विश्वास करो, रवि बाबू से शरत् बाबू नोबल पुरस्कार के लिये कम हक़दार नहीं हैं। वैयक्तिक रूप से मैं 'शेष प्रश्न' को गीतांजलि से बढ़कर समझता हूँ। हो सकता है उच्च साहित्य को कूतने की मेरी योग्यता सन्दिग्ध हो। किन्तु यह रुचि की बात है। शेष प्रश्न भारतीय पुनरुज्जीवन की (Renaissance) एक क्रोशशिला है। इसने बंगाली रोमांसवाद तथा रहस्यवादी भावाविलता के रोगी तथा स्थिर वातावरण को दूर कर दिया। शरत् बाबू की अन्य रचनाओं की पात्रियाँ मुनमुनाती थीं, यहाँ तक कि विद्रोह भी कर बैठती थीं, किन्तु अन्त में वे 'खुशी से' सिर झुका देती थीं। शरत् बाबू के लिये दो रास्ते थे, एक तो यह कि वे निष्ठुर प्रतिक्रिया की ओर जाकर अपनी पहली कृतियों का गला घोंट देते, किन्तु नहीं, उन्होंने दूसरे रास्ते को अपनाया, वे क्रमशः आगे बढ़ते गये, और अन्त में चलकर उन्होंने इस डायोनिसीय कन्या की सृष्टि की,

जिसके हाथों में विद्रोह का नहीं बल्कि क्रान्ति का झंडा है। हाँ, यह भी कृति आदर्शवादी (idealistic) है। देश की वर्तमान अवस्था में ऐसा होना अनिवार्य है। किन्तु यह आदर्शवादिता 'कला कला के लिये' दृष्टिकोण से ही है, और यह दृष्टिकोण आदर्शवाद का निकृष्टतम रूप है।"*

कामरेड राय एक साहित्यमर्मज्ञ के नाते मशहूर नहीं हैं। उनके इस पत्र में ही कम से कम एक प्रमाण ऐसा है जिससे ज्ञात होता है कि उनकी साहित्य-समालोचना हर समय विश्वसनीय नहीं है। उन्होंने इवसेन, ज़ोला और अनातोल फ्रांस को सिंक्लेयर लिविस से कम दर्जे का लेखक बतलाया है, किन्तु विश्व-साहित्य का कोई भी ज्ञाता कम से कम इबसेन और अनातोल को सिंक्लेयर से कम दर्जे का न समझेगा, न ऐसा किसी ने लिखा है। इबसेन तो आधुनिक यूरोपीय साहित्य के जनक हैं। शा और गैल्सवर्दी इबसेनवादी हैं। मालूम होता है कामरेड राय ने शा की इबसेनवाद नामक पुस्तक नहीं पढ़ी। क्या शा से भी बढ़कर कोई बुततोड़क है? फिर अनातोल फ्रांस, उनकी दया के चेहरे पर व्यंग की हँसी लगी हुई है, फ्रांस में वाल्टेयर के बाद कोई ऐसा बुततोड़क तो हुआ ही नहीं। और उनकी कला का क्या कहना? थायस जिसने पढ़ा है, वह उनकी कला पर कैसे सन्देह करेगा? फिर कामरेड राय जिसे क्रान्ति का झंडा कह रहे हैं, उसके भी इबसेन से बढ़कर प्रतिपादक लिविस थोड़े ही हैं। सच बात तो यह है कि गत दो शताब्दी के बुर्जुवा लेखकों में इबसेन से बढ़कर क्रान्तिकारी कोई हुआ ही नहीं। सड़े-गले बुर्जुवा समाज घर, उसकी सरकार पर, उसकी शासन-प्रणाली, उसकी संस्थाओं—एक शब्द में उसके प्रत्येक अंग पर जिस तरह कस-कसकर चाबुक इबसेन तथा उनके अनुकरणकारियों ने लगाये हैं, वह विश्वसाहित्य के इतिहास में अश्रुतपूर्व ही नहीं अश्रुतपर है। अस्तु।

---

*Letters from jail, by M. N. Roy, p. 4-5-7.

कामरेड राय शेष प्रश्न को गीतांजलि से बढ़कर जो मानते हैं, वह यदि इस दृष्टि से है कि गीतांजलि समाज को छोड़कर, उसकी समस्याओं की ज़मीन से अपना पैर बिल्कुल हटाकर सातवें आसमान के रहस्यलोक में नृत्य करती है तब तो यह बात ठीक है; शेष प्रश्न अशरीरी आत्मा की अलौकिक लीला नहीं, बल्कि उसमें पग-पग पर धड़कते हुए रक्तमांसमय हृदय का स्पन्दन है, किन्तु यही यदि एकमात्र मानदंड है तब तो शेष प्रश्न ही क्यों कोई भी सामाजिक उपन्यास गीतांजलि से अच्छा है। उस हालत में हमें कुछ कहना नहीं है। इस मानदंड को कट्टर तरीक़े से माननेवाले गीतांजलि को साहित्य ही न मानें तो क्या है?

अब हमें यह देखना है कि कमल के हाथ में जो झंडा है वह क्रांति का झंडा है या नहीं। राय साहब की समालोचना का यही सब से मुख्य विन्दु है, (बाक़ी बातें अपनी स्त्री से कथाच्छलेन कह गये हैं) इसलिये इसी की अच्छी तरह आलोचना करनी है। राय साहब साहित्य-मर्मज्ञ न सही क्रांतिमर्मज्ञ तो हैं ही, इसलिये उनकी इस समालोचना का मूल्य और भी बढ़ जाता है। यह तो हम पहले ही बता चुके हैं कि जहाँ पर शरत्-स्रष्ट अन्य नायिकाओं में जैसे पार्वती, किरणमयी, अचला, अन्नदा दीदी, रमा आदि में विद्रोह को या तो बिलकुल पृष्ठभूमि में या वाक्यों में मूर्त पाते हैं, वहाँ कमल में आकर यह विद्रोह क्रियाशील हो गया है, यही नहीं उसकी क्रिया बहुत प्रचंड है। कमल की पहली शादी जो आसामी ईसाई से हुई थी, उसके लिये हम उसे ज़िम्मेदार नहीं कह सकते, किन्तु एक के बाद एक उसने जो पहले शिवनाथ को और फिर अजित को ग्रहण किया, वह सम्पूर्ण इच्छाकृत है, और हम इन दोनों घटनाओं के लिये उसे ज़िम्मेदार समझ सकते हैं। किन्तु कमल के हाथ में क्रांति का झंडा है या उच्छृङ्खलता का, इस बात के किसी निर्णय पर पहुँचने के लिये हमें कमल को और गहराई के साथ जानने की ज़रूरत है।

ताजमहल की छाया में बैठकर कमल ताजमहल की आलोचना कर रही है। आशु बाबू सरल प्रकृति के वृद्ध बैरिस्टर हैं, स्त्री के मरने के बाद से गृहवासी संन्यासी के रूप में रहते हैं, कन्यागतप्राण हैं। वे उच्छ्वसित होकर कह रहे हैं, "मैं देखता हूँ सम्राट् शाहजहाँ को। मैं देखता हूँ उनकी असीम व्यथा को जो इसके प्रत्येक प्रस्तरखंड के अङ्ग-अङ्ग में समाई हुई है। मैं देखता हूँ उनके एकनिष्ठ पत्नीप्रेम को, जो इस संगमर्मर-काव्य की सृष्टि करके चिरकाल के लिये अपनी प्रियतमा को विश्व के सामने अमर कर गया है।"

कमल ने उनके चेहरे की तरफ़ देखकर अत्यन्त स्वाभाविक कंठ से कहा—मगर उनकी तो सुना है और भी बेगमें थीं। बादशाह को मुमताज पर जैसा प्रेम था वैसा औरों पर भी तो था। हो सकता है कि उनसे कुछ ज़्यादा हो, पर एकनिष्ठ प्रेम तो उसे नहीं कहा जा सकता आशु बाबू, उनमें यह बात नहीं थी।

इस अप्रचलित भयानक मन्तव्य से सब चौंक उठे। आशु बाबू या और कोई इसका जवाब खोजकर भी न पा सका।

कमल ने कहा—सम्राट कवि थे। वे अपनी शक्ति, सम्पदा और धैर्य से इतनी बड़ी विराट् सौन्दर्य की वस्तु प्रतिष्ठित कर गये हैं। मुमताज तो एक आकस्मिक उपलक्ष्य मात्र थी। वह न होती, तो भी ऐसा सौन्दर्य-सौध वे किसी भी घटना को लेकर रचे जा सकते थे। धर्म के नाम पर होता तो भी कोई नुक़सान नहीं था, और हज़ारों-लाखों मनुष्यों की हत्या करके दिग्विजय प्राप्ति की स्मृति के रूप में होता तो भी इसी तरह चल जाता। यह एकनिष्ठ प्रेम का दान नहीं है, यह तो सम्राट के निजी आनन्दलोक का अक्षय दान है। बस इतना ही हमारे लिये यथेष्ट है।

आशु बाबू के दिल पर चोट-सी लगी। बारबार सिर हिलाकर कहने लगे—यथेष्ट नहीं कमल, हर्गिज़ ऐसा नहीं था। तुम्हारी बात

ही यदि सत्य हो, यदि सम्राट के मन में एकनिष्ठ प्रेम नहीं था, तो इस विशाल स्मृति-मन्दिर का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता।

कमल ने कहा—यदि न रहे तो मनुष्य की मूढ़ता है। मैं नहीं कहती कि निष्ठा का कोई मूल्य नहीं, किन्तु जो मूल्य युग-युग से लोग उसे देते आये हैं, वह उसका प्राप्य मूल्य नहीं है। एक दिन जिससे प्रेम किया है, फिर किसी दिन किसी भी कारण से उसमें किसी परिवर्तन का अवकाश नहीं हो सकता, मन का यह अचल, अडिग जड़धर्म न तो स्वस्थ है न सुन्दर ही है।

यह स्मरण रहे कि य में ।क्वअन्तिम कमल ने अपने हृदय की अन्तरतम बात को स्पष्ट कर दिया है। कमल का जीवन मानो इसी वाक्य का मूर्त रूप है। यह बात तो सही है कि एक दिन जिससे प्रेम किया है उससे हमेशा प्रेम करना ही पड़ेगा ऐसी कोई क़सम नहीं है, न होनी चाहिये, किन्तु यह भी स्वाभाविक नहीं है, न उचित ही है कि जिससे प्रेम है उससे तोड़कर दूसरे से स्थापित करना, फिर उससे तोड़कर तीसरे से स्थापित करना इसे परम पुरुषार्थ माना जाय। सोवियट रूस में शुरू-शुरू में विवाह-विच्छेद आसान कर दिये जाने के कारण विवाह-विच्छेद बहुत हुए—ऐसा स्वाभाविक था क्योंकि शताब्दियों के बाद जब मुक्ति होती है तो वह भले-बुरे सब बन्धनों की मुक्ति के रूप में आती है, उसमें मात्राज्ञान नहीं रह जाता, किन्तु बाद को रूस में साम्यवादी दल ने बिना कारण विवाह-विच्छेद को बुरी दृष्टि से देखना शुरू किया, जिसका नतीजा यह हुआ कि क़ानून जहाँ का तहाँ रहते हुए भी लोगों में विवाह-विच्छेद कम हो गये। विवाह-विच्छेद एक अपवाद तथा safety-value के रूप में रह सकता है। हाँ, यदि विवाह-प्रथा को ही अस्वीकार कर दिया जाय और बिलकुल यौन अनाचार (sexual promisenity) के युग में लौटना है तो बात ही दूसरी है।

हम विवाह-प्रथा तथा विवाह-विच्छेद पर तात्विक तर्क से एक बार फिर ताजमहल पर लौटेंगे। रवीन्द्र साहित्य के किसी भी क ख ग घ जाननेवाले को कमल की यह समालोचना पढ़कर इस बात को पहचानने से देर नहीं लगेगी कि शरत् बाबू ने इस प्रकार कमल के मुँह से रवीन्द्रनाथ की 'ताजमहल' नामक कविता की समालोचना की है। रवीन्द्रनाथ ने ताजमहल पर जो कविता लिखी है, वह भी एक ताजमहल ही है—शब्दों का ताजमहल। कई शताब्दी बाद मानों इस मन्दिर की आत्मा को कविवर ने एक कविता में परोस दिया, इस कविता से ताजमहल जैसे द्विज हो गया था। रवीन्द्रनाथ के वे शब्द—

ज्योत्स्ना-राते निभृत मन्दिरे
प्रेयसीरे
जे नामे डाकिते धीरे धीरे
सेइ काने काने डाका रेखे ग्येले एइखाने
अनन्तेर काने
प्रेमेर करुणा कोमलता
फुटिलो ता
सौन्दर्येर पुंजेपुंजे प्रशान्त पाषाणे।
हे सम्राट कवि
एई तव हृदयेर छवि
इत्यादि

कितने अच्छे हैं, ताजमहल के प्रस्तरमय शरीर में मानो ये एक नवीन आत्मा का संचार करते हैं, किन्तु कमल के शब्द—'मगर उनकी तो और भी बगमें थीं'—कितने मर्मभेदी हैं, शाहजहान का ताजमहल भले ही इसके बाद कायम रहे, किन्तु रवीन्द्रनाथ के ताजमहल का इसके बाद कहीं पता नहीं रहता।

कमल अपनी इसी समालोचना को विधुर आशु बाबू पर लागू कर कहती है—एक दिन आशु बाबू अपनी स्त्री से प्रेम करते थे, जो इस

समय जीवित नहीं है। पर अब उन्हें न तो कुछ दिया ही जा सकता है, और न उनसे कुछ पाया ही जा सकता है। उन्हें न तो सुखी किया जा सकता है न दुःख ही दिया जा सकता है। वे हैं ही नहीं, प्रेम-पात्र का चिह्न तक जाता रहा है। किसी दिन प्रेम किया था मन में केवल यह घटना मात्र रह गई है। मनुष्य नहीं है, उसकी केवल स्मृति मात्र है। उसी को अहोरात्र मन में पालते रहकर वर्तमान की अपेक्षा अतीत को ही ध्रुव जानकर जीवन बिताने में कौन-सा बड़ा भारी आदर्श है? मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता।

. निरीह आशु बाबू इस पर प्रतिवाद कर कहते हैं कि माना अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ, किन्तु जिस समय मेरी स्त्री का देहान्त हुआ था, उस समय तो मैं बूढ़ा नहीं था, पर तब भी तो किसी और को उनकी जगह पर ला बिठाने की बात सोच नहीं सकता था।

इस पर कमल तिलमिलाकर कहती है—नहीं, उस दिन भी आप ऐसे बूढ़े थे। कोई-कोई आदमी ऐसे होते हैं जो बूढ़ा मन लिये पैदा ही होते हैं। उस बूढ़े के शासन के नीचे उनका जीर्ण-शीर्ण विकृत यौवन हमेशा लज्जा से सिर नीचा किये रहता है। बूढ़ा मन खुश होकर कहता है—अहा यही तो अच्छा है, कोई हंगामा नहीं, उन्माद नहीं—यही तो शान्ति है, यही तो मनुष्य के लिये चरम-तत्व की बात है। उसके लिये कितने प्रकार के अच्छे-अच्छे विशेषण हैं, कितनी वाहवाही का आडम्बर है। ऊँचे स्वर से उसकी ख्याति का ढोल बजता है, पर इस बात को वह जान भी नहीं पाता कि यह उसके जीवन का जयवाद्य नहीं, आनन्द-लोक के विसर्जन का बाजा है।...मन का बुढ़ापा मैं उसी को कहती हूँ जो अपने सामने की ओर नहीं देखता, जिसका हारा-थका जराग्रस्त मन भविष्य की समस्त आशाओं को जलाञ्जलि देकर सिर्फ़ अतीत के ही अन्दर जीवित रहना चाहता है।...वह अतीत को भुना-भुनाकर गुज़र करके जीवन के बाक़ी दिन बिता देना चाहता है।

कमल ने इस प्रकार बराबर बहुत ही बुततोड़क बातें कहीं हैं। जिस

बात को वह लेती है उसी पर वह एक बहुत ही तिलमिला देनेवाला अभिनव दृष्टिकोण पेश करती है। वह क़रीब-क़रीब ऐसी बात कहती है जिसके विरुद्ध रूढ़ियों की दुहाई देकर ही कुछ कहा जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं 'संयम जहाँ अर्थहीन है, जहाँ वह निष्फल आत्मपीड़न मात्र है, और उसी को लेकर अपने को बड़ा मानना न केवल अपने को ठगना, बल्कि दुनिया को भी ठगना है" किन्तु कमल ने तो एक प्रकार से सभी संयम की निन्दा कर डाली, यह कहाँ तक उचित है यह विचार्य है।

कमल की विद्वत्तापूर्ण बातचीत में सब से अधिक जो बात खटकती है, और वह मूलगत तरीके से आपत्तिजनक है। वह यह है कि प्रत्येक बात को वह सोलहो आने वैयक्तिक दृष्टि से देखती है। बुर्जुवा साहित्य के इस सब से बड़े दुर्गुण के कारण न शरत् बाबू क्रान्तिकारी हो सके, न कमल क्रान्तिकारिणी। कमल की बातें बड़ी चुभती हुई हैं, अग्निगर्भ हैं, शायद अधिकांश क्षेत्र में सही सही भी हैं, अधिक से अधिक उसमें कुछ तरमीम की आवश्यकता है; किन्तु उसमें जो सब से बड़ा दोष यह है कि वह हद दर्जे के व्यक्तिवादी दृष्टिकोण को ही व्यक्त करती है। ताजमहल पर उसकी जो आलोचना है वह, और आशु बाबू के विपत्नीक जीवन पर उसकी जो समालोचना है वह, इन दोनों में वही त्रुटि दृष्टिगोचर होती है। शाहजहाँ की एकनिष्ठता की समालोचना का आधार अन्य बेगमों के साथ सहानुभूति नहीं है। सम्राट् की एकनिष्ठता-प्रवाद पर हमला करने के लिये बेगमों का तर्क केवल एक अस्त्र है। विधुर आशु बाबू के जीवन की समालोचना भी इसी प्रकार है, उसमें आशु बाबू क्या हैं और क्या नहीं, यही है। आशु बाबू की स्त्री एक लड़की छोड़ गई थी, उस लड़की की दृष्टि से आशु बाबू के पुनर्विवाह करने के औचित्य-अनौचित्य पर एक हरफ़ भी कहीं नहीं। कहीं ग़लतफ़हमी न हो जाय इसलिये हम फ़ौरन कह दें कि इससे हमारा यह मत निकाला न जाय कि पहले के

प्रेम या विवाह के सन्तान रहने पर आगे विवाह न किया जाय। हमारा कहना केवल इतना है कि मियाँ-बीबी के अतिरिक्त समाज नाम की एक वस्तु है; बच्चे होते ही हैं; हमारा कथन है इनके दृष्टिकोण से इस प्रश्न पर विचार होना चाहिये (संभव है मातृहीन शिशु की दृष्टि से पिता का द्वितीय विवाह आवश्यक हो कौन जाने।) यह जो तरीका है प्रत्येक बात पर केवल व्यक्ति के दृष्टिकोण से विचार करना, वह ग़लत है, उसी पर मेरी आपत्ति है। यह तरीका क्रान्तिकारी भले ही जँचे, किन्तु है यह इसके बिलकुल विपरीत। जिस युग में एक छोटे से वर्ग की ओर से समाज का शोषण हो रहा है, उस युग में शोषितों की ओर से व्यक्तिवाद का नारा क्रान्तिकारी है। पूँजीवाद ने इसी नारे को देकर सामन्तवाद को मटियामेट किया। संभव है अक्सर व्यक्तिवाद के दृष्टिकोण से पहुँचा हुआ नतीजा वही हो जो सामाजिक दृष्टिकोण का नतीजा हो, किन्तु ऐसा नहीं भी हो सकता है। व्यक्ति-स्वातंत्र्य एक बहुत बड़ी चीज़ है, किन्तु एक व्यक्ति की विशुद्ध 'स्वतंत्रता' वहीं पर ख़तम हो जाती है जहाँ पर दूसरे की शुरू होती है, याने उन दोनों की स्वतंत्रता में एक सामंजस्यविधान की आवश्यकता वहीं होती है। आदिम समाजवाद तथा १९१७ के बाद के रूस के अतिरिक्त (यों तो १८७१ के पैरिस का कम्यून भी है) सभी समाजों में दो व्यक्तियों के हितों में जब संघर्ष होता था तो उसका निर्णय अल्पसंख्या शासित राष्ट्र अपने वर्ग-हित को देखकर करता रहा है न कि निष्पक्ष होकर जैसा लोग समझते हैं। इस प्रश्न के तात्विक विवेचन का यहाँ अवसर नहीं है, किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि सर्वबन्धन-विमुक्ति का नारा सभी हालतों में, यहाँ तक कि वर्गहीन, राष्ट्रहीन, दलहीन समाज में भी ग़लत है। समाज में मनुष्य विशुद्ध 'स्वतंत्रता' का उपभोग नहीं कर सकता, समाज में सामाजिक स्वतंत्रता ही हो सकती है।

कमल-चरित्र में जिस चीज़ का प्रचार किया गया है, वह

सर्वबन्धन-विमुक्ति है, क्रांति नहीं। साथ ही हम यह भी मानने के लिये बाध्य है कि जब जिधर देखो उधर बन्धन ही बन्धन है, उस हालत में उसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप सर्वबंधन-विमुक्ति के लिये प्रयास आता है, इस दृष्टि से यह प्रवृत्ति भले ही असामाजिक तथा अव्यावहारिक हो, है यह एक स्वाभाविक प्रवृत्ति ही। जब विद्रोह की धुन किसी पर सवार हो जाती है, और वह अपने वर्षों की सब जंजीरों को तोड़कर अलग करने लगता है उस समय उसको मात्राज्ञान नहीं रहता। तात्विक बातों को, अंतिम कल्याण-अकल्याण की बातों को जाने दिया जाय, व्यक्तिस्वातंत्र्य के एकमात्र दृष्टिकोण से देखा जाय तो भी कमल पूरी नहीं उतरती है। शिवनाथ की अकारण परित्यक्ता स्त्री के दृष्टिकोण से क्या कमल कभी सोचती है ? हम यह नहीं कहते कि वह इस कारण शिवनाथ को ग्रहण न करती किन्तु मेरा कहने का मतलब है, वह इस दृष्टिकोण से सोचने में असमर्थ-सी है, वह प्रत्येक चीज़ को अपने ही दृष्टिकोण से सोचती है। वह जब अजित को जान-बूझकर धीरे-धीरे खींचती है उस समय वह सिवा आत्म-सुख के कौन से आदर्श का अनुसरण करती है। शिवनाथ भी मनोरमा को इसी प्रकार खींचता है इन दोनों में फ़र्क क्या है ?

शरत् बाबू की लेखनी की महिमा है कि शिवनाथ खल जँचता है और कमल विद्रोहिणी—बल्कि मूर्तिमती नारी-विद्रोह, किंतु एक योगेन्द्र की विधवा को धोखा देने के अतिरिक्त उसमें कोई ऐसी बड़ी त्रुटि नहीं है जिसको हम कमल में नहीं पाते। शिवनाथ ने अपनी पहली स्त्री को रोग के कारण त्याग दिया, यह कमल के दृष्टिकोण से उचित ही है। इस कृत्य का समर्थन करते हुए शिवनाथ ने यह जो कहा था—'वे हमेशा बीमार रहतीं हैं, उम्र भी तीस हो चली। औरतों के लिये इतन ही काफ़ी है। उसपर लगातार बीमारी से भुगतने के कारण दाँत गिर गये, बाल पक गये, बिलकुल ही बूढ़ी हो गई है, इसीलिये उन्हें छोड़कर दूसरा ब्याह करना पड़ा'—इसका कमल सिवा अनुमोदन करने

के क्या कर सकती है ? इस सम्बन्ध में उसकी उस बात को स्मरण कीजिये—'एक दिन जिससे प्रेम किया है, फिर किसी समय किसी भी कारण से उसमें परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं, मन का यह अचल अडिग धर्म न तो स्वस्थ है और न सुन्दर ही'—फिर—'मनका बुढ़ापा मैं उसे कहती हूँ, जो अपने सामने की ओर नहीं देख सकता, जिसका हारा-थका जराग्रस्त मन भविष्य की समस्त आशाओं को जलांजलि देकर सिर्फ अतीत के ही अंदर जीवित रहना चाहता है।' इत्यादि।

शिवनाथ ने स्वयं कमल को जो छोड़ दिया, उस पर कमल क्या कह सकती है ? शिवनाथ पत्थर खरीदने के लिये जयपुर जाने का बहाना कर चला गया, किंतु असल में वह आगरे में ही कमल से अलग रह रहा था, इसकी खबर जब कमल को अजित से लगी तो उसकी जो प्रतिक्रिया उसमें हुई है वह द्रष्टव्य है।

रात अधिक हो रही थी। कमल के घर में बैठा हुआ अजित डर रहा था कि कहीं शिवनाथ आ जाय तो क्या समझे।......कमल बोली—अजित बाबू, आपको डरने की कोई बात नहीं। वे यहाँ अब नहीं आते। शैव-विवाह की शिवानी (शिवनाथ का दिया हुआ कमल का प्या●का नाम) का मोह शायद अब दूर हो चुका है।

अजित ने पूछा—इसका अर्थ, आप क्या गुस्से में कह रही हैं ?

—नहीं, गुस्सा करने लायक अब ज़ोर भी शायद मुझमें नहीं रहा। मैं समझती थी पत्थर खरीदने के लिये वे जयपुर गये हैं, आप से ही यह पहले-पहल ख़बर मिली कि वे आगरा छोड़कर अब तक कहीं नहीं गये हैं। चलिये उस कमरे में चलकर बैठें......

कमल के मानदंड के प्रयोग करने से ही ज्ञात होगा कि जब शिवनाथ का मन कमल से हट गया तो उसने उसे त्यागकर ठीक ही किया, किंतु शरत् बाबू के लेखन-कौशल से ऐसा ज्ञात होने लगता है मानो शिवनाथ ने कमल को धोखा दिया हो। किंतु कमल के

मतानुसार यह धोखा नहीं हो सकता। 'एक दिन जिससे प्रेम किया है फिर किसी समय, किसी भी कारण से उसमें परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं, मन का यह अचल अडिग धर्म न तो स्वस्थ है न सुंदर ही।'

एक बात यह तो माननी पड़ेगी शिवनाथ जो उसे त्यागकर चला गया, और आगरे में ही रहता है, इस खबर को कमल ने क़रीब-क़रीब स्थितप्रज्ञ की तरह ग्रहण किया। वह न तो इस पर क्रोध दिखलाती है न दुःख। अजित ने पूछा—क्या आप अब आगरे में ही रहेंगी?

—क्यों?

—मान लीजिये शिवनाथ बाबू आइन्दा अगर नहीं आये। उन पर तो आपका ज़ोर है नहीं?

कमल ने कहा—नहीं—फिर ज़रा चुप रहकर कहा—आप लोगों के यहाँ तो वे रोज़ जाते हैं, गुप्त रूप से जानकर क्या मुझे जता नहीं सकते?

—उससे क्या होगा?

—होगा और क्या, घर का किराया इस महीने का दिया ही हुआ है, फिर मैं कल परसों तक चली जा सकती हूँ। इत्यादि।

क्या यह रुख स्वाभाविक है? यह माना कि एक प्रेम को लेकर उसी की लकीर की फकीरी आत्मपीड़न की हद तक करते रहना न तो स्वस्थ है न सुन्दर ही, किंतु एक प्रेम जब चला जाता है। उस समय कुछ दिनों के लिये ही सही एक शून्यता छोड़ ही जाता है, सामयिक रूप से ही सही एक प्रकार का वैराग्य उत्पन्न होता है जिसे श्मशान वैराग्य कहते हैं, किंतु हम कमल में इस प्रकार की कोई बात नहीं देखते। वह तो 'सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ' वाक्य का मूर्त रूप है। रक्तमांससुलभ दुःख-शोक उसे जैसे स्पर्श ही नहीं करते। डाक्टर श्रीकुमार बनर्जी ने शरत् बाबू की अन्य पात्रियों के साथ कमल की तुलना करते हुए लिखा है—"वह सावित्री, अभया, राजलक्ष्मी की सहोदरा अथवा स्वजातीया नहीं है—सावित्री, अभया, राजलक्ष्मी आदि

नारियाँ भारतीय हैं, इनका विद्रोह जिसके विरुद्ध युद्ध करते हुए बाहर आ रहा है, वह है समस्त समाज और युगयुगान्तर-व्यापी धर्मविधि की सम्मिलित शक्ति....। कमल का जैसे किसी के साथ कोई नाड़ी का सम्पर्क नहीं है, छोटा बड़ा कोई भी आकर्षण जैसे इसको वेदना से मथित नहीं करता, कमल मानों एक बुद्धिग्राह्य मतवाद की सुस्पष्ट और ज़ोरदार अभिव्यक्ति है...वह एक एंजिन की सीटी है, हृदय-स्पंदन नहीं।"

हमें इसकी फिक्र नहीं कि कमल इस प्रकार stoic सी है, सवाल तो यह उठता है कि क्या वह वाक़ई प्रेम कर सकती है, क्या उसने कभी प्रेम किया ? यह कोई अद्भुत प्रश्न नहीं है। हम ऐसा प्रश्न पाठक को चौंका देने के लिये नहीं कर रहे हैं, यह प्रश्न स्वतः उद्भूत होता है। क्या वह व्यक्ति जो प्रेमपात्र के विरह में व्याकुल नहीं होती, वह प्रेम कर सकती है, कभी उसने प्रेम किया होगा ? हमें एक ही क्षेत्र ऐसा ज्ञात है जब पुराने प्रेमपात्र से वियुक्ति दुःखद नहीं होगी, वह उस हालत में जबकि एक प्रेम का नशा अभी उतर न पाये, औरा दूसरा चढ़ जाय। उस हालत में प्रथम प्रेमपात्र का विरह नहीं होगा, बल्कि वह तो मार्ग का कंटक हो चुका है, उसका हट जाना सुखकर ही होगा, किंतु कमल के मामले में यह बात नहीं घटती। अजित से उसकी घनिष्टता कुछ बढ़ी तो नहीं है कि समझा जाय कि शिवनाथ का अकस्मात् प्रयाण उसे दुःख नहीं देगा। मैं समझता हूँ कमल के चरित्र में यह एक बात है जिसे और गहराई से समझने की ज़रूरत है। ऐसी अवस्था में क्या यह भ्रम होना स्वाभाविक नहीं है कि कमल कोई रक्तमांस की बनी नहीं है, वह शरत् बाबू के मस्तिष्क से उद्भूत संगमर्मर की एक मूर्ति है। वह एक विचार का प्रगल्भ मूर्त रूप है।

किन्तु नहीं, हम इसका और स्पष्टीकरण करेंगे। मान लीजिये इसके उत्तर में यह कोई पूछे—क्या जिस प्रकार के प्रेम की दुहाई देकर

आप यह कमल के लिये स्वाभाविक समझते हैं कि शिवनाथ से वियुक्त होने पर कमल को कुछ क्रोध करना चाहिये था, दो-चार आँसू बहाना चाहिये था क्या यही एकमात्र स्वाभाविकता है ? इतिहास से तो यह सिद्ध है कि जिसे हम आजकल प्रेम कहते हैं, वह आदिम काल से स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध का एकमात्र आधार नहीं था, बहुत बाद के युग में जाकर प्रेम नामक सामग्री का प्रचलन हुआ। सहस्रों वर्षों तक विवाह (यौन-सम्बन्ध) से प्रेम से कोई सम्बन्ध नहीं होता था। इतिहास की बहुत ही प्रारम्भिक मंजिलों में (उससे भी पहले, तो जो जिसको पा गया वह उसका होता था, बाप और बेटी में भी शय्या-सम्बन्ध होता था) स्त्रियों के एक निर्दिष्ट गिरोह का पुरुषों के एक निर्दिष्ट गिरोह के साथ पैदा होते ही विवाह हो जाता था। इसमें प्रेम के वर्तमान रूप (जिसका टाल्सटाय ने Kreutzer Sonata में यों परिभाषा की है— और सब व्यक्तियों की पर एक व्यक्ति को सर्वतोभावेन तरजीह देना) का कोई सवाल हीं नहीं उठता है। बाद के युग में जब हम इस प्रकार और सब व्यक्तियों पर एक व्यक्ति को तरजीह मूलक प्रेम पाते हैं, तो उसे सामाजिक रूप से नहीं, बल्कि असामाजिक रूप से (व्यभिचार आदि में) पाते हैं। तभी तो परकीया-प्रेम सारे साहित्य का आधार ही हो गया और माना गया। जो कुछ भी हो यह तो साबित है कि प्रेम और विवाह का सम्बन्ध आदिम नहीं। अब भी सब समाजों में स्थापित नहीं हो सका है। स्वयं शरत् बाबू के उपन्यास (मध्यवित्त श्रेणी के सामाजिक प्रतिफलन के रूप में) इसके सबसे बड़े प्रमाण हैं। यदि यही बात है तो अब वह प्रश्न अधिक ज़ोर पकड़ता है कि क्या कमल के लिये, इसलिये किसी भी स्त्री या पुरुष के लिये प्रेम करना ज़रूरी है ? क्या यौन-सम्बन्ध और साथ ही एक intelligent understanding बुद्धिसम्पन्न सम्बन्ध ही यथेष्ट नहीं है ?

शेष-प्रश्न की कमल का उत्तर है, "मैं मानना चाहती हूँ कि जब जितना पाऊँ उसी को सच्चा समझकर मान सकूँ। दुःख का दाह मेरे

बीते हुए सुख की ओस की बूँदों को सुखा न डाले। यह (आया हुआ सुख) जितना भी कम क्यों न हो, और परिणाम उसका संसार की दृष्टि में चाहे जितना तुच्छ क्यों न गिना जाय फिर भी मैं उसे अस्वीकार न करूँ। एक दिन का आनन्द दूसरे दिन के निरानंद के सामने झेंपे नहीं। इस जीवन में सुख-दुःख दोनों में से कोई भी सत्य नहीं, सत्य है सिर्फ उनके चंचल क्षण, सत्य है सिर्फ उनके चले जाने का छंद। बुद्धि और हृदय से उनको पाना ही तो यथार्थ पाना है।"

और सुनिये, कमल कहती है, "कर्तव्य के अंदर जो आनंद मालूम होता है वह आनंद का भ्रम है, वास्तव में वह दुःख का ही नामान्तर है। उसे बुद्धि के शासन से ज़बरदस्ती आनंद मानना पड़ता है। पर वह तो बंधन है......"

इससे कमल के जीवन का दर्शन अच्छी तरह समझ में आ जाता है। फिर एक बार कहता हूँ उसके हाथ में जो झंडा है वह सर्वबंधनमुक्ति का झंडा है, क्रांति का नहीं। कोई भी क्रांति सर्वबंधन-विमुक्ति नहीं है, क्रांति की यह धारणा बचकाना है। क्रांति का अर्थ असंगतिग्रस्त, सड़े-गले कंठरोधकारी बंधनों की जगह पर स्वास्थ्यकर नवीन बंधनों का प्रवर्तन। ये बंधन ऊपर से नहीं लदते, बल्कि क्रांतिकारी इन्हें अपने ऊपर लादता है। क्रांति एक युक्तवाद (synthesis) है। यह युक्तवाद पहले के वाद (thesis) और प्रतिवाद (antithesis) से सम्पूर्णरूप से अलग होते हुए भी, पहले के मुकाबले में एक छलांग होते हुए भी, इसकी उत्पत्ति हवा से या दिमाग़ से नहीं होती, आधारगत रूप से पहले के वाद प्रतिवाद से संयुक्त है। कहीं यह समालोचना अधिक गूढ़ न हो जाय इसलिये हम इतना ही कहेंगे कि कमल की यह धारणा कि सभी कर्तव्य आत्मपीड़न है एक अजीब धारणा है। फिर एक बार दूसरे शब्दों में वही बात साबित होती है जो मैं पहले कह चुका हूँ कि कमल अधिकारों के लिये खूब लड़ती है, सोलहों आने सजग है, किंतु कर्तव्य को

आत्मपीड़न बताती है। इसी से स्पष्ट हो जाता है कि उसके हाथ में जो झंडा है वह क्रांति का नहीं है वह सर्वबन्धन-विमुक्ति तथा मात्रा ज्ञान-ही विद्रोह का है। विद्रोह ज्यों ही मात्राज्ञान खो बैठता है त्यों ही वह विद्रोह नहीं रहता, कुछ और हो जाता है, मात्राज्ञान परिवर्तन से गुण-गत परिवर्तन हो जाता है।

कमल के समर्थन में यह कहा जा सकता है कि सर्वबंधनमुक्ति की उसकी यह प्रवृत्ति स्वाभाविक है। मैं भी ऐसा ही मानता हूँ। जब भारती नारी की चारों ओर रूढ़ि ही रूढ़ि है, जब परम्पराओं ने उसके प्रत्येक अंग को बीस-बीस दफे बाँध रक्खा है कि कहीं वह हिलडुल भी न पावे, जब हज़ारों वर्षों से उसकी आत्मा को कुचला गया है, उस समय उसके लिये सर्वबंधनमुक्ति की इच्छा ही स्वाभाविक है। जब वह अपने बंधनों को तोड़ेगी तो संभव है वह अपने वस्त्र को कमरवाली गाँठ भी खोलकर अलग हो जाय और दिगम्बरी हो जाय। कमल ऐसी ही एक नारी है, उसको सामाजिक स्वतंत्र नारी का आदर्श मानना कठिन है, किंतु यह स्मरण रहे उसकी तरह मात्राज्ञानहीन विद्रोह, विद्रोह और विद्रोह, फिर विद्रोह से ही नारी की मुक्ति का कार्य सिद्ध होगा। यों तो शरत् बाबू के सारे उपन्यास मध्यवित्त श्रेणी की नारियों के विद्रोह के उपन्यास हैं, किसी उपन्यास में यह विद्रोह स्फुरता की मात्रा को पहुँचाता है, किसी में नहीं, किंतु शेष-प्रश्न में आकर यह विद्रोह अथाह सागर के साथ एकाकार हो गया है।

कमल केवल रूढ़ि, परम्परा, कर्तव्य के विरुद्ध विद्रोहिनी नहीं है, वह स्वयं प्रेम के विरुद्ध विद्रोहिनी है। वह प्रेम की चिरंतनता की कायल नहीं। यदि देखा जाय कि प्रेम की चिरंतनता के नाम पर किस प्रकार पुरुष जाति ने नारी को बेवकूफ बनाया है, विधवा स्त्रियों से ब्रह्मचर्य का पालन कराया, यहाँ तक कि पति के साथ उसे चिता में भेज दिया, तो हम समझ सकते हैं कि यह प्रेम केवल लूटखसोट का एक आवरण रहा है, पुरुष की शोषण-प्रवृत्ति पर एक गूलरपत्र

(fig-leaf) का काम देता रहा है, तो प्रेम के प्रति कमल की यह हतश्रद्धता समझ में आती है। टालस्टाय कृत प्रेम की जिस परिभाषा को मैंने उद्धृत किया है, उसमें सब पर एक को तरजीह देने को ही प्रेम बताया गया है, किंतु क्या यह तरजीह केवल नारी की ओर से ही हो ? कानफ्युसियस ने तो यह स्त्रियों को तसल्ली दी है कि बुद्धिमती स्त्री को कदापि पुरुषों के कभी-कभी इधर-उधर हाथ मारने से घबड़ाना नही चाहिये, यह तो पुरुष का स्वभाव है, वह तो लौट ही आयेगा.... इत्यादि। कमल ने इसी कारण प्रेम को भला-बुरा कहा। प्रेम के इस शोषक चरित्र के विरुद्ध विद्रोह बिलकुल उचित है। किंतु इस शोषक चरित्र के अतिरिक्त प्रेम में कुछ और भी तो बातें आ गई हैं। जहाँ पहले संभव है केवल लैंगिक या शारीरिक संबंध मात्र था, वहाँ अब उसके और सूक्ष्मीकृत रूप हो गये हैं। मनुष्य जितना सभ्य होता गया है उसका शारीरिक मिलन भी उतना ही सूक्ष्म होता गया है। केवल यही नहीं, कविता के कारण उसका विस्तार और गहराई बढ़ती गई है। अब वह शारीरिक समतल की ही बात न रहकर मानसिक समतल तक विस्तृत हो चुकी है; अवश्य उसे किसी भी हालत में शारीरिक आधार को बिलकुल छोड़कर उड़ान भरने की स्वतंत्रता नहीं है, कहीं न कहीं शरीर सूक्ष्मरूप से इन उड़ानों की पृष्ठभूमि में रहेगा ही।

शिवनाथ के द्वारा परित्यक्ता होने के बाद कमल ने मानो इसी प्रश्न पर रोशनी डालते हुए कहा है—आपको उस दिन की ताज-महल की छाया के नीचे खड़ी शिवानी (शिवनाथ की प्रेयसी इस कारण शिवानी) की याद है ? आज कमल के भीतर उसे पहचाना नहीं जा सकता। आप मन ही मन कहेंगे जिसे उस दिन देखा था वह गई कहाँ ? किंतु यही मनुष्य का सच्चा परिचय है—मैं तो चाहती हूँ हमेशा इसी तरह से लोगों से परिचित हो सकूँ।

कमल ने यह बात कहने को तो कह दी, किंतु क्या भूतकाल को अपने जीवन से निर्वासित करना इतना आसान है ? शिवनाथ ने

त्याग दिया, इसलिये फौरन ही शिवानी शिवनाथ को छोड़
ान से निकालकर बिलकुल दूसरी ही व्यक्ति हो जाय, यह
ा तर्कसंगत, बिलकुल दो धन दो चार है, किंतु क्या सभी क्षेत्र
करना आसान है ? मनुष्य की वर्तमान मनोवैज्ञानिक हालत में
र्या (jealousy), विरह, क्रन्दन आदि का कोई स्थान नहीं
मल कहती है नहीं, और उसके जीवन में भी हम इसी बात को
भूत पाते हैं, वह शिवनाथ के चले जाने पर अजित को पकड़ती
न्त तक उसी के साथ साथ-विवाह (Companionate
rriage) में उपन्यास खतम होता है। लेखक इसके आगे की
नहीं दिखलाते किन्तु शायद इतनी ही आसानी से वह अजित को
ड़ देगी जितनी आसानी से उसने शिवनाथ के चले जाने को लिया
। अब फिर वही प्रश्न करता हूँ क्या जिसको विरह में दारुण
खानुभूति नहीं होती, उसको मिलन में सुखानुभूति हो सकती है ?
नुष्यजाति की वर्तमान मनोवैज्ञानिक हालत में ऐसा संभव नहीं।
सीसे तो यह कहने की इच्छा होती है कि कमल रक्तमांस की सृष्टि
हीं है, वह शरत् बाबू के दिमाग की सृष्टि मात्र है। इसी कारण कमल
ा चरित्र अधिकतर विद्रोहिणी का चरित्र होने पर भी वह शरत्
ाहित्य के किसी भी स्त्रीचरित्र के मुकाबले में निकृष्ट है ? अन्नदा दीदी,
ाशीमुखी, पार्वती, किरणमयी पूरी क्रान्तिकारिणी न सही, कुछ
तिक्रियावादिनी ही सही, वे हैं तो फिर भी रक्तमांस की बनी हुई
जीवन-स्पन्दनशील नारी। और इसी शेष-प्रश्न में सर्वबन्धनमुक्ति की
दुन्दुभि बजते रहने पर भी वह कला और मनोविज्ञान दोनों दृष्टि से
शरत् बाबू की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं से याने श्रीकान्त, चरित्रहीन, देवदास
आदि से निकृष्ट कोटि की है। 'पथेर दावी' यद्यपि कला की दृष्टि से
शरत् बाबू की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में नहीं आ सकता, फिर भी वह 'शेष-
प्रश्न' से उच्चकोटि की रचना है।

कहा यह जा सकता है कि यह शरत् बाबू का दोष नहीं कि कमल

में दुःख और क्रन्दन से बचने की मनोवृत्ति कृत्रिमता तक पहुँ
यह तो कमल के चरित्र का ही दोष है, किन्तु हम यह नहीं
हमारे सामने महाकवि गेटे का जीवन मौजूद है। कहा जाता है
एक-एक काव्य के पीछे एक-एक नारी मौजूद है। मिलन
विरह, विरह के बाद मिलन इसी प्रकार उनका जीवन चिरवस
बना हुआ था। कविवर को मिलन की अनुभूति जितनी होत
विरह की अनुभूति भी उतनी ही तीव्र होती थी। मिलन में य
सुख की चोटी पर रहते थे, तो विरह में दुःख के अथाह गह्वर
जाते थे, हमें यही आदर्श मनुष्य मालूम होता है। (स्मरण रहे,
यहाँ नीति-अनीति का विवेचन नहीं कर रहे हैं।) शरत् बाबू कम
को इस प्रकार विरहवेदनाहीन स्थितप्रज्ञा दिखलाने के बजाय यह
तो दिखला सकते थे कि शिवनाथ के विश्वासघात से उसको बहु
चोट लगी, वह तिलमिला गई, कई दिनों तक उसको बेहोशी सी रह
किन्तु वह धीरे-धीरे सम्हली, उठी, पहले एक क़दम उठाया फिर दूसरा
अपना रोज़मर्रे का काम करने लगी, इस बीच में अजित आया
धीरे-धीरे उसके साथ घनिष्टता बढ़ी, इत्यादि। किरणमयी उपेन्द्र
प्रेम में दिवानी हो गई थी इस बात से उसके चरित्र पर रोगग्रस्त
भाव-विह्वलता का दोष भले ही लगाया जा सके, किन्तु इससे उसकी
अनुभूति की गंभीरता तो ज़ाहिर होती है। इसके विपरीत ऐसा मालूम
होता है कि कोई भी बात कमल के अंतरतम प्रदेश तक पैठती ही नहीं,
सभी घटनायें जैसे उसकी सतह से टकराकर लौट आती हैं, और इस
टक्कर के फलस्वरूप जो आवाज़ होती है वह किसी रक्तमांसमयी नारी
की बात नहीं, क्रान्ति की अटोमैटन की आवाज़ मालूम होती है। यह
क्रान्ति का दोष नहीं, शरत् बाबू का ही दोष है कि वे क्रान्ति को ठीक
तरह से पचाकर (मेरा मतलब उसे dilute करने से नहीं है)
उसको रक्तमांसमय रूप नहीं दे सके। बात यह है, शरत् बाबू मध्यवित्त
श्रेणी के ही कलाकार हैं, उसी में उनकी सार्थकता तथा शक्ति है, शेष-

। अपनी कला से बाहर बल्कि ऊपर निकल गये, तभी यह हुई है ।

र भी कमल के रूप में शरत् बाबू ने जिस चरित्र की सृष्टि की निराला है । डाक्टर सुबोध सेन ने यह कहा कि "अन्नदा दीदी या तक शरत् बाबू ने जितनी भी नारियों के चित्र खींचे हैं, उन ो अभिज्ञताओं को संचित करने पर जो प्रश्न जो विद्रोह अनिवार्य ,यगा कमल केवल उसी की अभिव्यक्ति है । कमल के चरित्र ने -साहित्य को पूर्णता प्रदान की है ।" इसमें सन्देह नहीं किंतु हम को उस अर्थ में नहीं लेते, जिसमें यह लिखा गया है । कमल में कर नारीविद्रोह सक्रिय रूप ग्रहण करता है जरूर, अन्य विद्रोहों में तो विद्रोहिनीगण जिस रूढ़ि के विरुद्ध विद्रोह का झंडा बुलंद करती हैं सी के दायरे में बल्कि उसी को आत्मसमर्पण कर जीवन व्यतीत रती हैं, किंतु कमल तो सक्रिय विद्रोहिनी है । फिर भी कमल का रित्र असम्पूर्ण है । यह किस अर्थ में इसे हम साफ कर चुके हैं । सका और थोड़ा स्पष्टीकरण यहाँ कर दिया जाय । कमल को शरत् बू ने जिस प्रकार रागद्वेषशून्य अतिवस्तुवादिनी (इसलिये अवास्तविक) बनाया है क्या वही आदर्श समाज की (समाजवादी) नारी का चित्र है ? हम तो नहीं समझते । यहीं पर शरत् बाबू की पेटी बुर्जुवा कला फेल हो जाती है । वह समाजवादी समाज की स्वतंत्र नारी का चित्र खींचने में असमर्थ रहती है । समाजवादी समाज की नारी माया-मोहशून्य, स्थितप्रज्ञ, रबट नहीं होगी उसका केवल दिमाग़ नहीं होगा दिल भी होगा ।

'शेष प्रश्न' में सब मध्यवित्त श्रेणी के उपन्यासों की तरह यह त्रुटि है कि उसमें यौन-समस्या पर ही ज़ोर दिया गया है, मानो दुनिया में स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध के अतिरिक्त कोई समस्या ही न हो । यों तो कमल की बातचीत के दौरान में कितनी ही समस्याओं पर रायज़नी

की गई है; किन्तु ये समस्याएँ कहीं भी जीवि.त रूप से नहीं
बातों की समस्याएँ हैं, जीवन की नहीं। अनागत काल का
कलाकार होगा जो भारतीय साहित्य का उद्धार प्रेम के इस पंक
उसे जीवन की सैकड़ों समस्याओं के चरणों में चढ़ायेगा।

कमल के विषय में एक जो सबसे अच्छी बात शरत्
ने दिखाई है, वह यह है कि कमल आर्थिक रूप से स्वावलम्बि
अवश्य शरत् बाबू ने इस तथ्य को उतना महत्व नहीं दिया जित
प्राप्त होना चाहिये, फिर भी इतना तो हम जानते ही हैं वह सिला
रोज़गार करती है। कमल की स्वतंत्रता का यही आधार है। वह
शिवनाथ की मुहताज है न अजित की। इस दृष्टि से देखा जाय
शरत् बाबू ने पहली बार एक ऐसी स्त्री को अपने कथानक की नायि
बनाया है (चरित्रहीन की सावित्री को हम नहीं भूले हैं, उसे उ
उपन्यास की नायिका होने की मर्यादा नहीं प्राप्त हुई) जो सर्वहा
तो नहीं, बल्कि सर्वहारीभूता (proletarianised) है। यह बहु
खुशी की बात है कि शरत् बाबू अन्तिम दिनों में यह समझ गये
कि बिना आर्थिक रूप से स्वतंत्र हुए स्त्रियाँ स्वतंत्र नहीं हो सकतीं
मध्यवित्त तथा शिक्षित स्त्रियों में स्त्री-स्वाधीनता पर लिखना औ
बोलना एक फैशन हो गया है, इसके लिये कई संस्थायें हैं, एक अखिल
भारतीय संस्था भी है, किन्तु इन संस्थाओं की स्त्रियों की पोल यह है
कि यह स्त्रियाँ सब की सब अपने पतियों और पिताओं के पैसों पर चैन
की बाँसुरी बजानेवाली है। इससे इनके सारे आन्दोलन को ही ऐसी
अवास्तविकता प्राप्त है जो अवर्णनीय है। यह ऐतिहासिक तथ्य भी है
कि स्त्रियाँ तभी तक समाज में स्वतंत्र रहीं जब तक वे आर्थिक रूप से
परावलम्बिनी नहीं हुईं। जिस दिन से रोटी की फिक्र से स्त्रियाँ बचीं,
उसी दिन से वे परतंत्र भी हो गईं, पुरुष के हाथ की क्रीड़ना मात्र
हो गईं, कुछ भी नहीं रहीं। शरत् बाबू ने कमल के चरित्र में यह बात
दिखला दी, इसलिये उस चरित्र को एक वास्तविकता प्राप्त हो गई है

जो किरणमयी या और किसी नायिका को प्राप्त नहीं हो सकी। यदि शरत् बाबू कमल को इस प्रकार स्वावलम्बिनी नहीं दिखलाते, तो कमल की सारी वक्तृताओं पर पानी फिर जाता। बुर्जुवा लेखकों की एकमात्र समस्या योन समस्या है, उनके किसी नायक-नायिका को शायद ही रोटी की फ़िक्र हो, उनका औसत ख़र्च ५००) रु० महीना समझना चाहिये। चरित्रहीन के सतीश, उपेन्द्र बड़ी दीदी के सुरेश से लेकर शरत् बाबू के सभी उपन्यासों में यही हाल है। देवदास की शशीमुखी के सामने रोटी की समस्या आती है, किन्तु ऐसा उसकी परिणति की एक अवस्था के रूप में दिखाया गया है। चरित्रहीन की सावित्री मेस की नौकरनी है, किन्तु उसके चरित्र का अनुसरण कीजिये तो ज्ञात होगा ऐसा वह महज़ कृपापूर्वक है, वह मेस की नौकरनी होते हुए भी बिलकुल बुर्जुवा है। फिर मेस की नौकरनी न होती तो उसके साथ सतीश की जान-पहिचान न हो सकती, अतः स्पष्ट है कि उसका नौकरनी होना एक गौण तथ्य है।

स्वयं 'शेष प्रश्न' में भी आशु बाबू को रुपयों-पैसों की कोई फिक्र नहीं है, शिवनाथ और अजित का भी यही हाल है। सब निठल्ले से हैं। कमल के सम्बन्ध में हम पहले ही बता चुके।

कमल के मुँह से शरत् बाबू ने नाना विषय की बातचीत कराई है। यह बातचीत भारतीय साहित्य में एक अद्भुत वस्तु है। स्वयं शरत्-साहित्य में एक किरणमयी की बातचीत के अतिरिक्त और कहीं इतनी कलामय साथ ही प्रतिभाप्रखर बातचीत नहीं मिलती। हम इसके कुछ नमूने उद्धृत कर इस आलोचना को समाप्त करेंगे।

कमल कह रही है—कोई भी आदर्श सिर्फ इसलिये कि वह बहुकाल स्थायी है और अत्यन्त प्राचीन काल से स्थायी है, नित्य स्थायी नहीं हो जाता। उसमें परिवर्तन में कोई लज्जा की बात नहीं। उस परिवर्तन से यदि जाति की कथित विशिष्टता चली जाती हो तो जाय, कोई

बात नहीं। एक उदाहरण लीजिये। अतिथिसत्कार हमारा एक बड़ा आदर्श है। कितने अगणित काव्य, कथानक, धर्म-कथायें इस विषय को ताना-बाना बनाकर रची गई हैं। अतिथि की प्रीति के लिये दाता कर्ण ने अपने पुत्र तक की हत्या कर दी। इस घटना पर न जाने कितने व्यक्तियों ने आँसू बहाये हैं। फिर भी आज यह कार्य न केवल कुत्सित बल्कि वीभत्स माना जायगा। एक सती स्त्री ने अपने कोढ़ी पति को कंधे पर रखकर गणिकालय पहुँचा दिया था—सतीत्व के इस आदर्श के सामने एक दिन और सब उदाहरण फीके पड़ जाते थे, किन्तु आज ऐसी घटना कहीं हो जाय तो वह मनुष्य के हृदय में सिर्फ घृणा ही उत्पन्न करेगी···।

आदर्शों की परिवर्तनशीलता तथा उनकी निरन्तर जाँच करते रहने के लिये एक सुन्दर कथन है।

हरेन्द्र ने भक्ति और श्रद्धा से विगलित होकर एक विधवा के सम्बन्ध में कहा—इस घर की यह गृहिणी हैं, भाई साहब की मातृहीन सन्तानों की यह जननी के समान है। इस घर की सारी जिम्मेदारी इन्हीं पर है। यह सब होते हुए भी इनका कोई स्वार्थ नहीं, कोई बंधन नहीं। बताइये न किसी देश की विधवायें अपने को इस तरह से खपा सकती हैं?

कमल का चेहरा खिल गया, वह बोली—इसमें कौन-सी भलाई की बात है हरेन बाबू! हो सकता है पराये घर की निःस्वार्थ गृहिणी और पराये बच्चों की निःस्वार्थ जननी होने का दृष्टान्त संसार में और कहीं न हो। नहीं होने के कारण यह अद्भुत हो सकता है, किन्तु अद्भुत होने के कारण अच्छा हो जायगा किस तरह? वाक्यों की छटा से, विशेषणों के चातुर्य से लोग इसे चाहे जितना गौरवान्वित क्यों न कर डालें, दूसरे की गृहस्थी की मालकिनपने के इस अभिनय से सम्मान नहीं है...। हमारे यहाँ चायबगान के हरीश बाबू की

बात याद आ गई। उनकी जब सोलह साल की छोटी बहिन का पति मर गया तब उसे घर लाकर वे अपने झुंड के झुंड बाल-बच्चे दिखाकर रोते हुए बोले, 'लक्ष्मी, बहन मेरी, अब ये ही तेरे बाल-बच्चे हैं। मुझे फिकर किस बात की बहन, इन्हें पालपोसकर आदमी बनाओ, इस घर की सर्वेसर्वा बनकर आज से तू सार्थक हो, यही मेरा आशीर्वाद है। हरीश बाबू बड़े भले आदमी हैं, बगीचे भर में सब लोग धन्य-धन्य कर उठे। सभी ने कहा—लक्ष्मी के भाग्य अच्छे हैं। अच्छे तो हैं ही। सिर्फ स्त्रियाँ ही समझ सकती हैं कि इतना बड़ा दुर्भाग्य, इतनी बड़ी धोखेबाजी और कुछ हो ही नहीं हो सकती। किन्तु एक दिन जब यह विडम्बना पकड़ी जाती है, तब प्रतिकार का समय निकल जाता है।......

आश्रम, गुरुकुलों पर कमल के मन्तव्य सुन लीजिये—···इनकी शिक्षा क्या है? बदन पर ढंग के कपड़े नहीं, पाँवों में जूते नहीं, फिर फटे-पुराने कपड़े पहिन रक्खे हैं, रूखे बाल हैं। एक छाक आधा पेट खाकर जो लड़के अस्वीकार के बीच में बढ़ रहे हैं, प्राप्ति के आनन्द का जिनके भीतर चिह्न तक नहीं है, देश की लक्ष्मी क्या उन्हीं के हाथ अपने भांडार की चाभी सौंप देगी? संसार की तरफ़ एक बार सिर उठाकर देखिये तो सही। जिन्हें बहुत मिला है, उन्होंने ही आसानी से दिया है। उन लोगों को ऐसी अकिंचनता का स्कूल खोलकर त्याग का ग्रैजुएट नहीं बनाया गया था।

मन के मेल से व्यावहारिक क्षेत्र में मेल बड़ा है। राजेन्द्र कहता है—कर्म के जगत में आदमी के व्यवहार का मेल ही बड़ा मेल है, मन का नहीं। मन हो तो बना रहे, अन्तःकरण का विचार अंतर्यामी करेंगे, हमारा काम व्यावहारिक एकता के बिना चल नहीं सकता। यही हमारी कसौटी है—इसी से हम जाँच करते हैं। बाहर से स्वर में मेल न हो तो केवल दो जनों के मन के मेल से संगीत की सृष्टि नहीं

होती, वह तो सिर्फ कोलाहल ही कहलायेगा। राजा की सेनायें युद्ध करती हैं, उनकी बाहर की एकता ही राजा की शक्ति है, मन से उसे कोई मतलब नहीं...।

ख़ैर एक बार शरत् बाबू ने कमल की सुंदर बातचीतवाली मोनोपाली (एकाधिकार) तो तोड़ दी।

विवाह के सम्बन्ध में कमल के विचार एक जगह पर सुन लीजिये। वह अजित से कह रही है—जो लोग इस डर से कि असली फूल जल्दी सूख जाते हैं देर तक रहनेवाले नकली फूलों का गुच्छा बनाते हैं और फूलदानी में सजाकर रखते हैं, उनके साथ मेरे मत का मेल नहीं खाता। आपसे पहले भी मैंने एक बार ठीक यही बात कही थी कि किसी भी आनन्द में स्थायित्व नहीं है। स्थायी हैं सिर्फ उस आनन्द के क्षणस्थायी दिन, और वे दिन ही तो मानवजीवन के चरम संचय हैं। उस आनन्द को बाँधने चले कि वह मरा। इसी से ब्याह में स्थायित्व तो है, पर उसका आनंद नहीं। दुःसह स्थायित्व की मोटी रस्सी गले में बाँधकर वह आनन्द आत्महत्या कर मर मिटता है।......

अजित ने इस पर कहा—जो इतना क्षणस्थायी है, उसे मनुष्य अधिक सम्मान क्यों देने लगा?

कमल बोली—यह मैं जानती हूँ... हमारे आँगन के किनारे जो फूल खिलते हैं उनका जीवन एक छाक से ज्यादा नहीं रहता। उससे बल्कि हमारा यह मसाला पीसने का सिल-लोढ़ा कहीं ज़्यादा टिकाऊ और स्थायी है। सत्य की जाँच का इससे अधिक मज़बूत मापदंड और पा ही कहाँ सकते हैं?...फूल को जो नहीं जानता उसके लिये सिल-लोढ़ा ही सबसे बड़ा सत्य है, क्योंकि उस सिल-लोढ़ा के सूखकर झड़ जाने की कोई आशंका नहीं है। फूल की आयु सिर्फ़ एक छाक की है, और सिल-लोढ़ा हमेशा के लिये है। रसोईघर की ज़रूरत के मुताबिक वह हमेशा रगड़-रगड़कर मसाला पीस दिया करेगा—रोटी निगलने के

लिये तरकारी के उपकरण मसाले का साधन जो ठहरा वह, उस पर भरोसा किया जा सकता है। उसके न होने से संसार विस्वाद जो हो जायगा।

अजित ने कहा—मैं तुम्हें समझ नहीं पा रहा हूँ कि तुम हो क्या। मुझे क्या लगता है जानती हो? लगता है कि तुम्हें पाना जितना आसान है तुम्हें गँवा देना उतना ही आसान है।

कमल ने कहा—यह भी मुझे मालूम है।

अजित ने सिर हिलाते हुए कहा—यही तो मुश्किल है। तुम्हें आज पा लेना ही तो सब कुछ नहीं है। एक दिन यदि इसी तरह गँवा देना पड़ा तो क्या होगा?

कमल ने शान्त स्वर में कहा—कुछ भी न होगा, उस दिन गँवाना भी उतना ही आसान हो जायगा। जितने दिन तक पास रहूँगी उतने दिन आपको वही विद्या सिखाया करूंगी।

अजित भीतर से चौंक पड़ा। बोला—विलायत में रहते हुए मैंने देखा है कि वहाँ वाले कितनी आसानी से—कितने मामूली कारणों से हमेशा के लिए विच्छिन्न हो जाया करते हैं। मन में सोचता हूँ, क्या उन्हें ज़रा चोट नहीं लगती? और यही यदि उनके प्रेम का परिचय है तो वे सभ्यता का गर्व कैसे किया करते हैं?

कमल ने कहा—बाहर से अखबारों में वह जितना सहज दीखता है, असल में उतना सहज नहीं है। मगर फिर भी मैं तो यही कामना करती हूँ कि नरनारी का यह परिचय ही किसी दिन जगत में प्रकाश और हवा की तरह सहज-स्वाभाविक बन जाय।

अजित चुपचाप उसके मुँह की तरफ़ ताकता रह गया, कुछ बोला नहीं, उसके बाद आहिस्ते से दूसरी तरफ मुँह फेरकर लेटते ही मालूम नहीं क्यों उसकी आँखों में आँसू भर आये। शायद कमल ताड़ गई। उठकर वह पलँग के सिरहाने के पास जा बैठी और माथे पर हाथ

फेरने लगी, किन्तु सांत्वना का एक वाक्य भी उसके मुँह से नहीं निकला।

कमल के बारे में जो कुछ अस्पष्टता हमारी आलोचना में रह गई, वह इस कथोपकथन से स्पष्ट हो गई। वह समझती है बाग़ के फूलों की तरह प्रेम नश्वर है, ऐसा वह अपवाद रूप में नहीं, बल्कि प्रकृति के एक अपरिहार्य नियम के रूप में समझती है। उसका यह नियम एक अदृष्ट-वादी (fatalistic) हद तक पहुँच गया है, ज़रूर ऐसा होगा ही। ख़ैरियत है कि वह मानती है कि एक प्रेम से दूसरे प्रेम में जाने के परिवर्तनकाल में कुछ दुःख होता है, उसकी भाषा में जितना अख़बारों से मालूम पड़ता है उतना सहज नहीं है।

यह एक वास्तविकता है कि प्रत्येक प्रेम स्थायी नहीं हो सकता, इसको मानकर जो नीति, सदाचार, क़ानून बनेगा, वही स्वस्थ और सुन्दर बनेगा, किन्तु इसको अतिरंजित करके दूसरी अति पर पहुँच जाना कि प्रेम स्थायी किसी हालत में नहीं हो सकता, हम समझते हैं अस्वस्थ है, और इस मतवाद पर अवलम्बित सदाचार तथा कानून की पद्धति ग़लत होगी। फिर स्त्री-पुरुष के सम्बंध में स्त्री, पुरुष के अतिरिक्त संतान भी तो एक वस्तु है। कमल का किसी पति से लड़का नहीं हुआ, इसलिये उसके लिये यह समस्या नहीं आई, किन्तु कमल को क्रांति की अग्रदूती क़रार देनेवाले किसी समालोचक के लिये इस बात को भूल न जाना चाहिये था। फिर यह मनोविज्ञान की दृष्टि से विचार्य है कि यदि एक व्यक्ति के दिमाग़ में यह बात अच्छी तरह धँस जाय (जैसे कमल के दिमाग़ में धँस गई है) कि जिस स्त्री को वह इस समय गले लगा रहा है, वह ज़रूर ही शीघ्र किसी दूसरे की प्रेमिका होगी, तो क्या वह प्रेम ठीक-ठीक कर सकेगा? तो क्या उस हालत में उसके प्रेम में एक अवास्तविकता और विडम्बना की धारणा नहीं आ जायगी? अंतिम उद्धृत दृश्य को ही लीजिये, अजित के तो यह सोचकर आँसू आ जाते हैं कि कमल से वह कभी अलग हो भी सकता है, किन्तु अजित

के आँसू देखकर भी कमल की आँखों में आँसू नहीं आते। वह स्थितप्रज्ञ-सी हो चुकी है। शरत् बाबू ने जिस बारीकी से उसके चरित्र को यहाँ स्पष्ट किया है, यह उन्हीं की निपुण लेखनी के उपयुक्त है। इतना कह लेने के बाद भी यह सवाल तो रह ही जाता है कि इतना अधिक ज्ञानी हो जाना केवल दुःख से ही नहीं क्या सुख से भी परे हो जाना नहीं है? यदि ऐसा है तो क्या इस निष्फल अतिज्ञान के बजाय थोड़ी सृजनात्मक भ्रांति वरणीय नहीं है? क्या कमल के प्रेम में वह उद्दाम आवेग आ सकता है जो अजित के प्रेम में आयेगा? यदि नहीं, तो कमल का अतिज्ञान लाभ हुआ या हानि?

इन सब प्रश्नों का उत्तर दिया नहीं जा सकता क्योंकि इन प्रश्नों का पूरा-पूरा उत्तर देने के लिये सम्पूर्ण मनोविज्ञान और समाजशास्त्र की अवतारणा करनी पड़ेगी। मान लीजिए कि इन प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार दिया जाय कि दाम्पत्य-जीवन को चलाने के लिये एक intelligent understanding भर की ज़रूरत है, प्रेम की भ्रांति की ज़रूरत नहीं है, तो भी शेष-प्रश्न की कमल के विरुद्ध यह समालोचना तो रह ही जाती है कि वह प्रत्येक प्रश्न पर, विशेषकर इन शेष प्रश्नों पर, केवल वैयक्तिक दृष्टिकोण से विचार करती है, इसी त्रुटि के कारण कलामय बौद्धिक प्रतिभाशाली कथोपकथन तथा पदे-पदे मूर्तिभंजक कथाभाग के बावजूद यह पुस्तक बुर्जुवा कला से बंधन तुड़वाकर भी नहीं तुड़वा पाती। शरत् बाबू की कला इस पुस्तक में सर्वबंधनमुक्त होकर दौड़ने की चेष्टा करती है, किन्तु उसके पैरों में बचपन से बुर्जुवा कला का जो चीनी जूता पड़ा रहा है, उसके कारण वह दौड़ नहीं पाती। इस पुस्तक की दूसरी त्रुटि यह है कि कथित प्रेम के विरुद्ध भारतीय साहित्य में सबसे भीषण आक्रमण होते हुए भी इसमें भी शरत् बाबू प्रेम के ही दायरे में रह गये हैं, मानो वही जीवन की एक समस्या हो, मानो उन्हीं के adjustments को ढूँढ़ना कला, साहित्य, विद्या का एकमात्र उद्देश्य हो, मानो जीवन को

और सब समस्यायें सुलझ चुकी हों, एक यही समस्या अब मानवता के लिये रह गई हो।

कथानक की दृष्टि से शेष-प्रश्न श्रीकांत, चरित्रहीन के सामने तो क्या ब्राह्मण की बेटी, दत्ता, पल्ली-समाज आदि उपन्यासों के सामने टिक नहीं सकता। रस के परिपाक की दृष्टि से तथा भावुकता की दृष्टि से देवदास, चरित्रहीन, श्रीकांत, चन्द्रनाथ इससे कहीं अच्छे हैं। फिर भी इस उपन्यास में शरत् बाबू एक नवीन रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। इस उपन्यास के प्रथम अध्याय से ही ज्ञात होता है कि हम एक नई दुनिया में प्रवेश कर रहे हैं, मानो चरित्रहीन, देवदास, श्रीकांत की पुरानी दुनिया को छोड़कर हम एक नये जगत में आ गये हैं। आपात दृष्टि से कमल शरत्-साहित्य की किसी अन्य नायिका से अभिन्न मालूम पड़ती है, किन्तु नहीं, कमल उनमें से किरणमयी से बहुत मिलती हुई जान पड़ने पर भी ज़रा गहराई से सोचने पर एक नया चरित्र जान पड़ेगी। देवदास की चन्द्रमुखी और श्रीकान्त की राजलक्ष्मी भी उसके क़रीब मालूम पड़ती है, किन्तु नहीं, उनमें और कमल में मौलिक प्रभेद यह है कि वे वेश्यावत् होती हुई भी क्रमशः एक-एक खूँटे से याने क्रमशः देवदास और श्रीकान्त से सामाजिक रूप से नहीं किन्तु मानसिक रूप से बँधी है, किन्तु कमल तो सर्वबन्धनमुक्ता है। वह किसी पुरुष की नहीं है। वह अपने आसामी ईसाई पति की नहीं है; वह शिवनाथ की नहीं है; वह अजित की भी नहीं है। वह अपनी है, सम्पूर्ण रूप से अपनी, वह निर्भय है। मन से और शरीर से। वह वर्तमान युग की नारी का—सर्वबन्धनमुक्त नारी का प्रतीक है; यदि उसका वश चले तो पुरुष के बिना ही सारी सृष्टि को चलावे, ऐसा हो नहीं सकता इसीलिये उसकी सृष्टि में पुरुष का एक गौण स्थान है। वह प्रेमिक की भावुकता पर मन ही मन हँसती है, शायद कुछ घृणा भी करती है। जिस अनागत समाज में पुरुष और स्त्री में सम्पूर्ण समता होगी; जिसमें स्त्री को अपने साथी

के चयन में या आवश्यकता पड़ने पर उसके निष्काशन में किसी आर्थिक या सामाजिक कारण से बाधा प्राप्त न होगी, निर्मोही तथा निर्मम कमल उस समाज का आदर्श शायद न हो सके, किन्तु परिवर्तनकाल में कुछ अति होता ही है। कमल उसी अतिविद्रोह की मूर्त प्रतीक है। उसके विद्रोह का काम ध्वंसात्मक अधिक और सृजनात्मक कम है। जिस समय पुराने समाज की ईंट से ईंट बजा दी जा रही है, उस समय यह स्वाभाविक है कि इस बात का क़तई ख्याल न रक्खा जाय कि इनकी कुछ ईंटों से नये सौध को बनाने में शायद मदद मिल सकती है। किन्तु उस समय यह कौन देखता है? उस समय तो तोड़ो और तोड़ो, फिर तोड़ो। इसीलिये कमल सही माने में क्रान्ति की अग्रदूती हो या न हो, वह परिवर्तन युग के उपन्यास की नायिका के रूप में अस्वाभाविक नहीं है, यद्यपि उसे अनागत समाज के आदर्श के रूप में रखने की चेष्टा आपत्तिजनक है। अनागत समाज का नर और नारी प्रेम के शोषण तथा एक पक्ष के लिये आत्मपीड़नमूलक रूप को दूर कर देगी, किन्तु प्रेम के उस रूप को जो शरीरिक मिलन को उच्च बौद्धिक सतह पर पहुँचा देगा, उससे मुँह नहीं मोड़ेगी। वह भोग का मूल्य त्याग के स्वर्ण में, प्रेम के नुपूरशिंजन का मूल्य विरह के मर्मभेदी विलाप में चुकाने से न चूकेगा, किन्तु साथ ही विरह के पंक में वह आत्मपीड़न की हद तक लौटेगा, यह भी बात नहीं। जब पुराने प्रेम की संभावनाएँ—याने मिलन और आत्मपीड़नहीन विरह की संभावनाएँ ख़तम हो जायेंगी, तब वह फिर जीवन की विराट् मधुशाला से एक नया साकी ढूँढ़ लेगा, और शायद इस नवीन साकी की आँखों में वह अपनी पुरानी खोई हुई साकी का ही पुनराविष्कार करेगा।

शेष-प्रश्न एक परिवर्तन युग का भारतीय समाज की एक नई प्रवृत्ति का, सर्वबन्धनमुक्त भारतीय नारी का सर्वबन्धनमुक्त प्रतीक है, इसलिये वह निःसन्देह विश्वसाहित्य की एक सुन्दर कृति है। रहा यह कि शरत्

बाबू यदि अपने उपन्यास में इस युग को पूर्ण रूप से निभा पाते, तो यह उपन्यास कैसा होता, और अच्छा होता, यह व्यर्थ का वितंडा है। शरत् बाबू अपनी limitations के कारण ऐसा कर ही नहीं सकते थे, यही क्या कम है कि उन्होंने उस ओर एक सुन्दर इंगित कर दिया। भविष्य का अनागत कलाकार ही शरत् बाबू के इस अधूरे काम को पूरा कर सकेगा, हम भारतीय साहित्य में उस अनागत महान् कलाकार की नुपूरध्वनि नहीं उसके गांडीव की टंकार सुन रहे हैं।

— —